CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूजातत्त्व

आदि प्रकाशक

महामहोपाध्याय

श्री गोपीनाथ कविराज

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूजातत्व

जिन खोजाँ तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढूंढ़न गई रही किनारे बैठ॥

आदि प्रकाशक

महामहोपाध्याय
श्री गोपीनाथ कविराज
एम० ए०, डी० लिट्०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

● प्रकाशक
ओंकार नाथ मुट्टू
शंकर सदन
५२/४६ लक्ष्मी कुण्ड
बाराणसी २२१०१०

● सर्वाधिकार सुरक्षित

तृतीय संस्करण

मार्च १९८४

मूल्य : १२.००

● मुद्रक
खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन
मानमन्दिर
वाराणसी
२२१००१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आगमन] श्रीमत् स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ [प्रत्यागमन

२६ नवम्बर, १८७१ २ मई १९५९

कार्तिक पूर्णिमा वैशाख कृष्णा दशमी

'They were astonished and said "Whence hath this man, this wisdom and these mighty works".'

—ST. MATHEWS

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमत् स्वामीजी के अमृत वचन

- कौन कहता है कि भगवानको देखा-जाना-पाया नहीं जा सकता। मैं कहता हूँ कि भगवानको देखा जाता है, प्राप्त किया जाता है, उनसे बातें की जा सकती हैं। इसके लिए चाहिए साधना।

  (नोट—शरीरी अवस्थामें जिसने भगवत् साक्षात्कार किया हो ऐसा महात्मा जगत्‌में दुर्लभ है—प्र०)

- पहले विश्वास पक्का करो कि भगवान हैं। वे सब देख रहे हैं, सुन रहे हैं, हमारे परम आत्मीय हैं, हमारा कल्याण करनेमें निरन्तर लगे हुए हैं।

- तुम्हारी क्या आवश्यकता है, तुम्हारा कैसे कल्याण होगा, इसे जितना वे जानते-सोचते-समझते हैं, तुम्हारी उतनी सोचने-समझनेकी शक्ति नहीं है।

- तुम लोग निर्भर करते हो अपने बल-बुद्धि-चतुराईपर अथवा मनुष्यकी कृपा-पर। इसलिए भगवानके अस्तित्वके विषयमें सन्देह रह जाता है।

- भगवान हमसे क्या चाहते हैं—आहार-विहारमें संयम, निष्ठा, निर्भरता, अनासक्ति, स्वरूपमें स्थिति, प्रकृत द्रष्टा होकर रहना।

- भगवानको केवल मुखसे मान लेनेसे लाभ नहीं होता। साधना करके देख लेना होगा तभी विश्वास पक्का होगा।

- प्रथम अवस्थामें कुछ नियमोंका पालन करना अत्यावश्यक है। प्रथम नियम यह होना चाहिए कि अमुक समयमें अमुक कार्य अवश्य करूँगा। यदि किसी दिन नियमित समयपर वह कार्य न हो सके तो दूसरे समय उसे अवश्य करना चाहिए। किसीसे कोई बात कह देनेपर उसे प्राणपनसे पूरा करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

समर्पण !

●

जिनके आन्तरिक आग्रह और उत्साहसे यह पूजाकी
पुस्तक पहले प्रकाशित हुई थी, जो समवेत पूजामें
श्लोक पाठकर विशेष आनन्द अनुभव
मित्रमंडलीमें करती थीं—जो हमारी
"माजी" नामसे सुपरिचित
थीं–उन स्वर्गीया माजीकी
पुण्यस्मृतिमें यह
ग्रन्थ समर्पित
है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय-सूची

विषय			पृष्ठांक
१. प्रकाशकका निवेदन (प्रथम संस्करण)		....	१
२. मुखबंध	....	....	४
३. विष्णुस्मरणम्	....	....	१६
४. शुद्धितत्त्व	....	....	२९
५. धामतत्त्व	....	....	३५
६. स्वरूपतत्त्व	....	....	३७
७. गुरुतत्त्व	....	....	४०
८. भगवत्तत्त्व	....	....	४१
९. शक्तितत्त्व	....	....	४९
१०. पुरुषोत्तमतत्त्व	....	....	६३
११. न्यासतत्त्व	....	....	७७
१२. उपचार-समर्पण	....	....	८६
१३. प्रार्थना	....	....	१००
१४. प्रणाम	....	....	१०४
१५. त्रिशरण	....	....	११८
१६. पूजामें तत्त्वविभाग	....	....	१२०
१७. श्रीमूर्तिदर्शन	....	....	१२२

परिशिष्ट

१८. भगवत्तत्त्व	....	....	१२६
१९. पुरुषोत्तम	....	....	१३३
२०. भगवान-इष्ट-गु	....	....	१३९
२१. गुरुतत्त्व	....	....	१४१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय			पृष्ठांक
२२. इष्टतत्त्व	....	....	१४४
२३. भगवान्	....	....	१४९
२४. ऋषि-छन्द-देवता-विनियोग	....	....	१५०
२५. यंत्र-तंत्र-मंत्र रहस्य	....	....	१५२
२६. अधिकारी विचार	....	....	१५९
२७. गुरुवाद और दीक्षा	....	...	१६२
२८. षट्चक्रभेद	....	....	१६३
२९. ग्रन्थिभेद	....	....	१७४
३०. कुण्डलिनी	....	....	१७६
३१. इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना नाड़ी	....	....	१८२
३२. मूर्तितत्त्व	....	....	१८६
३३. व्यष्टि-समष्टि तत्त्व	....	....	१८७
३४. सत्यप्रतिष्ठा-प्राणप्रतिष्ठा-आनन्दप्रतिष्ठा		....	१८८
३५. पूजाके अंगविभाग	....	....	१९२
३६. धारणा-ध्यान-समाधि	....	....	१९७
३७. जप	....	....	२०९
३८. यज्ञ	....	....	२२४
३९. हवन	....	....	२२५
४०. विसर्जन	....	....	२२८
४१. प्रसाद-वितरण	....	....	२२९
४२. सब कामोंमें पूजा	....	....	२३१
४३. ज्ञान-कर्म-भक्तिका समन्वय	....	....	२५१–२५६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

प्राक्कथन

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीय संस्करण

'पूजातत्त्व' पुस्तकका द्वितीय संस्करण समाप्तप्राय: हो गया है। साधकों और भक्तोंने जिस प्रकार इस ग्रंथका आदर किया इससे प्रोत्साहित होकर तृतीय संस्करण छपवाना आवश्यक मालूम होता है। यूँ तो हिन्दू धर्म ग्रन्थोंमें सभी कुछ है और जहाँ-तहाँ बिखरा हुआ है, बड़े-बड़े विस्तार हैं, जटिल भाष है, लेकिन साधनराज्यके सब तत्त्वोंका एक जगह समावेश और उनका परस्पर सम्बन्ध, सरल भाषामें, जैसा कि इस पुस्तकमें है शायद और कहीं नहीं है। यह पुस्तक अधिकांश लोगोंके लिए तो नहीं है क्योंकि नाना कारणोंसे मनुष्य संसारमें ऐसा फँसा हुआ है कि भगवान और परलोककी बात सोचनेका उसे समय और सुयोग ही नहीं होता। साधारण मनुष्य जब भगवानकी बात सोचता भी है तो या तो किसी दुख-की निवृत्तिके लिए अथवा कोई अभीष्ट प्राप्त करनेके लिए और जैसे ही उसका उद्देश्य पूरा हो जाता है, वह फिर भगवानको भूल जाता है। भगवानने स्वयं ही कहा है—"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये" (हजारों मनुष्योंमेंसे कोई एक ही भगवत्-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है—गीता ७।३)। लेकिन कुछ थोड़ेसे लोग ऐसे हैं जिनकी, एक अवस्थामें आकर, भगवान एवं परलोकके बारेमें जाननेकी इच्छा तीव्र रूपमें जाग उठती है। इस प्रकारके लोग अपनी आन्त-रिक जिज्ञासाकी पूर्तिके लिये साधु-महात्माओं तथा विद्वानोंके पास जाते हैं। कोई कहीं भ्रान्तिमें पड़ जाते हैं, कहीं प्रतारित भी हो जाते हैं। जिन्हें यह पुस्तक मिल गई उन्होंने बड़ा सन्तोष प्रकट किया। बहुतोंने प्रशंसाके पत्र भेजे, कुछ लोगोंने प्रश्नोंके द्वारा स्पष्टीकरण माँगे, अन्य कुछ लोगोंने लेखककी तसवीर माँगी एवं दर्शनार्थ आनेकी अनुमति चाही, और चार-छ: तो बिना कहे ही लेखकका निवासस्थान देखनेको चले आये।

इस पुस्तकके आदि लेखक थे श्रीमत् स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, पूर्वी बंगाल (अधुना बँगलादेश) के एक उच्च कोटिके महात्मा। इनका जन्म सन् १८७१ ई० में हुआ और १९५९ में देहावसान हो गया। कालेज शिक्षा प्राप्त करके, युवावस्थामें ही संन्यास लेकर स्वामीजीने अपना सारा जीवन साधनभजन एवं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवसेवामें व्यतीत किया जिसके फलस्वरूप उन्हें अति दुर्लभ अनुभूतियां लाभ हुईं। बहुतोंने स्वामीजीका नाम भी नहीं सुना क्योंकि ये लोक-दृष्टिसे पीछे रहकर काम करते थे। कहते थे, "मुझे लोगोंके सार्टिफिकेटकी जरूरत नहीं है"। पण्डित प्रवर गोपीनाथ कविराजजीकी भाषामें—'महात्मा गुप्त थे, गुप्त रहना पसन्द करते थे"। सन्त तुलसीदासकी उक्ति "निर्गुण रूप सुलभ अति सगुण जानि नहि कोई" उनके ऊपर पूर्णतया लागू होती थी। स्वामीजीके देहावसानके बाद श्रीकृष्ण संघ, ५२/४६ लक्ष्मीकुण्ड, वाराणसीने "श्रीमत् स्वामी प्रेमानन्द तीर्थकी जीवनी एवं पत्रावली" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की जो अभी उपलब्ध है। स्वामीजीने अपने हस्तलिखित नोट्स विद्वान्-साधक पण्डित गोपीनाथ कविराजको दे दिये। स्वामीजी जब वाराणसी आते थे तो कविराज जी स्वामीजीसे तत्त्वालोचना करने आया करते थे और स्वामीजी भी कभी-कभी कविराज जीके यहाँ जाते थे। कविराजजीको स्वामीजीकी साधनोपलब्ध अनुभूतियाँ एवं सुचिन्तित धारणाएँ अपने अध्ययन-मनन-चिन्तनके सम्पूर्णतः अनुरूप लगीं और उन्होंने हस्तलिपिको संकलितकर मूल बंगला भाषामें 'पूजा' नामक पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किया। इसके बाद 'पूजा' का हिन्दी रूपान्तर 'पूजातत्त्व' नामसे छपवाया गया। चूँकि स्वामीजी विज्ञापन बिलकुल पसन्द नहीं करते थे, इस पुस्तककी कोई समीक्षा, आदि नहीं कराई गयी। केवल कुछ प्रतियाँ दूकानोंपर रखा दी गयीं और वहींसे पुस्तक धीरे-धीरे साधकों और भक्तोंके हाथमें जहाँ-तहाँ पहुँच गयी। स्वामीजीने अपने जीवनकालमें अपना नाम या चित्र किसी पुस्तक, पत्र या पत्रिकामें नहीं छपने दिया लेकिन चूँकि ग्राहकोंकी लेखकके बारेमें जाननेकी जिज्ञासा रहती थी इसलिए इस नये संस्करणमें उनका चित्र दे दिया गया है।

जैसा कि प्रथम संस्करणकी भूमिकामें बताया गया है इस पुस्तकमें साधन-भजनके उपयोगी कुछ श्लोकोंको अवलम्बनकर एक आडम्बर रहित नित्य पूजाकी पद्धति दी गयी है। आधुनिक समयके असाम्प्रदायिक भावसे चलनेवाले शिक्षित धर्म पिपासुगण अपने सांसारिक कार्य-क्रममें भी इस पूजाका अनुष्ठान सरलतासे कर साधनजीवनमें अग्रसर हो सकते हैं। यह पूजा-पद्धति किसी मतविशेष या

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मार्गविशेषमें सीमाबद्ध नहीं है। इस पुस्तकमें दिये हुए पूजाके क्रमको समझकर सब अपने-अपने भावों एवं रुचियोंके अनुसार विश्वातीत एवं विश्वव्यापक परमात्माकी पूजा कर सकते हैं। कृष्ण और राधा शब्द सब सम्प्रदायोंके इष्ट अथवा पुरुषोत्तम और आराधिकाके रूपमें व्यवहार किये गये हैं।

पुस्तकमें दो खण्ड हैं। प्रथम खण्डमें पहले संस्कृत श्लोक, उसके नीचे श्लोकका शब्दार्थ और उसके नीचे भावार्थ है। साधकको श्लोक पाठ करते समय भावार्थ ध्यानमें लाना चाहिए। सब श्लोक रोज पाठ करनेका समय न हो सकेगा; इसलिए ७६ चिह्नित (❀) श्लोक नित्य पाठके लिए नियमित किये गये हैं। यदि इतना समय भी न हो तो साधक अपनी रुचि और समयके अनुसार पाठ्य श्लोक स्वयं ठीक कर ले। स्वामीजी निम्नलिखित ४९ श्लोकोंको बहुत महत्त्व देते थे।

१, २, ४, ५, ४क, ५क, ८, १०, ११, १२, १३, १७, १९, २१, २२, ३२, ३४, ३५, ३६, ४३, ४८, ५२, ५४, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ७२ ७४, ७७, ७९, ८०, ८१, ८२, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९१, ९३, ९४, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०४।

दूसरे खण्डमें एक दीर्घ परिशिष्ट है जिसमें साधनराज्यके विविध तत्त्वोंका रहस्यपूर्ण विवेचन है। साधकोंको ध्यान-जपादिमें चित्त स्थिर करनेके उपाय भी इस खण्डमें दिये गये हैं।

प्रथम अध्ययनमें साधकको अथसे इति तक पूरी पुस्तक ध्यानपूर्वक पढ़नी चाहिए। भगवान अनन्त हैं। मनुष्योंके रूप, भाव और रुचियाँ भी अनन्त हैं। दूसरे अध्ययनमें अपने भावके अनुकूल अंगोंको समझकर साधना करे।

श्रीमत् स्वामीजी जो संस्मरण छोड़ गये हैं उनमेंसे 'ज्ञान-कर्म-भक्तिका समन्वय' शीर्षक एक लेख इस पुस्तकके अन्तमें दिया गया है। यह प्रथम संस्करणमें नहीं था। इसके अलावा स्वामीजीके दो नोट (१) 'जीवनका लक्ष्य' और (२) 'मैं सुखी क्यों हूँ,' इस पुस्तकके आदिमें दिये गये हैं। यह भी प्रथम संस्करणमें नहीं थे। पाठकगण अवश्य इन लेखोंसे लाभान्वित होंगे।

५२/४६ लक्ष्मीकुण्ड,
वाराणसी—२२१००१
ओंकार नाथ मुट्टू

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

[यह नोट श्रीमत् स्वामीजीने एक भक्तकी डायरीमें उसके प्रश्नोत्तर रूपमें लिख दिया था]

जीवनका लक्ष्य

सच्चिदानन्द

सत् (१) — दै० मा० आ०

चित् (२) — दैहिक मानसिक आध्यात्मिक

आनन्द (३) — दै० मा० आ०

(२) अध्ययन करो और जानो—देह क्या है, मन क्या है, आत्मा क्या है।

(१) देह, मन और आत्माके विषयमें वर्ग (२) के निर्देशोंका पालन करो।

(३) इसका फल होगा दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक सुख अथवा आनन्द।

आनन्दकी प्राप्ति ही जीवनका लक्ष्य है। यही भगवानकी इच्छाकी पूर्ति है।

आत्मा सर्वव्यापी है। इसलिए सबका सुख तुम्हारे जीवनका लक्ष्य होना चाहिए। अर्थात् किसीकी किसी प्रकारकी क्षति किये बिना आनन्दकी प्राप्ति तुम्हारे जीवनका लक्ष्य हो।

भगवान सब पूर्णताओंमें पूर्ण हैं। हमें उनसे तालैक्यमें रहना चाहिए। किन्तु उनको और उनकी इच्छाको जाने कैसे? शास्त्र, गुरु और विवेक हमें उनका परिचय देते हैं। 'शास्त्र' ऋषियोंकी अनुभूति है। 'गुरु' असली व्याख्याकार है। हमारे जीवनमें शास्त्रके तत्त्वोंके अनुभवका नाम 'विवेक' है। इसको जानो, समझो, अनुसरण करो। अर्थात् इसके अनुसार जीवन चलाओ।

तुम्हारा अहंकार तुम्हें पथ-भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करता है। उच्चतर आज्ञाका, अधिनायकके आदेशका, पालन करो। इससे तुम ठीक पथपर पहुँच जाओगे, भगवानसे तालैक्यमें हो जाओगे। अधिनायक भगवानकी इच्छाको

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जानता है। उसकी इच्छा पूर्ण करनेसे तुम भगवानकी इच्छा पूर्ण करोगे। इससे तुम्हारे अहंकारका बल कम हो जायगा।

$\frac{X}{O} = \alpha$ अगर तुम अपने मूल्यको शून्य तक कम कर सको तो तुम अनन्त असीम भगवानको अनन्त प्रकारसे प्रत्येक परमाणुमें अनुभव कर सकोगे।

अधिनायककी आज्ञाका पालनकर अपने अहंकारकी गरिमाको घटानेकी चेष्टा करो। अधिनायकको सुखी करनेकी चेष्टा करो। इसके परिणामस्वरूप तुम सुखी हो आओगे। अहंकारके अधिकारको शून्यप्राय कर दो। फलतः भगवानकी इच्छा तुम्हारे भीतरसे व्यक्त हो जायगी।

भगवद्ज्ञान = तुम्हारा ज्ञान आनन्त्य तक प्रसारित।

भगवत्-प्रेम = तुम्हारा प्रेम आनन्त्य तक प्रसारित।

अपनी वक्रताको दूरकर इसे समझनेकी चेष्टा करो। अपने प्रियजनोंको भगवद्-विग्रहमें परिणत करनेकी चेष्टा करो। अपने प्रेमको निर्मल करो। तुम्हारा काम शुद्ध होकर, निःस्वार्थ होकर, भगवत्-प्रेम बन जायगा। अपने सब कार्योंको भगवानकी पूजामें परिणत करनेकी चेष्टा करो।

मन्दिरमें जानेकी जरूरत नहीं; अपने मनको भगवानका मन्दिर बनाओ। तथाकथित तीर्थोंमें जानेकी आवश्यकता नहीं; अपने हृदयको सच्चा तीर्थ बनाओ। अगर ऐसा कर सको तो तुम सब जगह भगवानका मन्दिर देखोगे। तुम्हें सर्वत्र तीर्थ दर्शन होगा।

पूजा—प्राकृतिक विधानको, भगवत्-विधानको जानना, अनुभव करना पालन करना एवं उसपर आधिपत्य लाभ करना। अर्थात् भगवानसे सम्पूर्णतः तालैक्यमें हो जाना; अन्तर्मनसे विश्वास कर लेना कि भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं। प्रत्येक पदार्थमें, प्रत्येक जीवमें भगवानका ध्यान, दर्शन और सेवा तुम्हारे जीवनका लक्ष्य हो।

जीवकी सेवा ही शिवकी सेवा है। सन्तानको प्यार किये बिना, उनका सच्चा हित किये बिना, किसी पिताको खुश नहीं किया जा सकता। भगवान हमारे सबके पिता हैं। जबतक तुम उनकी सन्तानसे प्रेम न करोगे, उनकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्तानका कल्याण करनेकी चेष्टा नहीं करोगे, तब तक तुम भगवानको सन्तुष्ट नहीं कर सकते। यह क्रिया अपने घरसे शुरू होती है। पहले अपने परिवारके सदस्योंसे निःस्वार्थ प्रेम करो, फिर अपने पड़ोसीसे प्रेम करो, फिर अपने प्रेमका क्रमशः सब जीवोंमें विस्तार कर दो।

उच्चतर आत्मविकासके लिए क्षुद्र आत्मस्वार्थको शूलीपर चढ़ा देना (अर्थात् त्याग करना) तुम्हारे जीवनका लक्ष्य होना चाहिए।

जब तक गर्व या अभिमान है तबतक मनुष्य भगवानके नैकट्यको अनुभव नहीं कर सकता। गर्व वहीं रहता है जहाँ अपने सुख-आरामकी लालसा है या प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी अपरिमित कामना है।

अपने सुख-आरामकी अभिलाषा ज्यों-ज्यों कम होती जायगी त्यों-त्यों भगवानका नैकट्य अनुभवमें आयेगा। उत्साहपूर्वक, सुयोग आ जाय तो स्वयं कष्ट उठाकर, दूसरोंको सुखी करनेकी चेष्टा करो। तुम दूसरोंको सुखी करोगे तो सर्वशक्तिमान अपनी ओरसे तुम्हें परमानन्द प्रदान करेंगे। याद रखो अपने सुख-स्वार्थका बलिदान उच्चतम सद्गुण है। यही सर्वश्रेष्ठ धर्माचरण है।

तुम्हारा आत्मा, तुम्हारा असली स्वरूप, सर्वव्यापी है। प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक जीव, तुम्हारे आत्माकी विभूति है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे सर्वव्यापित्व (स्वरूप) को समझनेमें बाधा देता है, तुम्हें स्वार्थपर बनाता है।

अनुभव करनेकी चेष्टा करो कि भगवान तुम्हारे भीतर बैठे क्या कर रहे हैं। और भी विचार करो कि वे दूसरोंके माध्यमसे तुम्हारे लिए क्या कर रहे हैं। क्रमशः अनुभवमें आयेगा कि एक सार्वलौकिक शक्ति सब पदार्थोंमें क्रिया कर रही है। यह शक्ति सर्वव्यापी आत्माकी शक्ति है जो तुम्हारा असली स्वरूप है।

तुम्हारा अहंकार तुम्हें स्थूल देहमें सीमाबद्ध करनेकी चेष्टा करता है। फलतः तुम अपने आरामके लिए लालायित हो जाते हो। किन्तु जब तुम किसी रोगीकी सेवा करते हो तो उस समय अपने आरामको भूल जाते हो। इससे तुम्हें अहंकारको काल्पनिक सीमाको विनष्ट करनेमें सहायता मिलेगी। अतएव जीवकी सेवा उच्चतम सद्गुण है।

●

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वामीजीकी वाणी

मैं सुखी क्यों हूँ ?

(१) मेरे अनुभवमें आ गया है कि मेरे भगवान हैं, वे मेरी सुख-शान्तिके लिए सचेष्ट हैं। मेरे लिए जब जो जरूरत होगी उसकी वे अवश्य व्यवस्था करेंगे।

(२) मेरी दृष्टि पूरे जीवनकी तरफ रहती है। मेरी उन्नतिके लिए जब जो आवश्यक हुआ, वह यथासमय हो गया। सब घटनाओंसे मेरा मंगल हुआ है, मुझे शिक्षा मिली है। मेरे अनुभवमें आ गया है कि सब अपने-अपने कार्य द्वारा पूर्णताकी ओर बढ़ रहे हैं। इसलिए मुझे अपने कार्यके लिए कोई पश्चात्ताप नहीं आता; दूसरेके कार्यसे कोई विक्षेप नहीं होता।

(३) मैं किसीसे कोई आशा नहीं करता। इसलिए जो मिल जाता है उसीसे कृतज्ञ रहता हूँ। मैं अपने कार्यको श्रेष्ठ नहीं समझता, इसलिए किसी दूसरेको अकृतज्ञ समझनेका सुयोग भी नहीं होता।

(४) अनावश्यक चीजों और व्यर्थ चिन्ताओंका बोझा मैं अपने ऊपर नहीं लादता।

(५) मेरे अनुभवमें आ गया है कि इस देशका नोट उस देशमें नहीं चलता। लोगोंके प्रशंसा-पत्र वहाँ किसी काम नहीं आते। इसलिए मैं प्रशंसासे खुश नहीं होता, निन्दासे रुष्ट नहीं होता।

(६) मेरे अनुभवमें आ गया है कि प्रकृति (भगवत्-शक्ति) अपना काम करती ही रहेगी। मेरे लिए वह अपना कार्य या प्रोगाम बदलेगी नहीं।

(**नोट**—षड्विध विकार ये हैं। 'जायते-अस्ति-वर्धते-विपरिणमते-क्षीयते-नश्यन्ति'।)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

बदलनेकी जरूरत भी नहीं है। मैं केवल द्रष्टा हूँ। षड्विध विकारोंमें भी मुझे आनन्दके उपकरण दीखते हैं। इसीलिए मैं किसीके जन्म या मृत्युसे विचलित नहीं होता।

(७) मेरे अनुभवमें आ गया है कि सब अपना-अपना काम करते रहेंगे। मुझे भी अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए। दूसरेके कामकी समीक्षा करनेमें अपना दिमाग नहीं खपाऊँगा। दूसरेके प्रति जो कर्तव्य समझमें आयगा वह करता रहूंगा।

(८) मेरे अनुभवमें आ गया है कि मैं किसीका उद्धारकर्ता या उपकर्ता नहीं हूँ। मैं परोपकार नहीं मानता। कोई 'पर' नहीं हैं। सब मेरे आत्माकी विभूति हैं। दीन-दुखी-रोगी-अज्ञानीकी सेवाका सुयोग पाकर अपनेको कृतार्थ मानता हूं; उनके प्रति कृतज्ञ होता हूँ।

(९) मेरे अनुभवमें आ गया है कि मैं एक सज्जनके हाथका यंत्र हूँ। मैं कार्यका कर्त्ता नहीं हूं। कार्य मेरे द्वारा कारित होता है। वे अपनी इच्छा मेरे माध्यमसे पूर्ण कर रहे हैं।

(१०) मेरे अनुभवमें आ गया है कि मेरा कहकर संसारमें कुछ भी नहीं है। यह शरीर, प्रिय जन, धन-दौलत, आदि न मेरे साथ आये थे, न मेरे साथ जाएँगे। इसलिए इनके ऊपर आसक्ति करना भूल होगी और फल होगा दुखभोग। सबसे प्रेम करूँगा, सबकी सेवा करूँगा, उनका मानकर, अनासक्त भावसे। अनासक्त अनुरागी संसारी-संसारत्यागी होना होगा। सब चीजें यत्नपूर्वक रखूँगा लेकिन किसीके विनाशसे दुखित नहीं होऊँगा।

(११) मेरे अनुभवमें आ गया है कि तृप्ति सुख-भोगमें नहीं है, तृप्ति है दानमें। इसलिए स्वयं न खाकर दूसरोंको खिलाना अच्छा लगता है; दूसरोंके मुँहसे खाना अच्छा लगता है।

(१२) मैं किसी बुरी आदतका गुलाम नहीं हूँ। इसलिए मुझे किसी अभावका बोध नहीं होता। रहता हूं गरीब मजदूरकी तरह, चिन्तन करता हूँ देवता की तरह।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१३) मेरा सुख-दुख किसी मनुष्य या पदार्थपर निर्भर नहीं करता। इसलिए मुझे कभी निराश नहीं होना पड़ता।

(१४) मेरे अनुभवमें आ गया है कि शान्ति बाहरसे नहीं आती। शान्तिका मूल स्रोत भीतर आत्माके निकट है। मन जितना भीतर रहेगा उतनी ही शान्ति पायेगा। किसी प्रियजन या प्रियपदार्थके दूर चले जानेसे जो कष्ट होता हैं वह मनके बाहर आत्मासे दूर चले जानेके कारण, उस मनुष्य या पदार्थकी अप्राप्तिके कारण नहीं, वे तो निमित्त हैं।

(१५) यदि असली शान्ति, ज्ञान और आनन्दका संधान भीतर मिल जाय तो फिर कोई भावना चिन्ता नहीं रहती; भय दूर भाग जाता है।

(१६) सोच-विचार करता हूँ काम करनेसे पहले। बादको फलके विषयमें एकदम उदासीन रहता हूँ।

(१७) मैं अपनेको किसी मत या सम्प्रदायमें सीमित नहीं करता, न सीमित मानता हूँ। सब धर्मोंके सारतत्त्वको, जिस विषयमें सब एकमत हैं, विशेषता पालनी मानता हूँ। नैमित्तिक विषयोंमें Non-essential points में, सबको स्वाधीनता देनेकी चेष्टा करता हूँ।

(१८) आचार-अनुष्ठान आदिके तत्त्वका विचार करके आवश्यकतानुसार उनका पालन करता हूं लेकिन उनका गुलाम नहीं बनता। वेश-भूषा आदिका स्वामित्व स्वीकार नहीं करता। अन्ध विश्वास मुझे बाँध नहीं सकता।

(१९) जो व्यवहार अपने लिए पसन्द नहीं करता उस प्रकारका व्यवहार दूसरोंके प्रति कभी नहीं करता। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"

(२०) मैं स्वाधीनता पसन्द करता हूँ, इसलिए यथासम्भव सबको स्वाधीनता देनेकी चेष्टा करता हूँ। स्वाधीनताका अर्थ है—स्वके, आत्माके, भगवानके, भगवत् विधानके, अपने स्वधर्मके अधीन होना, अधीन-रहना। स्वाधीनता माने स्वेच्छाचारिता, मन-मानी करना नहीं है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वामीजीका सन्देश

(१० जनवरी १९४९ के एक पत्रमेंसे उद्धृत)

"कलियुगमें 'संघ' ही प्रधान अवलम्बन है। संघबद्ध होकर काम करनेसे बाधाएँ कम आती हैं, सुफल-प्राप्ति आसान हो जाती है।..................जहाँ भी रहो कल्याण एवं शान्तिके इच्छुक लोगोंके साथ मिलकर एक संघ (पूजाकेन्द्र) बनानेकी चेष्टा करना। अपने परिवारके सदस्योंको अपने भावके अनुकूल बना लेनेसे यह काम सहज होगा। इसके फलस्वरूप साधन-भजनके अनुकूल एक भावधारा तैयार होगी। यह भावधारा क्रमशः शक्ति लाभ करेगी और चारों तरफ शान्ति वितरण करेगी। इसी कारण मैं संघबद्ध होकर पूजा करना इतना पसन्द करता हूँ।"

(उपर्युक्त उद्देश्यको मूर्तरूप देनेके लिए प्रकाशकने निर्णय किया है कि जहाँ भी चार-छः स्त्री-पुरुष एक गोष्ठीमें बैठकर पूजा, आराधना, भगवन्नाम, आदि करते हों वहाँ स्वामीजीकी रचित 'पूजा' नामक पुस्तिका केवल माँगने-पर बिना मूल्य भेज दी जायेगी।)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक का निवेदन

(प्रथम संस्करण)

'पूजा' शब्दसे आजकल साधारणतः भिन्न-भिन्न प्रतिमाओंको फल फूल, जल, बेलपत्ती, चन्दन, धूप, दीप, अर्घ्यादि अर्पण करना समझा जाता है। इसके साथ अनेकों त्योहार, आचार-पद्धति और उत्सव-अनुष्ठान आकर मिल गये हैं। पूजाके बाहरके अंगकी तरफ अब हमारी दृष्टि इतनी आकृष्ट हो गई है कि हम पूजा की प्राण-वस्तु अर्थात् उसकी प्रकृत अध्यात्म-साधना प्रायः खो बैठे हैं और पूजाके स्थलोंको बाह्य आडम्बर एवं तामसिक उत्सव-अनुष्ठान में पर्यवसित कर दिया है। किन्तु वस्तुतः भारतवर्षमें वैदिक युगसे लेकर वर्तमान काल तक पूजा एक जीवन्त अध्यात्म-साधना रही है। इस अध्यात्म-साधनाकी धारा अनेक समय फल्गु-स्रोतके समान अदृष्ट होने पर भी आज तक अविच्छिन्न भावसे चली आ रही है और हमारा विश्वास है कि इसीके द्वारा भारतका समग्र जातीय जीवन विधृत है। आजकलके तामसिक भावावरणने जो हमारी सत्य-दृष्टि को ढक लिया है इसको दूर करके अपने आपको साधन-जीवनमें प्रतिष्ठित करनेकी इस समय विशेष आवश्यकता है। इस शुभ संकल्पसे उद्‌बुद्ध होकर पूज्य श्रीस्वामीजीने (जो अपना नाम प्रचार नहीं करना चाहते, इसीसे उनका नाम अप्रकाशित रखा गया है) अपने बन्धुओंमें एक विशेष प्रणाली द्वारा पूजाका प्रचलन किया। इस उद्देश्यसे उन्होंने वैदिक कालसे लेकर विभिन्न समयोंकी अध्यात्म-साधनाके अनुकूल अनेक श्लोक संग्रह किये और अपने भावको प्रकट करनेके लिए कुछ श्लोकोंकी रचना भी की। मुख्यतः इन श्लोकोंकी आवृत्ति ही पूजा है। इसके साथ पूजा के विभिन्न स्तरों तथा भावोंके अनुकूल कुछ संगीत भी संयोजित किये गये। (संगीत बंगला भाषामें होने के कारण इस पुस्तकमें नहीं दिये गये)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वामीजीका सन्देश

(१० जनवरी १९४९ के एक पत्रमेंसे उद्धृत)

"कलियुगमें 'संघ' ही प्रधान अवलम्बन है। संघबद्ध होकर काम करनेसे बाधाएँ कम आती हैं, सुफल-प्राप्ति आसान हो जाती है।.................जहाँ भी रहो कल्याण एवं शान्तिके इच्छुक लोगोंके साथ मिलकर एक संघ (पूजाकेन्द्र) बनानेकी चेष्टा करना। अपने परिवारके सदस्योंको अपने भावके अनुकूल बना लेनेसे यह काम सहज होगा। इसके फलस्वरूप साधन-भजनके अनुकूल एक भावधारा तैयार होगी। यह भावधारा क्रमशः शक्ति लाभ करेगी और चारों तरफ शान्ति वितरण करेगी। इसी कारण मैं संघबद्ध होकर पूजा करना इतना पसन्द करता हूँ।"

(उपर्युक्त उद्देश्यको मूर्तरूप देनेके लिए प्रकाशकने निर्णय किया है कि जहाँ भी चार-छः स्त्री-पुरुष एक गोष्ठीमें बैठकर पूजा, आराधना, भगवन्नाम, आदि करते हों वहाँ स्वामीजीकी रचित 'पूजा' नामक पुस्तिका केवल माँगने-पर बिना मूल्य भेज दी जायेगी।)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक का निवेदन

(प्रथम संस्करण)

'पूजा' शब्दसे आजकल साधारणतः भिन्न-भिन्न प्रतिमाओंको फल फूल, जल, बेलपत्ती, चन्दन, धूप, दीप, अर्घ्यादि अर्पण करना समझा जाता है। इसके साथ अनेकों त्योहार, आचार-पद्धति और उत्सव-अनुष्ठान आकर मिल गये हैं। पूजाके बाहरके अंगकी तरफ अब हमारी दृष्टि इतनी आकृष्ट हो गई है कि हम पूजा की प्राण-वस्तु अर्थात् उसकी प्रकृत अध्यात्म-साधना प्रायः खो बैठे हैं और पूजाके स्थलोंको बाह्य आडम्बर एवं तामसिक उत्सव-अनुष्ठान में पर्यवसित कर दिया है। किन्तु वस्तुतः भारतवर्षमें वैदिक युगसे लेकर वर्तमान काल तक पूजा एक जीवन्त अध्यात्म-साधना रही है। इस अध्यात्म-साधनाकी धारा अनेक समय फल्गु-स्रोतके समान अदृष्ट होने पर भी आज तक अविच्छिन्न भावसे चली आ रही है और हमारा विश्वास है कि इसीके द्वारा भारतका समग्र जातीय जीवन विधृत है। आजकलके तामसिक भावावरणने जो हमारी सत्य-दृष्टि को ढक लिया है इसको दूर करके अपने आपको साधन-जीवनमें प्रतिष्ठित करनेकी इस समय विशेष आवश्यकता है। इस शुभ संकल्पसे उद्बुद्ध होकर पूज्य श्रीस्वामीजीने (जो अपना नाम प्रचार नहीं करना चाहते, इसीसे उनका नाम अप्रकाशित रखा। गया है) अपने बन्धुओंमें एक विशेष प्रणाली द्वारा पूजाका प्रचलन किया। इस उद्देश्यसे उन्होंने वैदिक कालसे लेकर विभिन्न समयोंकी अध्यात्म-साधनाके अनुकूल अनेक श्लोक संग्रह किये और अपने भावको प्रकट करनेके लिए कुछ श्लोकोंकी रचना भी की। मुख्यतः इन श्लोकोंकी आवृत्ति ही पूजा है। इसके साथ पूजा के विभिन्न स्तरों तथा भावोंके अनुकूल कुछ संगीत भी संयोजित किये गये। (संगीत बंगला भाषामें होने के कारण इस पुस्तकमें नहीं दिये गये)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीस्वामीजीकी रचित और प्रचारित इस पूजामें कुछ बातें विशेषरूपसे लक्ष्य करने योग्य हैं। प्रथमतः श्रीस्वामीजीको धारणा थी कि यह पूजा-प्रणाली कोई नई वस्तु नहीं है। यह प्राचीन भारतकी सत्यपूर्ण अध्यात्म-साधनाकी धाराको अनुसरण करके रची गई है; केवल प्राचीन धाराको यथासम्भव वर्तमान समयके उपयोगी बना दिया गया है। द्वितीयतः वे बाह्य पूजाके विरोधी नहीं थे तो भी वे मानसिक पूजाको प्रकृत साधना मानत थे और प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा करते थे। बाह्य पूजा सर्वदा मानसिक पूजाके सहायक एवं परिपोषकरूपमें ग्रहण करने योग्य है।

इस पूजामें सर्वापेक्षा लक्षणीय वस्तु है इसका क्रम। जो श्लोक यहाँ एकत्रित किये गये हैं ये इतस्ततः विक्षिप्त अच्छे-अच्छे श्लोकोंका संग्रहमात्र नहीं हैं। इनके क्रममें एक अखंड साधना-रहस्य अन्तर्निहित है। साधनाके भीतर एक स्तरसे दूसरे स्तरमें तथा एक तत्त्वसे दूसरे तत्त्वमें अग्रसर होनेका एक विशेष क्रम है। यह क्रम श्रीस्वामीजीने अपनी साधना द्वारा अनुभूतिसे लाभ किया। इसलिए श्रीस्वामीजीके पूजा-रहस्यमें प्रवेश करनेके लिए इस क्रमको हृदयंगम करना होगा। अर्थात् पूजाके एक अंगके बाद दूसरा अंग और एक तत्त्वके बाद दूसरा तत्त्व क्यों और कैसे आता है। जो इस पूजाको जीवनगत बनाना चाहते हैं उनको इन पूजा-श्लोकोंके भावार्थके अन्तर्निहित इस क्रमको विशेषरूपसे लक्ष्य करनेकी चेष्टा करनी होगी। पूजामें जो विभिन्न तत्त्व हैं—जैसे गुरु-इष्ट-भगवान तत्त्व, शक्तितत्त्व, पुरुषोत्तमतत्त्व, न्यासतत्त्व, उपचार-समर्पण तत्त्व, प्रणामतत्त्व, विसर्जनतत्त्व, इत्यादि—उनके रहस्योंको अच्छी तरह समझे बिना पूजाका प्रकृत रहस्य समझमें नहीं आयेगा। उदाहरणार्थ प्रचलित विश्वासानुसार ब्रह्म, शिव, शक्ति, कृष्ण, प्रभृति अलग-अलग परस्पर विरोधी तत्त्व माने जाते हैं किन्तु प्रकृत तत्त्व समझमें आ जाने पर मालूम होगा कि विरोध तो कहीं है ही नहीं, वरन् सब एक ही परम तत्त्वके विभिन्न प्रकाश हैं। यह तत्त्व-दृष्टि लाभ होने पर ही समझमें आयेगा कि शक्तितत्त्वके बाद पुरुषोत्तम तत्त्व क्यों आता है। श्लोकोंकी अन्वय-व्याख्याके बीच-बीचमें ये सब तत्त्व और इनका आपसमें अभिन्न मेल समझानेकी चेष्टा की गई है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधन रहस्यका पूरा विवेचन पूजाके श्लोकोंकी अन्वयमूलक व्याख्या तथा सम्बन्धित आलोचनामें लिखना सम्भवपर नहीं हुआ। इसलिए एक दीर्घ परिशिष्ट पीछे दिया गया है जिसमें ध्यान, जप, षट्चक्रभेद, कुल-कुण्डलिनी-जागरण एवं साधनाके अन्यान्य गूढ़ रहस्योंको यथासम्भव समझानेकी चेष्टा की गई है। साधनाके रहस्योंको पूर्णरूपसे लिखना या समझाना कभी भी सम्भवपर नहीं, तो भी प्रकृत साधक (सत्यके खोजी) की सुविधाके लिए जहाँ तक हो सका आभासरूपसे इन रहस्योंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की गई है। इस विवेचनमें किसी पांडित्यमूलक आलोचना अथवा कूटतर्कमें प्रवेश नहीं किया गया है, केवल सर्वसाधारणके लिए ग्रहणयोग्य और यथासम्भव सहज और सरल बनानेका प्रयत्न किया गया है।

अन्वयमूलक व्याख्याके बीच-बीचमें जो संक्षिप्त आलोचना हैं और परिशिष्टमें जो विभिन्न तत्त्वोंका विवरण है इनमें मेरे लेख और स्वामीजीके लेख मिले-जुले हैं। इन विषयोंमें मेरा उनसे एकमत होने के कारण ही ऐसा किया गया है। फिर भी कहीं-कहीं पर केवल मेरे लेख उद्धरण चिह्न ("—") के भीतर दिये गये हैं।

जिनके लिए यह ग्रन्थ लिखा गया है उनको यदि इससे अध्यात्म जीवनको प्रेरणा और पथका संधान लाभ हो तो हमारा उद्देश्य सफल होगा।

भक्त-बन्धुओंके विशेष अनुरोध ने, माताजी की आत्माकी तृप्तिके लिए, पं० ओंकारनाथ मुट्टूको इस पुस्तकका हिन्दीमें अनुवाद करनेको बाध्य किया। इस काममें व्यय का कुल भार उन्होंने लिया है। इसलिए इस पुस्तक की बिक्रीसे जो अर्थ-प्राप्ति होगी उसके अधिकारी वे ही होंगे। इस पुस्तकका सर्वस्वत्व उन्हींका होगा।

२ए, सिगरा, वाराणसी। श्रीगोपीनाथ कविराज

रासपूर्णिमा, सं० २०१४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुखबंध

भारतके प्राचीन ऋषि-मुनियोंने ध्यानयोगमें पूर्णरूपसे समाहित होकर भगवान्‌की आत्म-शक्ति साक्षात्कार की—**"ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैः निगूढाम्"**। तब शक्तिके स्वरूप और कार्यप्रणाली-निर्णय की चेष्टा आरम्भ हुई। इसके बाद उन्होंने आविष्कार किया कि शक्ति ही जीव-जगत्‌की सृष्टि-स्थिति-लयका मूल है। यही शक्ति सबके भीतर छिपी हुई सबको चलाती है और सबके लिए जो कुछ प्रयोजनीय हैं उसकी व्यवस्था करती है—**"याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः"**। तब मालूम हुआ कि शक्तिके बिना हमारी आँखें देख नहीं सकतीं, कान सुन नहीं सकते, मन चिन्ता नहीं कर सकता, हाथ काम नहीं कर सक्ते; पाँव चल नहीं सकते और प्राण जीवित नहीं रह सकता। शक्तिके अभावसे हमारे माँ-बाप, भाई-बहन, बन्धु-बान्धवोंका तथा हमारा भी अस्तित्व लोप हो जाता हैं। फिर अनुभवमें आया कि ये शक्ति सच्चिदानन्दमयी हैं और वे हमको जीवित रखनेमें, पूर्ण परिणति दान करनेमें तथा हमको ज्ञान, आनन्द, सुख, शान्ति, सौन्दर्य और माधुर्यसे पूर्ण विभूषित करनेमें सदा व्यस्त हैं। वे हमको पूर्ण परिणति दान करना चाहती हैं और हमारी भगवत्-प्राप्तिमें सहायक होना चाहती हैं परन्तु हम संस्कारवशतः और अज्ञानताके भावसे उनके काममें बाधा देकर अपने लिए समस्त दुःख-कष्टकी उत्पत्ति करते हैं। इसके बाद अनुभावमें आया कि हम मानो अनादि अज्ञानके प्रभावसे अपने आनन्दमय स्वरूप-को भूलकर एक अप्राकृत आनन्दके देशसे इस दुःखमय संसारमें आ पड़े हैं। तब-से माँ हमारे स्वरूपको जगाकर हमको अपने आनन्द-धाममें वापस ले जाने के लिए व्यस्त हो गई हैं। माँ क्या कभी सन्तानका दुःख-कष्ट सहन कर सकती हैं। तो भी प्रेमानुरक्त माँ हमारे ऊपर बल व्यवहार नहीं करना चाहतीं, हमसे जबरदस्ती कोई काम नहीं कराना चाहतीं। इसीलिए हमारे चारों ओर आनन्द-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
की लीला फैलाई हुई है। उनकी समस्त प्रकृति आनन्दका वेष धारण कर हमारा मन हरण करनेमें व्यस्त है। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध हमको प्रलुब्ध कर माँके देशमें ले जानेकी चेष्टा कर रहे हैं। हमारा प्रकृत स्वरूप आनन्दमय है। हम सच्चिदानन्दमयकी संतान हैं। चारों तरफकी आनन्द-विभूति हमारे भीतरकी भूली हुई आनन्द-स्मृतिको जगानेकी चेष्टा कर रही है। यथाक्रम तब हम आनन्दके लिए लुब्ध हो पड़े और चारों तरफ आनन्दकी खोज शुरू हो गई। अभ्यासके दोषसे हमारी पाचन-शक्ति लोप हो गई। अर्थात् हमारी आनन्द ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रही है। इसीसे माँ अपने परम आनन्द स्वरूपको छिपाकर हमारे ग्रहणयोग्य माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी आदिका रूप धारण कर हमारे सामने उपस्थित हुई हैं और हमारे चारों तरफ सौन्दर्य माधुर्य विस्तृत किये हुए हैं। सभी विषयोंमें शिक्षक-गुरुकी आवश्यकता होती है। इस हेतु माँ महात्माओंका रूप धारण कर हमारी ग्रहणयोग्यता बढ़ानेको चेष्टा करती हैं। ज्यादा खाकर अस्वस्थ न हो जाएँ इस कारण भगवद्-विधान आविष्कृत हुआ और अनुभवमें आया कि माँ एकाधारमें विधान भी हैं और विधाता भी। हम माँका विधान पालन करके ही विधाताके निकट जा सकते हैं। तब वेदादि शास्त्र आविष्कृत हुए, यथाक्रम माँकी मूर्ति नजरमें आने लगी, जिससे हम कभी भूल न जाएँ कि माँका विधान पालन करनेमें सुख और विधान लंघन करनेमें दुःख-कष्ट है। दुर्गा, काली, आदि मातृ-मूर्त्तियाँ इसी भावकी द्योतक हैं। जीवने पहले भयसे माँका विधान पालन करना आरम्भ किया, फिर धीरे-धीरे रुद्ररूपी भगवानका करुणामय रूप दर्शनमें आने लगा।

हमारा स्वरूप आनन्दमय है—इसीसे तो चारों तरफ आनन्दकी खोज चल रही है। **जीव जो कुछ सोचता या करता है उसका मूल कारण आनन्द है।** आनन्दका ठीक रास्ता ढूँढ़ नहीं पाता और प्रलोभनके वश अनेक समय गलत रास्तेपर चलने लगता है। किन्तु चाहे वह समझे या न समझे वह चाहता है केवल आनन्द। हमारे सब साधन-भजन और कार्यकलापके मूलमें यही आनन्दकी खोज है—आनन्दमय विस्मृत स्वरूपका संधान लाभ करना (to regain the lost Paradise)। माँ चाहती हैं आनन्द देना, आनन्दके रास्तेपर
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

चलाना। हमारी देह तथा मनका प्रत्येक परमाणु आनन्दकी खोजमें लगा है। इस आनन्दकी तालमें बाधा न देकर माँके चलाये हुए रास्तेपर चलना और आनन्द लाभ करना ही सब कार्योंका लक्ष्य है। माँका उद्देश्य जानकर माँकी इच्छाके आगे अपनी विकृत इच्छाको समर्पण करना और माँके पथपर चलनेके लिए दृढ़प्रतिज्ञ होना ही प्रकृत 'दीक्षा' है। माँकी संगतिमें चलते-चलते माँके संग उनके आनन्दधाममें प्रवेश लाभ करना ही साधनाका लक्ष्य है। माँके आनन्दधाममें प्रवेश लाभ करनेपर उनकी लीला दर्शन करना और उनकी आनन्द-लीलामें सहायक होना ही प्रकृत 'भजन' है। साधन होता है प्रवर्त्तक अवस्थामें और भजन साधित होता है सिद्ध अवस्थामें। साधकको चित्तको शून्य करना होगा और माँ हमारे शून्य चित्तको पूर्णत्वसे भरपूर कर देंगी।

वस्तुतः भगवानकी चित्शक्ति स्वयं ही भगवानकी पूजा करती हैं। ये शक्ति परिग्रह-शक्तिके रूपमें अपनी प्रिय सन्तानको अपने धाममें ले जानेके लिए, उसको भगवद्-भावसे परिभावित करनेमें और उसको भगवत् प्राप्ति अर्थात् पूर्णता लाभ करानेमें सर्वदा व्यस्त हैं। वे हमारे भीतर बैठी हुई हमको यह परिणति दान करनेके लिए कितनी सचेष्ट हैं इसको यथासम्भव जानकर अपने जीवन तथा कार्यकलापको उसके अनुकूल करना ही हमारी पूजा है। जिससे हमारे कामना वासना आदि शक्तिके कार्यमें बाधा न दें, इसका नाम है शुद्धितत्त्व। ध्यान द्वारा हम माँका उद्देश्य जाननेकी चेष्टा करते हैं और उपलब्धि द्वारा उनसे तन्मयता लाभकर अपने स्वरूपमें समाहित हो जाते हैं। हमारी पूजा माँकी पूजाकी नकल-मात्र है। यहाँ पुरुषमेध एवं नरमेध यज्ञका तत्त्व तुलनीय है।

साधारणतः भगवान और साधन-भजनके संबन्धमें जो अविश्वास और अश्रद्धा देखी जाती है—विशेषतः शिक्षित सम्प्रदायमें—उसके लिए हम ही दायी हैं। हमारे भाव, वचन और कर्मको देखकर लोग भगवानमें विश्वास करनेमें लुब्ध नहीं होते। आनन्दमयके उपासकको सर्वदा आनन्दमें रहना और सबको आनन्द देते रहना अत्यावश्यक है। संशय और निराश भाव नास्तिकको ही शोभा देता है। जो भगवानमें विश्वास करता है उसको कोई अनुचित कार्य करनेकी प्रवृत्ति या साहस नहीं होना चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

दु:खकी बात है कि जो कहते हैं कि "मैं भगवान्‌को नहीं मानता, साधन-भजनमें विश्वास नहीं करता" वे एक बार भी सोचकर नहीं देखते कि प्राचीन ऋषि-मुनि अथवा आधुनिक साधकगण भगवान् किसको कहते हैं, उनका स्वरूप क्या है और उनको पानेका उपाय क्या है। यदि भगवान हमारे जीवन-धारणमें, उन्नति-लाभमें एवं पूर्णता-प्राप्ति में सहायक हों और साधन-भजनका यही उद्देश्य हो तो "साधन-भजनको नहीं मानता" कहना एक बड़ी मूर्खताकी बात होगी। जिसको 'जानता नहीं' उसको कहना 'मानता नहीं' यह बुद्धिमानीका लक्षण नहीं है। भगवान यदि सच्चिदानन्द हों तो अपनी सत्ताको सार्थक करना अर्थात् जीवित रहना, ज्ञान प्राप्त करना तथा आनन्द लाभ करना—एक शब्दमें सत्ता, चैतन्य और आनन्दसे पूर्णतया विभूषित होना—कौन नहीं चाहता।

हमारे भगवान एक ऐसी वस्तु हैं जिनके अप्रकाशसे हमारे आत्मीय स्वजन तक हमारे मुखमें आग लगाकर हमको तिलांजलि देनेको बाध्य होते हैं। "कुछ जानता नहीं, मानता भी नहीं" इस उक्तिमें मेरा अस्तित्व होना आवश्यक है। इस 'मैं' के अनुसंधानमें, विशेष विचारके पश्चात्, ऋषियोंने एक स्थायी और उत्तम 'मैं' खोज निकाला जिसका प्रकृत स्वरूप वाक्य और मनके अगोचर है। तत्त्वदर्शी ऋषियोंने उनको सच्चिदानन्द रूप निर्धारित किया है। वेद कहते हैं कि वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी। वे अपनी शक्ति द्वारा जितना अपने आपको प्रकाशित करते हैं अर्थात् हम अपनी इन्द्रियोंको शुद्ध और परिणतकर शक्तिकी सहायतासे जितना उनके स्वरूपको जान सकते हैं, उसी अवधि तक वे सगुण हैं। इसके परे उनका जो अज्ञात, अपरिचित अथवा अप्रकाश अंश है वह निर्गुण है। तत्त्वदर्शी ऋषियोंने भगवानके प्रकाशांशको अवलम्बनकर उनको सगुण, सच्चिदानन्द, पुरुषोत्तम, आदि नामसे निर्देश किया है। जो शक्ति जगत्‌के अनन्त वैचित्र्यकी, अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य और लावण्यकी तथा अनन्त शक्ति और आनन्दकी मूल प्रस्रवण है एवं अशेष कल्याण गुणकी खान है—हम उसके अंश अथवा प्रतिबिम्ब हैं—वही अनन्त शक्ति बीजाकारमें हमारे भीतर सुप्त भावमें अवस्थित है। इस शक्तिको जागरितकर—अपने आपको भगवद् भावसे परिभावितकर, भगवत्-शक्ति युक्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

होकर—भगवत्-प्रिय कार्य साधनमें नियुक्त रखना ही जीवनका परम व चरम उद्देश्य है।

साधन क्या है? भगवत्-प्राप्ति अर्थात् पूर्णता लाभ करनेका सहज, सुन्दर और स्वाभाविक उपाय (The easiest, best and the most natural method of attaining perfection)। जिससे हमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पूर्ण परिणति लाभ हो उसीका नाम साधना है। शरीर स्वस्थ, सबल और कार्यक्षम हो; मन ज्ञान, प्रेम और आनन्दसे भरपूर रहे; सब जीवोंको अपने प्रेमास्पद भगवानकी जीवन्त मूर्ति जानकर सबके कल्याण साधनमें हम सचेष्ट हों—यही साधनाका लक्ष्य है। साधनाके सम्बन्धमें लोगोंकी विकृत धारणा दूर हो जानेपर, हमारा विश्वास है, कि अविश्वासी नास्तिकभी साधन-भजन करनेको लुब्ध होंगे। स्वस्थ शरीर और मनकी प्रसन्नता कौन नहीं चाहता। भगवत्-विधान जानकर और उसके अनुकूल चलकर जीवनमें उन्नति लाभ करना अर्थात् परमानन्दमें वास करना ही साधन-भजनका उद्देश्य हैं। जो उन्नति और शान्ति लाभ करनेकी चेष्टा करते हैं वे अज्ञात रूपसे श्रीभगवानकी साधना करते हैं। अगर वे साधन-तत्त्वसे अवगत होते तो समझ सकते कि चरम उन्नति एवं परम शान्ति सहज, सुन्दर और स्वाभाविक उपायसे कैसे प्राप्त की जाए। शास्त्र, गुरु और विवेककी सहायतासे जानना होगा कि मेरे जीवनका प्रकृत लक्ष्य क्या है, मैं क्या करने आया हूँ, मेरे जीवनकी चरम सार्थकता कहां है और मैं किस उपायसे पूर्ण परिणति तथा परम शान्ति लाभ कर सकता हूँ। **पण्डितोंने विशेष रूपसे विचार करके पता लगाया है कि धन-दौलत, स्वजन-बन्धु, भोगैश्वर्य, आदिसे जो सुख प्राप्त होता है वह सामयिक है, स्थायी नहीं होता।** इस सुखसे मनकी प्रकृत प्यास नहीं मिटती। ऋषियोंने जीवनमें प्रत्यक्ष-कर प्रमाणित किया है कि जीवनका चरम उद्देश्य भगवत्-प्राप्ति है। भगवत्-प्राप्तिका अर्थ ही है पूर्ण परिणति अथवा चरम शान्ति लाभ करना। अपने देह, मन और आत्माके समस्त कार्योंको भगवत्-प्राप्तिके, पूर्णता लाभके, अनुकूल करना ही हमारी साधना हैं। ज्ञान तथा ज्ञानीकी सहायतासे यह परम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्त्व और इसकी प्राप्तिके उपायको जान लेना होगा और कर्मक्षेत्रमें अपने जीवनको उसके अनुसार चलाकर परम शान्ति लाभ करना होगा अर्थात् जीवनका उद्देश्य सफल करना होगा।

साधारणतः साधन प्रणाली दो भागोंमें विभक्त है—(१) साधना अवस्थाके लिए और (२) सिद्ध अवस्थाके लिए।

साधन अवस्था—भगवानको—भगवत्-तत्त्वको—नित्यसिद्ध, स्वयं-प्रकाश कहा गया है। साधन-भजन केवल उनकी प्राप्तिको बाधाओं को दूर करनेके लिए हैं।

"नित्य सिद्ध कृष्णप्रेम साध्य कभु नय।
श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय।"

(चैतन्य चरितामृत)

'निमित्तम् अप्रयोजकम् प्रकृतीनाम् आवरण-भेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्' (पतंजलि)। आवरण हैं—मलिनता, अज्ञानता, कामना, बासना, आसक्ति, अहंकार निज-सुख-स्पृहा, प्रतिष्ठा-मोह आदि। सभी सम्प्रदायों ने इनको दूर करने के लिए उपदेश किया हैं। जीवका काम केवल आवरण दूर करना है, तदनन्तर स्वयंप्रकाश अपने-आपही प्रकाशित हो जाते हैं। इसलिए स्नान, संयम, साधन, श्लोक पाठ, सत्संग, पुण्य, अनुष्ठान, जीव-सेवादिका उल्लेख देखा जाता है। ये सब शुद्धितत्त्वके अन्तर्गत हैं। इसके पश्चात् धारणा, ध्यान और समाधिकी आवश्यकता होती है।

सिद्ध अवस्था—सिद्ध अवस्था में साधन-भजनके विघ्न, बाधा और आवरणादिके दूर हो जानेके फलस्वरूप सर्वत्र ब्रह्म-दर्शन लाभ होता है। जीव-जगत् भगवानकी जीवन्त मूर्ति हो जाते हैं। तब सर्वत्र ब्रह्म-दर्शन, ध्यान और सेवा स्वाभाविक हो जाने के कारण सिद्ध पुरुषके सब भाव, चिन्तन और कार्य पूजामें परिणत हो जाते हैं। भगवानकी लीला दर्शन करना और अपने-अपने अधिकारानुसार भगवत्लीलामें योग देना ही उनका एक मात्र कार्य और साधना हो जाती है। 'मत्कर्मकृत् मत्परमो मद्भक्तः' (गीता ११-१५) का भाव तब जीवनमें प्रकृत सत्य मूर्ति रूपमें दिखाई देता है। यही पूजा भारतके प्राचीन ऋषि करते थे और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी पूजामें वृन्दावनकी गोपियाँ विभोर रहती थीं। भगवानको छोड़कर वे न कुछ जानते थे, न सोच सकते थे। भगवानके कार्यके अतिरिक्त वे कुछ कर ही नहीं सकते थे।

साधनाके भीतर तीन तत्त्व अनुभवमें आते हैं :—(१) शुद्धि (२) ध्यान और (३) उपलब्धि। शुद्धि-तत्त्वका उल्लेख आगे किया गया है।

ध्यानकी सहायतासे आत्मदर्शन सुलभ होता है। और भगवत्स्वरूप तथा उसकी कार्यप्रणाली और लीला रहस्य अनुभव करनेकी योग्यता लाभ होती है। इसके फलस्वरूप उपलब्धिका रास्ता खुल जाता है। तब यह अनुभवमें आने लगता है कि भगवान बाहर एवं भीतर बैठे कैसे लीला कर रहे हैं और इस लीलाका उद्देश्य क्या है। इसके बाद साधक अपने कर्मके द्वारा ध्यानसे उपलब्ध भगवत्-लीलाके अनुकूल अपने जीवनको नियन्त्रितकर, स्वधर्म पालनकर, इस लीलामें सहायतभूत होता है।

जीव भगवान्की विभूति अथवा संतान-संतति है। बाल-बच्चोंको सुखी न करके माँ-बापको सुखी नहीं किया जा सकता। सन्तानकी सेवा ही माँ-बापकी सेवा है। इसलिए जीवके स्नान-आहारादि के द्वारा विश्वरूप भगवानको स्नान-आहारादि अर्पण करनेकी व्यवस्था है। हम शुद्ध और शान्त होकर जीवकेभीतर ही शिवका दर्शन लाभ करते हैं। तब जीव-प्रेम भगवत्-प्रेम और जीव-सेवा भगवत्-सेवामें परिणत हो जाते हैं। साधक अपने आत्माको सर्वभूतात्मरूपमें अनुभव करता है। वह सबके भीतर आत्मदर्शन करनेकी और आत्माको अर्थात् भगवानको प्रस्फुटित करनेकी चेष्टा करता है। अपनी उन्नति एवं शान्तिके लिए जितनी चेष्टा करता है सबके सुख और शान्ति के लिए उतनी ही चेष्टा करे बिना नहीं रह सकता। साधक 'पर' किसीको नहीं समझता। उसके कोषानुसार जीवसेवा आत्मसेवाका ही नामान्तर है। सब भूतोंमें आत्मदर्शन, आत्मोपलब्धि, आत्मसेवा उसकी साधनाका उद्देश्य है। वह सत्य-प्रतिष्ठा द्वारा सर्वत्र आत्म-दर्शन, प्राण-प्रतिष्ठा द्वारा सर्वत्र भगवत्-लीला-रस आस्वादन तथा आनन्द-प्रतिष्ठा द्वारा आनन्द-रसमें विभोर और समाहित रहता है और अपने-आप

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विभोर और समाहित होकर सबको यह आनन्द-रस आस्वाद करने की योग्यता प्रदान करने की चेष्टा करता है।

प्रकृत साधककी दृष्टिमें संसार भगवानका आनन्दधाम है और जीव वेष धारण किया हुआ शिव अर्थात् भगवानकी जीवन्त मूर्त्ति है। मालूम पड़ता है कि जैसे भगवान हमारे ग्रहणयोग्य होने के लिए आत्मीय स्वजनोंके रूपमें हमारे सामने उपस्थित हैं। माँ-बाप--अन्नपूर्णा; विश्वनाथ; पति---शिव, राम व कृष्ण; स्त्री—पार्वती, सीता व राधा; लड़का--बालगोपाल ; लड़की—कन्या भगवतीरूपमें दिखाई देते हैं। सबके भीतर भगवानका ध्यान और दर्शन लाभ करनेके लिए वह प्रार्थना करता है। सबकी सेवा उसकी पूजामें परिणत हो जाती है, जीवन मधुमय, कार्य साधनामय और निद्रा समाधि हो जाती है।

'पूजा'—श्रेष्ठ व्यक्ति अथवा श्रेष्ठ तत्त्वके सान्निध्यसे श्रेष्ठता लाभ करना। 'उपासना'--उपास्यके सान्नियसे उपास्यके भावसे परिभावित होना, जैसे आगके सान्निध्यसे देह गर्म हो जाती है और बरफके सान्निध्यसे देह शीतल हो जाती है। किसी आदर्श जीवन अथवा तत्त्वको सामने रखकर, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा उसमें तन्मय हो जाना पूजाका उद्देश्य है। जो किसी आदर्श चरित्र को अवलम्बनकर अपने जीवनको आदर्श-स्थानीय बनानेकी चेष्टा करते हैं वे, चाहे मानें या न मानें, उस आदर्श चरित्रकी पूजा करते हैं।

"मुक्तिर्हित्वाऽन्यथाख्याति स्व-स्वरूपेणावस्थितिः"—हमारे शास्त्रने सिद्धिको स्वरूपोपलब्धि और मुक्तिको अन्यथा-ख्यातिरहित अपने स्वरूपमें अवस्थिति कहा है। हार अपने गलेमें है लेकिन अपने गलेकी तरफ न देखकर हम हार ढूँढ़ने में लगे हैं। कस्तूरी मृगकी नाभिमें है लेकिन कस्तूरी-गन्धसे लुब्ध हरिण गन्धकी खोजमें पागलके समान इधर-उधर दौड़ता फिरता है। वास्तवमें भगवान हमारे भीतर ही है, उन्हींकी शक्तिसे सब काम हो रहा है, वे ही हमारे भीतर लीला-रत हैं लेकिन हम भीतर की तरफ न देखकर उनको बाहर खोजते-फिरते हैं। अपने भीतर के छिपे हुए तत्त्वको बाहरकी मूर्तिमें आरोपकर, शास्त्रोक्त विधानानुसार साधना द्वारा उनकी स्वरूपोपलब्धिकर, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा उनसे तन्मयता लाभकर, हम अपने भीतरके अदृष्ट तत्त्वका दर्शन लाभ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

करते हैं। जो सत्य होते हुए भी असत्य अथवा असम्भव मालूम होता था उसमें सत्यारोपकर उस सत्यको प्रत्यक्ष करना ही हमारी साधनाका उद्देश्य है। सुतरां 'पूजा' है वास्तवमें विस्मृत स्वरूप अथवा तत्त्वकी पुनरुपलब्धि (Regain of lost Paradise)।

असाधक अवस्थामें जिनके अनुकूल होना तो दूर रहा जिनके अस्तित्व तकमें विश्वास नहीं करता था सद्गुरुने अपना आदर्श जीवन सामने रखकर उनसे कुछ परिचय करा दिया। तत्पश्चात् उनके सान्निध्यसे अर्थात् उनकी तत्त्वोपलब्धिके फलस्वरूप अपना अन्तस् जितना उनके भावसे भावित होने लगा, उतना ही मैं अज्ञात रूपसे उनके अनुकूल होने लगा। अन्तमें ऐसा समय आया जब मैं उस आदर्श तत्त्वमें समाहित होनेके कारण, आदर्शका सारूप्य लाभकर, स्वयं आदर्शमय हो गया। जो असम्भव मालूम होता था वह सत्यमें परिणत हुआ। साधक साधना द्वारा इष्ट तत्त्वमें समाहित होकर इष्टमय हो जाता है। "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" का प्रकृत अर्थ तभी समझमें आता है। **कोई तत्व जब तक सिद्ध जीवनमें दृष्ट होकर और साधना द्वारा उपलब्ध होकर अपने जीवनमें प्रत्यक्षीभूत न हो तब तक उस तत्वका वास्तविक अर्थ समझमें नहीं आता।**

दीक्षाके मन्त्रमें एक शब्द होता है। इष्टके जीवनके भीतर उसका अर्थ उपलब्ध होता है। साधना द्वारा प्रत्येक तत्त्वमें इष्टकी लीला अनुभव करनेके फलस्वरूप उसकी प्राणप्रतिष्ठा होती है। तब मंत्रको सिद्धि प्राप्त होती है।

वैदिक युगमें साधनाके लिए शिष्यको गुरुके घर जाना होता था। वहाँ रहकर शिष्यको गुरुके आदेशानुसार चलना होता था। इसके परिणामस्वरूप शिष्य समस्त उच्छृङ्खलतासे रक्षित हुआ प्रकृत स्वाधीनता लाभ करनेका सुयोग पाता था। कारण, 'स्वाधीन' का अर्थ है स्वके, आत्माके, भगवानके, भगवद्-विधानके अधीन होना। संयत शुद्ध शिष्य शास्त्र, गुरु और विवेककी सहायतासे अपने जीवनका लक्ष्य निर्णयकर, उस लक्ष्यका पूर्ण विकास और स्वरूप सद्गुरु अथवा इष्ट-तत्वके भीतर उपलब्धकर और आदर्शानुसार अपना जीवन गठनकर, उसमें तन्मयता लाभकर, अपने भीतर बीजाकारमें निहित भगवत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिको पूर्ण विकसित करनेका सुयोग पाता था। गुरु शिष्यको स्वधर्मका तत्त्व अर्थात् अपने प्रति कर्तव्य रूप आश्रमतत्त्व (Duty to Self) एवं समाज अथवा जीवजगत्के प्रति कर्तव्यरूप वर्णतत्त्व (Duty to Society) और उसकी साधन-प्रणाली उत्तम रूपसे समझा देते थे। अपने जीवनमें भगवद्इच्छा जानकर स्वधर्म्म पालन द्वारा उस इच्छाको पूर्ण करनेके लिए व्रती होनेका नाम ही था 'दीक्षा'। शिष्य गुरुको—अपने इष्टको—अपने भीतरकी बीजरूप निहित भगवत् शक्तिकी पूर्ण विकसित अवस्था समझता था। उनके आदर्शानुसार जीवन गठनकर, उनसे तन्मयता लाभकर, ठीक उनके समान हो जाना ही उसकी साधनाका उद्देश्य होता था।

साधारणतः साधकगणको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया जाता है—ज्ञानी, योगी और भक्त। ज्ञानीका प्रधान लक्ष्य है ब्रह्ममें तादात्म्य लाभ करना, उपाय है आत्म-अनात्म-तत्त्वका विवेक। योगीका लक्ष्य है जीवात्मा और परमात्माका मिलन-साधन, उपाय है अपनेको परमात्मासे युक्तकर अनासक्त फलाकांक्षारहित होकर यज्ञार्थ कर्म करना। भक्तका लक्ष्य है भगवानसे प्रेम लाभ करना, अपने जीवनमें, भाव, वचन और कर्म द्वारा भगवद्-इच्छा सफल करना; उपाय है भगवानको आत्मनिवेदन, सर्वत्र भगवत्-लीलाकी अनुभूति, जीव-जगत्को भगवत्-विभूति जानकर जीवकी सेवा करना। भक्तियोगमें फिर शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावके साधक दृष्ट होते हैं।

पूजा एक प्रकारका आरोप-साधन (auto-suggestion) है। अपनी अनुभूतिको आदर्श चरित्रमें आरोपितकर, उसके भीतर भगवद्-भावके ध्यान द्वारा भगवत्ता उपलब्धकर, उस भगवत्-तत्त्व—भगवद्-भाव—को अपने भीतर प्रस्फुटितकर—अनुभवकर—भगवद्-भावसे भरपूर हो जाना ही पूजाका उद्देश्य है। भगवान हमारे भीतर हैं लेकिन हम उनको देख नहीं पाते। उनके अस्तित्वमें विश्वासकर; मनको वाह्य विषयोंसे हटाकर, कल्पना द्वारा उस भगवत्-तत्त्वका ध्यान करते-करते वह छिपा हुआ तत्त्व अनुभवमें आ जाता है।

जो तत्त्व स्थूल दृष्टिसे दिखाई नहीं देता, चिन्तासे धारणामें नहीं आता, उस तत्त्वकी उपलब्धि करनेका एक मात्र उपाय यही है कि जिन्होंने उस तत्त्वको

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपलब्धि की है उनके उपदेशानुसार साधन-भजन द्वारा उसको उपलब्ध करनेकी चेष्टा करना। अपरोक्ष दर्शीकी अनुभूतिको सत्य मानकर ही हमारा शास्त्र बना है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि विज्ञान और दर्शन उसका खंडन न करके भविष्यमें उसका मंडन करनेको बाध्य होंगे। इसीलिए हम विज्ञानका बहुल प्रचार पसंद करते हैं। हमारा विश्वास है कि भविष्यत्‌में एक समय आयेगा जब शिक्षित सम्प्रदाय हमारी साधन-पद्धतिको विज्ञान-सम्मत और कल्याणप्रद समझकर साधना द्वारा सिद्धि लाभ करनेका प्रयत्न करेंगे।

भगवान जगत्‌की सृष्टि करके सब सृष्ट पदार्थोंके भीतर प्रवेश कर गये। जगत्‌का सब कार्य उनके सान्निध्यसे, उनकी इच्छासे तथा उनकी शक्तिसे हो रहा है। जीवका अहंकार उसके और भगवानके बीचमें आकर, भगवानको देखने नहीं देता और भगवानके सब कर्मोंको अपना कहकर, सब कर्मोंको विकृत कर, भगवत् लीला आस्वाद करनेमें—भगवद्-इच्छा सफल होनेमें—भवगत्-लीला अनुभव करनेमें बाधा देता है। परिणाम यह होता है कि आनन्दधाम संसार रूपी बंदीशाला मालूम पड़ती है; लीला कर्म-भोग प्रतीत होती है; कर्ममें बन्धन-बोध आ जाता है; आत्मीय अनात्मीय हो जाते हैं; अपना पराया मालूम होता है और जीवन आनन्दका स्फुरण न होकर एक दुर्विषह्य बोझ हो जाता है। रज्जुको कल्पित सर्पकी नाई हम नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तआनन्द-स्वरूपको अनित्य-मलिन-त्रस्त-भीत-अशान्त-दुखप्रपीड़ित समझ बैठते है।

जिससे भगवान और जीवके बीचका कल्पित आवरण दूर होकर स्वप्रकाश भगवान अबाधितरूपसे प्रकाशित तथा अनुभूत हों; हमारे जीवनमें उनकी इच्छा पूर्ण सफलता लाभकर हमारे देहादिको उनके हाथ के यन्त्रमें परिणत करे; जिससे हम अपने जीवनको उनके लीलारसका स्फुरण—आनन्दका प्रकाश—अनुभवकर जगत्‌को आनन्दधाम तथा जीवको वेष धारण किया हुआ शिव समझकर हम उनका लीला-रस आस्वादन करते-करते उनके आनन्दमें विभोर होकर उनमें तन्मयता लाभ कर सकें, यही पूजा का—साधनभजनका उद्‌देश्य है।

याद रखना होगा कि जीव-जगत् चरम और परम तत्त्वका विकास है। पुरुषोत्तमकी देहमें यह तत्त्व पूर्ण रूपमें जीवनगत अर्थात् सत्यमें परिणत हुआ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

है (Principle Personified—Abstract Concretised)। हमारे पुरुषोत्तम दुर्गा, काली, आदि तात्त्विक मूर्तियोंके जीवन्त विग्रह हैं जिनके भीतर समस्त चरम तत्त्व जीवनगत एवं सत्यमें परिणत हुआ है। अर्थात् वाक्य मनसे अतीत तत्त्व कुछ अनुभववेद्य (ग्रहणयोग्य) होकर आदर्श गुरु व इष्ट रूपमें परिकल्पित हुआ है। इन्हीं पुरुषोत्तमको अवलम्बनकर चरम तत्त्व आस्वाद किया जा सकता है।

हरि ॐ तत् सत्

दैनिक पूजा

(१) प्रातः उठकर पहले बिछौने में ही बैठकर भगवान का नाम करे।

(२) रातको दिन भरकी रक्षा के लिए कृतज्ञता प्रकट करे।

(३) स्नानके समय मनको धोकर पवित्र करनेके लिए प्रार्थना करे।

(४) घर मकान साफ करते समय भगवानसे प्रार्थना करे कि तुम मेरे हृदयको साफ कर दो।

(५) आहार के समय अन्नको प्रसाद बना देनेके लिए प्रार्थना करे।

(६) काम करते समय ठीक पथपर चलानेके लिए प्रार्थना करे।

(७) सन्ध्याके समय दिन भरकी मलिनता धोकर पवित्र करनेके लिए प्रार्थना करे।

(८) रातको सोते समय उनकी सन्निधि विशेषतः उपलब्धि करनेकी चेष्टा करनी चाहिए—'प्राक्षाल्य धूलिमलिनं तनयं स्वकीयं क्रोडे नयाशु जगदीश कृपानिधान'—श्लोक नं० ९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ

मंगलाचरण—यहां पूजाका सार अंश संक्षेपतः निर्देश कर शुभकार्यमें भगवत्कृपाकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करनी चाहिये ।

विष्णुस्मरणम्

ॐ तत् सत् ॥ १ ॥

यह मंत्र भगवत्-स्वरूपका द्योतक है। गीतादि शास्त्रोंमें ॐ तत् सत् मन्त्र उच्चारण करके सब शुभ कार्य आरम्भ करनेकी व्यवस्था देखी जाती है। 'ॐ तत्सत्' में हमें तीन शब्द मिलते हैं। यह 'ॐ' शब्द महर्षि पतंजलिके मतानुसार परमेश्वरका वाचक है—'तस्य वाचकः प्रणवः'। ॐकार भगवानका पूर्ण-स्वरूप प्रतिपादन करता है। यह भगवानके सगुण एवं निर्गुण दोनों भावोंका द्योतक है। अकार-उकार-मकार, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, स्थूल-सूक्ष्म-कारण, सृष्टि स्थिति-लयात्मक ब्रह्मा-विष्णु-शिवके द्योतक हैं। अर्घमात्रा नाद-बिन्दु-कला स्तर तक—यहाँ तक कि शुद्ध आत्माकी चित्-कलाके स्तर तक विस्तृत है। अकार-उकार-मकार सगुण भागके एवं अर्घमात्रा निर्गुण भावकी द्योतक होने के कारण अनेक लोग ॐकार शब्दको शिव-शक्तिकी युगल मूर्ति रूपमें ग्रहण करते हैं।

'**ॐकार**' मंत्रके साधनसे हम चित्तको मेरुदंडस्थ मूलाधार चक्रसे सहस्रार तक ले जाकर निर्गुण ब्रह्ममें स्थिति लाभ करनेके रहस्यसे परिज्ञात होते हैं। इसमें 'अ'–कारका स्थान मूलाधारसे नाभिस्थ मणिपुर तक, 'उ'-कारका स्थान नाभिसे हृदयस्थ अनाहत चक्र तक और 'म'-कारका स्थान अनाहत चक्रसे ललाटस्थ आज्ञाचक्र तक है। उसके ऊपर अर्घमात्राका स्तर है। किसी-किसी सम्प्रदायमें सहस्रारके ऊपर भी कुछ स्तर वर्णन किये हैं किन्तु हम उन सबको अर्घमात्रा के ही अन्तर्गत मानते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

'तत्' शब्द भगवान स्वरूपतः जो हैं अर्थात् जो अव्यक्त रहस्य है उस निर्गुण निष्कल, निरंजन ब्रह्मतत्त्व का द्योतक है।

'सत्' शब्द भगवान् जिस प्रकार प्रकटित, प्रतीत अथवा अनुभूत होते हैं उस भावका द्योतक है।

'ॐ' उच्चारणकर हम 'नेति नेति' साधनाकी पंचकोश विवेककी, सहायता-से भगवद्धाम (सहस्रार) में जानेका अधिकार लाभ करते हैं। 'तत्' शब्द उच्चारणसे निर्गुण ब्रह्मतत्त्व हमारे निकट प्रकटित होता है। इसके बाद 'सत्' शब्दकी साधना द्वारा हम उपलब्ध करते हैं कि ब्रह्म ही जीव-जगत रूपमें परिणत अथवा विवर्तित है अर्थात् "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस उक्तिका सारतत्त्व ग्रहण करनेकी योग्यता लाभ करते हैं। 'तत्' जब जीव-जगत् रूपमें परिणत-विवर्तित अर्थात् अनुभूत होते हैं तब उस अनुभूतिमें 'तत्' अविकृत सत्-स्वरूपसे बिन्दु मात्र भी विच्युत नहीं होते। वे प्रकृत सत् स्वरूपमें ही वर्त्तमान हैं यह तत्त्व उपलब्ध किया जा सकता है।

कोई-कोई कहते हैं 'तत् अनुभूयते अत्र इति तत्त्वं', 'सत् अनुभूयते अत्र इति सत्त्वं'। तत्त्व एवं सत्त्व—इन दोनोंमें अधिष्ठित रहते हुए भी जो इन दोनों भावोंके अतीत हैं वे हमारे भगवान् हैं, वे ही हमारे इष्ट हैं। वे विश्वातीत और विश्वानुग दोनों भावोंके द्योतक हैं।

'ॐ तत्सत्' एक वैदिक मंत्र है। तंत्रशास्त्रने इस मन्त्रको बहुत आदरपूर्वक ग्रहण किया है। सुना जाता है कि राजा राममोहन राय अपने गुरु हरिहरानन्दसे इस मंत्रका रहस्य और साधन-प्रणाली जानकर मुग्ध हो गए थे।

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २ ॥

यह मंत्र श्रीभगवानका अस्तित्व निस्सन्दिग्ध रूपसे निश्चितकर प्रमाण करता है कि यह चित्त-शुद्धिमें सहायक है। ऋषिगण भ्रम, प्रमाद, हताश भाव और कपटतारहित थे। उनके वचनको दार्शनिक पंडितोंने सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना हैं। वे जब कहते हैं कि भगवान हैं और उनके मतानुसार चलनेसे वे भगवद्दर्शन करा सकते हैं तब इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वे कहते हैं—तद्विष्णो (उस सर्वव्यापी भगवानका) परमं पदं (श्रेष्ठ स्वरूप एवं तत् प्राप्तिके उपाय) सूरयः (संयत तत्त्वदर्शी ऋषिगण) दिवि (स्वर्गमें, कूटस्थमें स्थित हुए) सदा आततं चक्षुः इव पश्यन्ति (विस्तृत चक्षुकी भांति अवस्थित, विश्वतश्चक्षु रूपमें अवस्थित, निरंतर दर्शन करते हैं)। यहाँ 'चक्षु' शब्द चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक एवं मन, बुद्धि, आदि समस्त इन्द्रियोंका द्योतक है। अर्थात् वे मानो सब देख रहे हैं, सुन रहे हैं, जान रहे हैं। यह विश्वास पक्का हो जानेसे कोई विपरीत कार्य करनेका साहस नहीं हो सकता—इसलिए यह मंत्र चित्त-शुद्धिमें सहायक है।

अथवा, दिवि (आकाशमें) चक्षुः यथा आततं (नेत्र जिस प्रकार अबाधित रूपसे) पश्यन्ति (देखते हैं) [तथेति—ठीक उसी प्रकार देखते हैं] ऋषियोंका अपरोक्ष दर्शन खुल जानेके कारण वे सर्वत्र भगवानको देखते थे। वे जब कहते हैं कि हम भगवानको देखते हैं तो यही भगवानके अस्तित्वका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

"विष्णु अथवा परब्रह्मके चार पाद कल्पना किये गये हैं—'चतुष्पात् सकलं ब्रह्म' निर्गुण ब्रह्मके पाद कल्पना नहीं किये जा सकते क्योंकि वह निरंश है! इन चार पादोंमेंसे तीन पाद दिव्य अथवा अमृत हैं और कालचक्रके आवर्त्तनके अतीत हैं। केवल एक पादसे ही समग्र परिवर्त्तनशील विश्व अविभूर्त हुआ है और उसीके आश्रय अवस्थान करता है। अन्य प्रकारसे परब्रह्म अथवा परमात्माके दो पद अथवा अवस्थाएँ बताई गई हैं। इसमें एक 'परम पद' कहा गया है और दूसरा 'अपर पद'। यह दोनों ही विष्णुपाद नामसे अभिहित हैं। 'अपर पद' तीन भागोंमें विभक्त है। इसलिए निम्नस्तरमें तीन विष्णुपद शास्त्रमें वर्णित हैं। 'त्रिविक्रम' नामका भी यही तात्पर्य है। ऋग्वेदके "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं" मन्त्रमें विष्णुके तीन पदका उल्लेख है किन्तु इसमें कोई भी 'परम पद' नहीं। विष्णुका अथवा परब्रह्मका जो 'परम पद' हैं उसीका स्मरणकर समस्त शुभकर्म आरम्भ किये जाते हैं। इसीका नाम विष्णु-स्मरण है। इस पदमें किसीने कभी प्रवेश किया है या नहीं अथवा कर सकता है या नहीं, यह कहना कठिन है क्योंकि दिव्य तत्त्वज्ञानी अथवा नित्यमुक्त पुरुष इसका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरंतर दूरसे दर्शन करते हैं—'सदा पश्यन्ति'। उनका दर्शन अविच्छिन्न एवं आवरणशून्य है। यही वस्तुतः दिव्यचक्षु है। अर्थात् द्युलोक-व्याप्त और प्रकाशमान चक्षुके समान है। इस दिव्यचक्षुवत् परम पदको मन ही मन स्मरण करते हुए शुभकार्य आरम्भ करना चाहिए। यह विश्वातीत एवं निर्विकल्प शान्त मंगलमय अद्वैत पद है।"

❀ ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनोमें वाचि प्रतिष्ठितम्।
ॐ आविरावीर्म एधि, ॐ आविरावीर्म एधि,
ॐ आविरावीर्म एधि ॥ ३ ॥

मे (मेरी) वाक् (वाणी) मनसि प्रतिष्ठिता (मनमें प्रतिष्ठित हो जाय) मे मनः (मेरा मन) वाचि प्रतिष्ठितम् (वाणीमें प्रतिष्ठित हो जाय)। आविः (हे निर्गुण, निरजंन ब्रह्म) आवीः (हे शक्तियुक्त सगुण ब्रह्म) मे (मेरे भीतर, मेरे प्रत्येक तत्त्वमें) एधि (आविर्भूत हो अर्थात् मेरे प्रत्येक तत्त्वमें प्रवेशकर, प्रत्येक तत्त्वको अपने भावसे परिभावितकर, अपनी शक्तिसे युक्तकर, अपने प्रिय कार्य साधनमें नियुक्त करो)।

मेरे वाक्य और मनमें कोई अन्तर न रहे। वाक्य अनुभूतिको प्रकाश करनेके लिए है। शब्द की परावस्थामें जो भाव था वही पश्यन्ति और मध्यमावस्था भेदकर वैखरी रूपमें बाहर प्रकाशित होता है। इस प्रकाश में मेरे मनके स्वार्थ-संस्कारादि किसी प्रकार की बाधा न दें। मैं भगवानके हाथमें एक यंत्रके समान हो जाऊँ—उनकी संगतिमें मेरा चलना परम सार्थकता लाभ करे। मेरा मनन किया हुआ निर्णीत तत्त्व ही मेरे वाक्य द्वारा यथायथ प्रकाशित हो। मेरी वाणी मेरे मनके अनुभूत ज्ञानके अतिरिक्त और किसी विषयपर न बोले। याद रखना होगा कि वाक्-मनका मिलन साधित होनेपर ही स्वयंप्रकाश आत्मप्रकाश करनेका सुयोग पाते हैं।

यहाँ वाक् सब कर्मेन्द्रियोंका और मन सब ज्ञानेन्द्रियोंका द्योतक है। मन भावका और वाक् भवका प्रतिनिधि है। जो भावमें, तत्त्वरूपमें, निर्धारित होता है वही [illegible] होता है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह अनुभूत तत्वमें (भावमें) प्रतिष्ठित रहता है। मेरे भव और भावमें कोई भेद न रहे।

हे स्वप्रकाश, जब तक मेरी दृष्टिशक्ति तुम्हारा प्रकाश अनुभव न कर सकेगी तब तक तुम्हारा स्वप्रकाशत्व मेरे अनुभवमें नहीं आयेगा। जगत्में ज्योति, ज्ञान, प्रेमका अभाव नहीं किन्तु अन्ध, अज्ञानिक, अप्रेमिक इसको उपलब्ध नहीं कर सकता। हे स्वप्रकाश, तुम मुझे अपना उपयुक्त आधार बनाकर मेरे भीतर पूर्णरूपसे प्रकाशित हो।

हे निर्गुण निष्क्रिय निरंजन ब्रह्म, तुम जबतक अपनी शक्तिसे अपने गुणसे आत्मप्रकाश न करो एवं जबतक मेरी आत्मा अपनी शक्ति और गुण द्वारा तुमको ग्रहण अथवा उपलब्ध न कर सके तब तक तुम्हारा होना न होना मेरे लिए बराबर बराबर है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम प्रकाशित, हो मेरे सब तत्त्वोंमें तुम्हारी ज्योति अथवा तुम्हारी शक्ति आत्मप्रकाश करे; मेरे सब तत्त्वोंको अपने भावसे परिभावितकर, अपनी शक्तिसे युक्तकर, अपनी इच्छा पूर्ण करनेमें; अपने कार्य साधनमें नियुक्त करो।

"वाक् मनमें प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। तद्रूप मन भी वाक्में प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। ऐसा होनेसे मन और वाक् एक दूसरेके सहायक होते हैं। वाक् जब मनमें प्रतिष्ठित होता है तब वाक् सत्यको प्राप्त होता है। तद्रूप वाक् जब मनमें प्रतिष्ठित होता है तब मन भी सत्य लाभ करता है। वाक्य भिन्न मन और मनका संकल्प असम्भव है क्योंकि ऐसी अवस्थामें कोई कार्य करनेका सामर्थ्य नहीं रहता। मन अथवा भावहीन वाक्यको भी तद्रूप समझना चाहिए। वाक्य और मन अथवा भावका सामंजस्य ही आदर्श है। यह आदर्श प्राप्त हो जाने पर स्वयं-प्रकाश तत्त्व स्वतः ही प्रकाशित होता है। चैतन्यस्वरूप परमात्मा आविः है अर्थात् स्वतः प्रकाशमान है। किन्तु हमारे निकट वे स्वतः अथवा परतः किसी प्रकार भी प्रकाशमान नहीं। इसलिए मेरी प्रार्थना है—'मे आवीः एधि'—मेरे निकट स्वप्रकाश तत्त्व प्रकाशित हो जाय। इसके लिए हमारी दृष्टिका संस्कार आवश्यक है क्योंकि यदि हमारी देखनेकी शक्ति न हो तो स्वयंप्रकाश तत्त्व हमारे लिए अप्रकाशित ही रहेगा।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रार्थना—प्रातःकाल

❀ हे विश्वनाथ करुणामय रात्रिकाले
स्थित्वा त्वया सह सुखं विगतश्रमोऽहम् ।
ग्लानिश्च देहमनसोऽपि विनिर्गता मे
प्रातः प्रयामि बहिरीश तवैव गेहे ॥४॥

हे करुणामय विश्वनाथ (हे करुणामय जगदीश्वर) रात्रिकाले (रात्रिमें) त्वया सह (तुम्हारे साथ) सुखं स्थित्वा (सुखसे रहकर) अहं विगतश्रमः (मेरी क्लान्ति दूर हो गई) । च (और) मे (मेरे) देह-मनसः (शरीर मनकी) ग्लानिः अपि (शिथिलता भी) विनिर्गता (दूर हो गई है) । हे ईश (हे जगत्पति) प्रातः (अब प्रातःकाल) तव एव गेहे (तुम्हारे संसार-रूपी गृहमें) बहिः प्रयामि (बहिर्गत होता हूँ) ।

यह श्लोक भगवानकी कृतज्ञता प्रकाश करनेके लिए निर्दिष्ट है । रातको विश्राम करके भगवानके सान्निध्यसे देह एवं मनकी सब क्लान्ति दूर हो गई और अब उनके आदेशनुसार उनका प्रिय कार्य करनेके लिए संसारमें जाता हूँ—यह भाव सर्वदा स्मरणकर उनकी कृपादृष्टि और सहायताके लिए प्रार्थना करनी चाहिए ।

गत रात्रि जब श्रान्त-क्लान्त होकर मैंने तुम्हारी गोदका आश्रय लिया था तो तुमने मेरी देहकी क्लान्ति और मनका अवसाद दूर कर दिया । अब मुझे अपनी शक्तिसे शक्तिमानकर, अपने सौन्दर्यसे भूषितकर, अपने भावसे परि-भावितकर, अपनी सन्तानकी सेवाके लिए शक्ति संचारकर, अपने संसारमें जाने-का आदेश दो । माँ यशोदा जिस प्रकार अपने हृदय-गोपालको तैयारकर गोचारण-के लिए भेज देती थीं तुम भी मुझको यथासम्भव उसी प्रकार अपनी उपयुक्त सन्तानरूपमें तैयार करके संसारके कर्त्तव्य-साधनके लिए भेज दो । वैष्णव साधक इस प्रसंगमें पूर्वगोष्ठलीला आस्वाद करनेकी चेष्टा करते हैं ।

❀ सेवाव्रतं जनहितं चरितुं च तत्र
शक्नोमि येन भगवंस्तव किंकरोऽहम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मां पश्य चालय विभो सततंच रक्ष
पूर्णा भवत्वनुदिनं मयि ते शुभेच्छा ॥५॥ (३ बार)

भगवन् (हे भगवन्) अहं तव किंकरः (मैं तुम्हारा दास हूँ), येन (इस हेतु) जनहितं (जीवका कल्याणप्रद) सेवाव्रतं (सेवारूप व्रत) चरितुं च (पालन करनेमें) तत्र (तुम्हारे संसारमें) शक्नोमि (मैं समर्थ होऊँ) मां पश्य (मुझे देखते रहना) चालय (चलाना) सततं च रक्ष (सर्वदा रक्षा करना)। मयि (मेरे द्वारा) ते (तुम्हारी) शुभेच्छा (जीवहित करनेकी मंगल इच्छा) अनुदिनं (प्रतिदिन) पूर्णा भवतु (पूर्ण सफलता लाभ करे)।

अर्थात् मेरे जीवनमें तुम्हारी इच्छा पूर्ण सफलता लाभ करे। हे भगवन्, जीव ही तुम्हारा यथासर्वस्व है, जीवकी सेवाके अतिरिक्त तुमको देखनेका, सन्तुष्ट करनेका, प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं, यह मैंने अच्छी तरह समझ लिया है। अब मैं जीवसेवाको अपने जीवनका प्रधान व्रत मानकर ग्रहण कर सकता हूँ।

याद रखना होगा कि मेरी माँ सबकी माँ है; माँके एक बच्चेको भी तुच्छ करके माँकी कृपा लाभ नहीं की जा सकती, न माँका दर्शन सम्भवपर हो सकता है। सन्तानकी सेवा ही गुप्त माँकी कृपा लाभ करनेका सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

❀ लोकेश चैतन्यमयाधिदेव श्रीकान्त विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्त्तयिष्ये ॥६॥

हे लोकेश (हे त्रिलोकीनाथ) हे चैतन्यमय (हे सर्वभूतके चैतन्यस्वरूप) अधिदेव (हे देवादिदेव) हे श्रीकान्त (हे सर्वैश्वर्याधिपति) हे विष्णो (हे सर्वव्यापिन् परमेश्वर) भवदाज्ञया एव (तुम्हारी ही आज्ञानुसार) प्रातः समुत्थाय (प्रातः उठकर) तव प्रियार्थं (तुम्हारा प्रिय कार्य करनेके लिए) संसारयात्राम् अनुवर्त्तयिष्ये (संसार-यात्राका अनुपालन करूँगा)।

भगवान जिस प्रकार अपने जगज्जीवके पालन द्वारा अपनी इच्छा सफल करनेमें व्यस्त हैं, उनके अंश अथवा प्रतिबिम्ब होनेके कारण हमें भी उचित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

है कि हम अपने क्षुद्र संसारके सब कर्त्तव्य पालनकर, जीवके उन्नति विधानमें, भगवदिच्छा पूरण करनेमें सहायक हो।

❀ जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया हृषीकेश हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥७॥

अहं (मैं) धर्मं जानामि (धर्मको जानता—मुझे क्या करना उचित है यह जानता हूँ) न च मे प्रवृत्तिः (लेकिन उसमें मेरी प्रवृति नहीं होती) अधर्मं जानामि (अधर्मको भी जानता हूँ—मुझे क्या करना उचित नहीं है यह भी जानता हूँ) न च मे निवृत्तिः (लेकिन उससे निवृत्त नहीं होता)। हृषीकेश (हे इन्द्रिय-नियामक—इन्द्रियाँ जिसका आदेश पालन करनेको बाध्य हैं) हृदि स्थितेन त्वया (मेरे हृदयमें स्थित तुम्हारे द्वारा) यथा नियुक्तः अस्मि (जिस भावमें, जिस कार्यमें नियुक्त होता हूँ) तथा करोमि (वही करता हूँ—यह मैं समझ सकूँ)।

हे भगवान्, तुम अन्तर्यामी रूपमें हमारे हृदयमें स्थित हुए हमको चलाते हो। हम अहंकारवश तुमको चालकरूपमें अनुभव नहीं कर पाते। तुम हमारी आँखमें उँगली करके (स्पष्टतः) हमको दिखा दो कि हमारा अहंकार जो करना चाहता है वह नहीं कर सकता और जो नहीं करना चाहता है वह अनेक समय कर बैठता है, इसलिए वह हमारे कर्मका कर्त्ता नहीं है। तुम्हीं कर्मके प्रकृत कर्त्ता, हमारे प्रकृत चालक हो, कर्म केवल हमारे द्वारा कारित हो रहा है, हम केवल कर्मके निमित्तमात्र हैं—यह तत्त्व हमें समझाकर आत्मनिवेदनके पथपर चालित करो। यह संसार भगवानका संसार है। भगवान जगतजीव द्वारा आत्मप्रकाश करनेमें व्यस्त हैं। वे ही प्रकृत कर्त्ता हैं। जीव जिससे वृथा कर्तृत्वाभिमानके वश होकर भगवत् प्रिय कार्य साधनमें बाधा न दे, इस हेतु यहाँ प्रार्थना की गई है।

"धर्माधर्मका ज्ञान जीवको निश्चय ही है तथापि वह धर्ममें प्रवृत्त एवं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधर्मसे विवृत्त नहीं हो पाता क्योंकि वह दुर्बल एवं पराधीन है। अन्तर्यामी उसके हृदयमें उसको जिस प्रकार नियोग करते हैं वह करनेके लिए बाध्य है।

रात्रिमें विश्रामकर भगवानके सहित अभिन्नभावसे आनन्दास्वादन एवं क्लान्ति अपसारणकर, उन्हींके आदेशअनुसार, उन्हींके प्रियकार्य साधनके लिए उनके विशाल गृहमें जाता हूँ—यह भाव सर्वदा मनमें रखना होगा। इस यात्राके मूलमें भगवानका आदेश है, यह धारणा दृढ़ हो जानेसे संसारयात्रासे भगवत्-प्रीति सिद्ध हो जाती है। जीवको यात्रारम्भके पूर्व याद रखनेकी चेष्टा करनी होगी कि वह भगवान्‌का दास स्वरूप है एवं उन्हींके निर्देशानुसार जीवकी सेवा और जगत्‌का हितसाधन करनेमें उद्यत हुआ है। भगवानकी कृपादृष्टि और शुभेच्छा उसको इस महत् कार्यमें सहायता करेंगी क्योंकि वे जीवके चालक एवं विपत्तिके समय संरक्षक हैं।"

प्रार्थना—सायंकाल

❀ आज्ञापितस्य च पुरा जनसेवनाय
जातं प्रभो भववने भ्रमतः प्रमादात्।
देहे मनस्यपि च मे मालिनत्वमीश
येनावसीदति महेश ममान्तरात्मा ॥८॥ (क)

प्रभो (हे अनुग्रह-निग्रह कर्त्ता) ईश (हे शक्तिमान चालक) महेश (हे ईश्वरोंके ईश्वर) पुरा (पहिले) भववने (संसाररूपी वनमें) जनसेवनाय (जीवके सेवा कार्यमें) भ्रमतः (भ्रमण करते-करते) आज्ञापितस्य मे (तुम्हारी अनुमतिप्राप्त मुझमें) प्रमादात् (प्रमादके कारण) देहे मनसि अपि च (देह और मनमें) मलिनत्वं जातं (मलिनता उत्पन्न हो गई है) येन (जिसके द्वारा) मम अन्तरात्मा (मेरा अन्तरात्मा) अवसीदति (अवसाद-ग्रस्त हो गया है अर्थात् ठीक तरहसे मुझको चलानेमें, मेरे भीतरसे प्रकाशित होनेमें, असमर्थ हो गया है।)

मैं जगत जीवकी यथाशक्ति सेवाका आदेश प्राप्तकर घरसे बाहर गया था। इस आदेश पालन करनेमें प्रमादवश अनेक त्रुटि-विच्युति हो गई और देह व

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनमें मलिनता आ गई—इसके अपनोदनके लिए मैं मन ही मन प्रार्थना करता हूँ। 'सन्ध्या समय कर्मस्थलसे समागत सन्तानको फिर निर्मल कर गोदमें स्थान दो। हे प्रभु मुझे अपने चरणोंमें स्थान दो'।

❀ सन्ध्या समागममहो मम जीवितस्य
ज्ञात्वा च मे जिगमिषां तव सन्निधाने।
प्रक्षाल्य धूलिमलिनं तनयं स्वकीयं
क्रोडे नयाशु जगदीश कृपानिधान ॥५॥ (क)

अहो (हाय) मम जीवितस्य (मेरे जीवनकी) सन्ध्या समागमम् (सन्ध्या हो गई है)। [यह] तव सन्निधाने जिगमिषां च (और तुम्हारे पास जानेकी इच्छा) ज्ञात्वा (जानकर) जगदीश (हे जगदीश) कृपानिधान (हे कृपानिधान) धूलिमलिनं (धूलिसे मलिन) स्वकीयं तनयं (अपनी सन्तानको) प्रक्षाल्य (धोकर अर्थात् निर्मलकरके) आशु (शीघ्र) क्रोडे नय (अपनी अभय गोदमें स्थान दो)।

तुम्हारी इच्छानुसार संसारमें खेलने गया था लेकिन तुम्हारा आदेश लंघन करके, भ्रम-प्रमादवशतः, बुद्धिके दोषसे, संस्कारवश होकर देह और मनको मैंने अपवित्र कर डाला। इसके फलस्वरूप मेरा आत्मा तक अवसादग्रस्त हो गया है। अब संध्या हो गई है और मैं अब तुम्हारे पास जाय बिना नहीं रह सकता। मैं तुम्हारी ही सन्तान हूं, तुम सर्वशक्ति सम्पन्न एवं कृपानिधान हो, सन्तानका दुख सहन करने में असमर्थ हो। दया करके मेरी सब मलिनता दूरकर मुझे अपनी अभय गोदमें स्थान दो।

प्रातःकाल अकार्यसे कार्यकी तरफ, माँकी गोदसे संसारकी तरफ गया था। सायंकाल कार्यसे अकार्यकी तरफ, विश्रामकी तरफ, माँकी गोदमें जाना होगा। संध्या समय साधक शब्द-स्पर्शादि द्वारा माँका आवाहन अनुभवकर उनके निकट जानेको व्यस्त होता है। इस प्रसंगमें वैष्णवोंकी उत्तरगोष्ठलीला आस्वादनीय है। हमारी इन्द्रियोंको गोरूपमें निर्देश किया गया है—"गावः इन्द्रियाणि"। इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहणको भी किस प्रकार भगवत्सान्निध्य और उनकी कृपासे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूजामें परिणत किया जा सकता है, यही तत्त्व गोचारणलीलाके भीतर प्रकाशित किया गया है। प्राचीन ऋषियोंका लक्ष्य था सब आत्मीयस्वजनोंको—यहां तक कि सर्वजीवको भगवत्‌विग्रहमें, सब कार्योंको पूजामें और सब चिन्तनको ध्यानमें परिणत करना तथा "वासुदेवः सर्वमिति" तत्त्व हृदयंगम करनेके लिए सर्वभूतमें भगवद्दर्शन एवं भगवानमें सर्वभूत दर्शन करनेकी योग्यता लाभ करना। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"—समस्त दृष्ट पदार्थ हमारी भाव-शुद्धिके फलस्वरूप क्रमशः सुन्दर और मधुर होकर भगवानमें पर्यवसित होते हैं। ज॰ात्‌में भगवद्दर्शन अर्थात् जगत्‌में एकमात्र भगवत्‌सत्ता पूर्णरूपमें विराजमान रहते हुए भी उनका दर्शन न कर पानेमें उनके बदले द्रष्टाके संस्कार, आसक्ति और अज्ञानके फलस्वरूप जगद्दर्शन साधित हो जाता है। भगवान् में वस्तुतः ये सब मलिनता नहीं रह सकती। हमारी चित्त-शुद्धिके फलस्वरूप सब दृश्य पदार्थ क्रमशः अधिकाधिक सुन्दर और मधुर रूप धारण करते हैं। और अन्तमें भगवानमें पर्यवसित होकर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" महावाक्यको सार्थक करते हैं। व्रजगोपियोंके वस्त्रहरण अर्थात् अज्ञानावरण दूर होनेके परिणामस्वरूप उनके लिए स्वरूपतः कृष्णदर्शन और तत्पश्चात् सर्वभूतमें कृष्णदर्शन सहज, सुन्दर और स्वाभाविक हो गया था।

कृतज्ञता प्रकाश—स्वस्तिवाचन (सबको सन्तुष्ट करके शुभकार्यमें सबसे आशीर्वाद प्राथंना करना) :—

"मनुष्य जन्मको प्राप्त होकर नाना प्रकारकी शक्ति एवं सहायता नाना स्थानसे संचारकर जीवनके पथपर अग्रसर होता है। कोई भी दूसरेकी अपेक्षा किये बिना केवल अपने बलपर नहीं चल सकता। इसलिए सबसे प्राप्त उपकारको स्मरणकर यथाशक्ति सबके ऋणको शोध करना होता है। उपकार-को स्मरण करनेसे ही उपकारीके ऋणसे मुक्ति लाभ होती है और साथ-साथ अपना अहंभाव भी दमन होता है एवं चरित्रमें नम्रता आती है। गुरुवर्गसे ज्ञान, माता-पितासे देहलाभ, आत्मीय-स्वजनों और बन्धुबान्धवोंसे पार्थिव उपकार, जगतजीवसे सूक्ष्म और अदृश्य सहायता, देवगणसे शक्ति व समृद्धि, संक्षेपतः विश्व-रूप परमात्मासे प्रयोजननुसार सब कुछ प्राप्ति होती है। इसलिए व्यष्टिभावमें पृथक्-पृथक् और समष्टिभावमें परमात्माको अभिन्नरूपमें कृतज्ञता निवेदन करनी होती है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपकारी का प्रत्युपकार करनेकी चेष्टा करना अन्ततः उसके उपकारका स्मरण करना आर्य-धर्मका एक प्रधान अंग था। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक पृथ्वीपर एक भी जीव उनसे असन्तुष्ट रहेगा तब तक उनका भगवद्धाममें प्रवेश करना असम्भव है। सबका ऋण शोध करनेके लिए, सबको सुखी करनेके लिए, उनको बार-बार भूलोकमें आना पड़ेगा। स्वस्तिवाचन, पंचमहायज्ञ, इत्यादि ऋण शोध करनेके ही उपाय हैं। प्रत्येक शुभकार्यके पूर्व सब देवताओंको, सब जीवोंको, आवाहन करनेकी प्रथा थी। इसके वाद तर्पण, श्रद्धांजलि, इत्यादि द्वारा भगवानसे सब जीवोंके लिए—यहाँ तक कि पापी-तापीके लिए भी—कल्याण प्रार्थनाकर, सब जीवोंको सुखीकर, सबके मुखसे 'स्वस्ति' अर्थात् 'तुम्हारा मंगल हो, तुम्हारा शुभकार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो,' यह वचन कहलानेकी व्यवस्था थी। स्वस्तिवाचन—'सु' अर्थात् 'मंगल,' 'अस्ति' अर्थात् 'हो या होवे'—यह क्रिया आर्यसभ्यताकी सर्वश्रेष्ठताका प्रमाण है। जिन्होंने ज्ञान प्रचार किया है वे सब हमारे गुरुवर्गमें हैं। आत्मीय-स्वजन, बन्धु-बान्धव तथा सब जीवोंके निकट हम चिरकृतज्ञ हैं। भगवान, भगवत्-विभूतिस्वरूप देवतागण और जो हमारे प्रिय-कार्य साधनमें नियुक्त हैं, उनको नमस्कारकर, उनके निकट कृतज्ञता प्रकाशकर, उनका आदेश लेकर समस्त शुभकार्य किये जाते थे।

❀ ॐ गुरुभ्यो नमः ॐ बान्धवेभ्यो नमः
ॐ जीवेभ्यो नमः ॐ देवेभ्यो नमः
ॐ विश्वरूपाय परमात्मने नमः।
अयमारम्भः शुभाय भवतु ॥८॥

ॐ गुरुभ्यो नमः [जिनसे हममें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष ज्ञान लाभ किया है] (उन सब गुरुओंको नमस्कार) ॐ बान्धवेभ्यो नमः (माता, पिता, भाई-बन्धु इत्यादि बान्धवों को नमस्कार) ॐ जीवेभ्यो नमः (समुदय जीवको नमस्कार) ॐ देवेभ्यो नमः (देवगणको नमस्कार) ॐ विश्वरूपाय परमात्मने नमः (विश्वरूप परमात्माको नमस्कार) अयम् (यह) आरम्भः (अनुष्ठान) शुभाय (शुभके निमित्त) भवतु (होवे) ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिससे हमारा यह शुभकार्य निर्विघ्न परिसमाप्त हो, इसके लिए कृपा करके हमको आशीर्वाद दीजिए। याद रखना होगा कि परमात्माकी कृपा हमारे ऊपर सब जीवोंके द्वारा क्षरित होती है। (यहाँ एक बंगला भजन है)।

इस स्थलका संगीत साधकको माँके निकट प्रार्थनाका द्योतक है। माँ, तुम मुझको अपने गुण और भावसे परिभावित कर दो। मैं तुम्हारी आदर्श सन्तानमें परिगणित होकर उत्तम पुरुषकी आराधना करनेकी योग्यता लाभ करूँ। इतने दिन तुमको—अपने स्वरूपको—भूलकर संसारमें भटक रहा था। यह भूल कैसी कठिन व्याधि है यह भी नहीं समझता था। बोधशक्ति सम्पूर्णतः लोप हो जानेके कारण दुःखको दुःख करके—अभावको अभाव करके—भी नहीं समझ पाता था। अब भगवत्-कृपासे बोधशक्ति कुछ जागरित हुई है और समझमें आने लगा है कि स्वरूप-विस्मृति कैसी कठिन व्याधि है। इसलिए अब इस व्याधिको दूर करनेके लिए माँसे विनीत प्रार्थना मनमें उठती है। माँने मेरी प्रर्थना अंगीकार-कर मेरी व्याधि इतनी तक दूर कर दी है कि मातृ विस्मृति (आत्मविस्मृति) कैसा कठिन रोग है यह अनुभवमें आने लगा है। इसलिए अब यह प्रार्थना करता हूँ कि 'माँ तुम मुझको अपनी इच्छानुसार चालित करो, मेरे जीवनमें तुम्हारी इच्छा पूर्ण सफलता लाभ करे। याद रखना होगा कि साधनराज्यमें हमको तैयार करनेका, भगवानके पास पहुँचा देनेका, भगवद्भावसे परिभावित करनेका समस्त भार माँके ऊपर है। माँने ही निर्गुण ब्रह्मको सगुणकर, हमारे ग्रहणयोग्यकर, हमारी भगवत्प्राप्तिका समस्त भार अपने हाथमें लिया है। गोपियोंने अपने प्राणेश्वर मदनमोहनको प्राप्त करनेकी योग्यता माँकी कृपासे ही लाभ की थी। कर्मक्षेत्रमें यात्रा आरम्भ करनेके पूर्व माँका आशीर्वाद लेकर जाना होता है। 'मैं माँकी सन्तान हूँ' यह भाव मनमें धारणकर, माँकी ओर दृष्टि निबद्धकर, कर्ममें प्रवेश करना होता है। इस यात्राके जो पाथेय हैं—अर्थात् वैराग्य, नाममें रुचि, जीवपर दया, अटल विश्वास, सत्यका अनुराग—ये सब माँसे ही प्राप्त होते हैं। माँकी शक्तिसे शक्तिमान हुए बिना भगवत् प्राप्ति एवं भगवत्-प्रिय-कार्य-साधन असम्भव हैं।

वैदिकयुगके साधकगण सध्याके पूर्व उपलब्ध करनेकी चेष्टा करते थे कि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवान (माँ) अपनी संतानको अपने पास वापस लानेके लिए कितने व्यस्त हैं। वे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध द्वारा उनका आवाहन उपलब्धकर भगवानके पास जानेके लिए व्यस्त हो जाते थे। वैष्णवोंकी उत्तरगोष्ठलीलामें गोपियोंकी और माँ यशोदाकी व्याकुलताका भाव यहाँ अस्वादनीय है।

शुद्धितत्त्व

शुद्धि साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है—जलशुद्धि, आसनशुद्धि और भूतशुद्धि। प्रसिद्ध पवित्र नद-नदीमें स्नानकर साधन श्लोकादि (८ से १० तक). पाठ करनेके बाद भगवानसे चित्त शुद्ध करनेके लिए कृपा प्रार्थना करना जल-शुद्धिका प्रधान उद्देश्य है। आसन-शुद्धिका तात्पर्य है पवित्र आसन पर—जैसे "चैलाजिनकुशोत्तरम्" (गी० ६-११)—जिसके भीतर विद्युत्शक्ति साधारणतः यातायात न कर सके (best possible non-conductor)—देहको "समं कायशिरोग्रीवं" (गी० ६–१३) सीधा करके बैठना। मेरुदंडको सीधा करके बैठनेसे शरीरस्थ विद्युत् सरलतासे यातायात करती है। साधनभजन के समय बहुधा विद्युत्की क्रिया परिलक्षित होती है। ऐसी अवस्थामें पृथिवीके साथ शरीरका योग होनेसे शरीरस्थ विद्युत् पृथिवीमें जानेके कारण देहका विशेष अनिष्ट हो सकता है। 'नेति-नेति' साधन द्वारा पंचकोश विवेककी सहायतासे साधक अपने-आपको भूतके हाथसे शुद्ध करनेकी चेष्टा करता है। यह भूतके हाथसे निष्कृति लाभ करना 'भूतशुद्धि' के अन्तर्गत है। फिर न कहीं भूत-ग्रस्त हो जाएँ इस भयसे सब भूतोंको भगवद्भाव द्वारा शुद्ध करनेकी व्यवस्था भी 'भूतशुद्धि' के अन्तर्गत हैं। अपने आत्माको भूतके पंजेसे मुक्तकर, देहस्थ भूतोंको भगवत्-शक्तिसे युक्त, भगवद्भावसे परिभावित करनेकी चेष्टाको 'भूत-शुद्धि' कहा गया है। शरीरकी शुद्धि स्नानादि द्वारा, मनकी शुद्धि साधन श्लोकादि के मनन द्वारा, आत्माकी शुद्धि स्व-स्वरूप एवं भगवत्-स्वरूपकी चिन्ता द्वारा, भगवानमें तन्मयता लाभ द्वारा साधित होती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अद्‌भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्या-तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

भूतशुद्धि शब्द दो प्रकारसे साधित होता है—पहले अपने आपको भूतके अधिकारसे शुद्ध करना, मुक्त करना, स्वरूपप्रतिष्ठ करना; तत्पश्चात् भूतोंके संग वास करना होगा इसलिए सब भूतोंको भगवद्‌भावसे परिभावित करके ऊपर उठाना। भूतोंका अभौतिक (चित्तस्पर्श द्वारा विकृत) अंग दूरकर उनको अपहृत भौतिक अंशसे पूर्ण करनेका नाम 'भूतशुद्धि' है। अर्थात् भूतका संस्कार, अज्ञानतादि विजातीय भावसे मुक्तकर उसको ठीक भूतभावमें स्थापन करनेका नाम 'भूतशुद्धि' है। इसी प्रकार चित्तको भूतके संस्कारसे मुक्तकर केवल चिद्-भावसे पूर्ण करके उसको स्व-स्वरूपमें प्रतिष्ठित करनेका नाम 'चित्तशुद्धि' है। चित्तको आसक्ति, ममता, वृथाकर्त्तत्वाभिमानसे मुक्तकर केवल चित्तस्वरूपमें प्रतिष्ठित करना ही 'चित्तशुद्धि' है। जो स्वरूपतः जैसा है उसको आगन्तुक द्रव्य अथवा भावसे मुक्त करके उसको अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित करनेका नाम ही है शुद्ध करना। अर्थात् जो तत्त्व जिस उद्देश्यसे सृष्ट हुआ है उसको केवल उसी कार्यमें नियुक्त रखनेसे ही वह शुद्ध हो जाता है।

"शिवो भूत्वा शिवमर्चयेत्।
अविष्णुः पूजयन् विष्णु न पूजाफलभाक् भवेत् ॥"

(शिव होकर शिवकी पूजा करनी चाहिए। अविष्णु होकर विष्णुकी पूजा करनेसे पूजाका फल प्राप्त नहीं होता।)

भूतशुद्धि और चित्तशुद्धि क्रियाको 'कायशुद्धि' और 'भावशुद्धि' नामसे भी उल्लेख किया जाता है। त्रिविध देहकी शुद्धिको 'कायशुद्धि' कहा जाता है। कायशुद्धिके फलस्वरूप देहकी मलिनता दूर होकर गुरुकी कृपासे दिव्य देह प्राप्त होती है। तत्पश्चात् इस दिव्य देहमें (भगवद्धाममें) बैठकर अपने अनुकूल भावोंकी पुष्टि साधन करनेसे भावशुद्धि साधित हो जाती है। इसके लिए आवश्यकता है चित्तसे प्रतिकूल भावोंको निकाल देनेकी अथवा प्रतिकूल भावोंको अपने भावके अनुकूल कर लेनेकी। जैसे, मधुर भावका साधक (स्त्री) पतिके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

माता-पिता, आत्मीय स्वजन, बन्धु-बान्धवोंकी सेवाको पतिके प्रिय होनेके कारण पतिकी सेवाका ही अंग समझता है। इसमें मुख्य लक्ष्य है पतिकी सेवा, पतिकी तृप्ति, पतिका प्रियकार्य साधन। वस्तुतः मधुर भावके अतिरिक्त अन्य कोई भावकी चिन्ता उसके मनमें नहीं आयगी। भावशुद्धिको ही मानसिक तपस्या कहा गया है। थोड़ा विचार करनेसे ही समझमें आ जायगा कि आसक्ति, ममता, अहंकार, प्रतिष्ठामोह, कर्तृत्वाभिमान एवं सुखस्पृहा ही चित्तको अशुद्ध करनेके मुख्य कारण हैं। इसलिए निर्मम-निरहंकार आदि श्लोक चित्तशुद्धिमें सहायक माने गये हैं।

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥९॥

निर्मानमोहाः (जिनका अभिमान और मोह दूर हो गया है) जितसंगदोषा (जो आसक्तिजन्य दोषसे मुक्त हैं) अध्यात्मनित्याः (जो आत्मज्ञाननिष्ठ हैं) विनिवृत्तकामाः (जिनकी समस्त कामना-वासना विशेषतः निवृत्त हो गई हैं) सुखदुःखसंज्ञैः द्वन्द्वैः विमुक्ताः (जो सुख दुःखात्मक द्वन्द्वसे विमुक्त हैं) [ते] अमूढाः (ऐसे अमूढ़ जन) तत् (परब्रह्म के) अव्ययं पदं (मोक्ष पदको) गच्छन्ति (प्राप्त होते हैं)।

*** विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः।**
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥१०॥

यः पुमान् (जो पुरुष) सर्वान् कामान् विहाय (सब कामनादि त्यागकर) निस्पृहः (इच्छारहित) निर्ममः (ममत्वरहित) निरहंकारः (अहंकारवर्जित होकर) चरति (संसारमें विचरण करता है) सः शान्तिम् अधिगच्छति (वह शान्ति लाभ करता है)

याद रखना होगा कि निर्मम-निरहंकारकी साधनाके लिए अंगन्यास और करन्यासको व्यवस्था की गई है। ममत्व भाव दूर करनेके लिए सब पदार्थोंको शोधनकर भगवद् विभूतिमें पर्यवसित करना होगा। निरहंकार भाव लाभ करनेके लिए तमोगुणमें अभिभूत अहंकारको क्रमशः ऊपर उठा-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर राजसिक और सात्त्विक भूमि भेदकर विशुद्ध सत्त्वमें ले जाना होगा। इसकी साधनप्रणाली अंगन्यास और करन्यासके प्रसंगमें देखिए। साधन राज्यमें अनेक तामसिक भाव आकर प्रकृत सत्त्वगुणको अभिभूतकर अपनेको सत्त्वगुणके स्थानपर बैठाना चाहते हैं। इन तमोगुणी भावोंसे रक्षा पानेके लिए उस समय रजोमिश्रित सत्त्वगुणका साधन करना होता है।

गायत्री जप

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं
ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥११॥ (आत्मनं तेजोमयं विभावयेत्)

यहाँ गायत्री जपकी सहायतासे 'ॐ भूः ॐ भुवः' इत्यादि उच्चारण कर चित्तको भगवद्धाम (सहस्रार) में ले जाना होगा। 'ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं' इत्यादि उच्चारणकर भर्ग-देवका स्वरूप उपलब्ध करना होगा। इस स्थलमें अपने सब तत्त्वोंको भगवद्भावसे परिभावितकर भगवत्कार्य साधनमें नियोग करनेकी व्यवस्था है। इसके बाद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' उच्चारणकर अपने सब तत्त्वोंको भगवद्भावसे परिभावित कर लेना होगा। और फिर 'ॐ' उच्चारणकर चित्तको फिर भगवद्धाममें ले जाकर भगवद्धामतत्त्व आस्वाद करना होगा।

"**गायत्रीका अर्थ**—ॐकार अथवा प्रणव परब्रह्मका वाचक है। इसमें जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति अथवा स्थूल-सूक्ष्म-कारण, ये तीन अवस्थाएँ बतानेके लिए अकार-उकार-मकार इन तीनों वर्णोंका प्रयोग किया गया है। प्रकारान्तरसे यह सृष्टि-स्थिति-संहार अथवा ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर इन तीनों तत्त्वोंका वाचक है। उसके ऊपर अर्धमात्रा है जिसके अन्तर्गत बिन्दु-नाद-कला ये तीन स्तर विद्यमान हैं। केवल यही नहीं, कलाके अतीत शुद्ध आत्मा एवं तदनन्तर चित्कलाकी व्याप्ति कही जाती है। सुतरां प्रणव निम्नतम स्तरसे निष्कल परम सत्ता तक ब्रह्मसत्ताका वाचक है।

'भूः भुवः स्वः' यह तीन महाव्याहृति हैं। भूःसे भूर्लोक, भुवःसे भुवर्लोक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथवा अन्तरिक्षलोक (शून्य) एवं स्वःसे स्वर्गलोककी धारणा करनी चाहिए। इन तीनों लोकोंके समाहारको त्रिलोकी कहते हैं। महाव्याहृतिके स्वः को विश्लेषण करनेसे एक तरफ प्रचलित स्वर्ग अर्थात् इन्द्रलोक और दूसरी तरफ ऊर्ध्वस्थित महः, जनः, तपः एवं सत्यलोक पाये जाते हैं। इस हिसाबसे सप्त-व्याहृति अथवा सप्तलोकका संधान मिलता है। वस्तुतः ॐकारसे ही भूः आदि सप्तलोकका आविर्भाव होता है। एक शब्दमें, ॐकारसे ही समग्र सृष्टि प्रसव हुई है। ये ज्योतिर्मय आत्मरूपी सविता हैं। प्रसव करनेके कारण ही इनका नाम सवितृ हुआ है। इनके दो भर्ग अथवा शक्ति हैं। एक वरेण्य अर्थात् प्रार्थ-नीय अथवा श्रेष्ठ, दूसरी अवरेण्य अथवा निकृष्ट। पहलीका नाम विद्या है और दूसरीका अविद्या। दोनों ही परमात्माकी शक्ति हैं किन्तु हम वरेण्य भर्ग अथवा विद्या शक्तिका ही ध्यान करते हैं। यह ध्यान स्वयं करते हुए भी जीव जगत्के प्रतिनिधि रूपमें किया जाता है, यह समझना होगा। जो कर्म सबके प्रतिनिधि रूपमें किया जाता है उसका फल प्राप्त होनेके समय सबमें विस्तृत हो जाता है। यह ध्यान व्यक्तिगत कर्म है इसमें सन्देह नहीं किन्तु यह निष्काम अथवा सर्वकाम है, इसलिए इसका फल सब जीवजगत के उपभोग्य है। सविता दिव्य ज्योतिर्मय एवं चिदानन्दमय लीलाशक्तिसम्पन्न हैं। ध्यानके फलस्वरूप ध्यानकर्त्ताके हृदयमें ध्येय वस्तु प्रतिष्ठित हो जाती है। उस समय ये भर्ग अन्त-र्यामीरूपमें उपासकके हृदयमें जागरित होकर उसको समस्त ज्ञान एवं समस्त कर्मकी प्रेरणा द्वारा चालित करते हैं।

'ध.' शब्दसे ज्ञानशक्ति और कर्मशक्ति दोनों ही अभिप्रेत हैं। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके समस्त कार्य तब अन्तर्यामी द्वारा अनुष्ठित होते हैं। अपना अभिमानमूलक कर्तृत्व बिलकुल नहीं रह जाता। उपासक स्वयं साक्षी अथवा द्रष्टा होकर उपास्य अन्तरात्माका ज्ञान और क्रिया दर्शन करता रहता है। देहमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही अवस्थित हैं। जीवात्मा अभिमानशील है किन्तु उपासनाके प्रभावसे अभिमानवर्जित होकर द्रष्टा होनेमें समर्थ होता है। पक्षान्तरमें परमात्मा स्वभावतः अभिमानवर्जित हैं। वे अन्तरात्मा रूपमें देहके समस्त कार्य निष्पादन करते हैं। सब प्रकारका ज्ञान तथा क्रिया उनके अन्तर्गत

 Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। ज्ञानेन्द्रिय द्वारा वे प्रत्यक्ष करते हैं, कर्मेन्द्रिय द्वारा अनुष्ठान करते हैं। जीव मुक्त होनेपर उनका खेल देखकर धन्य होता है। यही गायत्रीका तात्पर्य है"।

प्रत्येक जपमें तीन तत्व देखनेमें आते हैं। गायत्री जपमें भी ये तीनों तत्व वर्तमान हैं। ॐकाररूप व्याहृतिकी सहायतासे मेरुदंडस्थ स्रोतको अवलम्बनकर, छः चक्र अथवा स्तर भेदकर, सहस्रारमें (ब्रह्मधाममें) जाना होगा। वहाँ जाकर परमात्माकी भर्गशक्ति (ज्योति) में निमज्जित होकर भगवानसे तन्मयता लाभ करना होगा। इसके बाद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' उच्चारणकर चिन्तन करना होगा कि भगवज्ज्योति सहस्रारसे नीचेकी तरफ उतर रही है और उतरते समय हमारे सब तत्वोंको भगवद्भावसे परिभावितकर, भगवत्कार्य साधनकी योग्यता दानकर, भगवदिच्छा पूर्ण करनेमें नियुक्तकर रही है। प्राचीन ऋषियोंने कहा है कि जो ब्रह्मांडमें है वही भांडमें है। अर्थात् जगत्में जो कुछ है उसके सब रहस्य और सब तत्व हमारे व्यष्टि देहमें—यहाँ तक कि प्रत्येक परमाणुमें—वर्तमान हैं। सृष्टि रहस्यका चिन्तन करके भगवद्धाम (सहस्रार) से तामसिक भूमि (मूलाधार) तकके स्थानको सात स्तरोंमें विभक्त किया गया है। इसका प्रत्येक स्तर एक निर्दिष्ट चक्र और निर्दिष्ट तत्वकी अधिष्ठान भूमि है। हमारे मेरुदण्डकी मध्यवर्ती सुषुम्ना नाड़ीके मध्यस्थ सात चक्रोंमें सात तत्वोंका—सप्त-ज्ञानभूमिका—अधिष्ठान निर्देश किया गया है। सप्तव्याहृति गायत्री जपकी सहायतासे हम सर्वनिम्न स्तर मूलाधारसे सर्वोन्नत स्तर सहस्रारमें जानेका सुयोग लाभ करते हैं। इसीलिए गायत्री जपमें मनको प्राणवायुकी सहायतासे सर्व निम्न स्तरसे क्रमशः ऊपरके स्तरकी ओर ले जानेकी व्यवस्था देखी जाती है। गायत्री जपमें भगवानके निकट जानेके समय चित्त भगवज्ज्योतिमें निमग्न होकर धाम-तत्व आस्वाद करनेमें समर्थ होता है। प्राचीन ऋषिगण गायत्रीकी सहायतासे भगवद्धाममें प्रवेश करनेका सुयोग लाभ करते थे। इसके बाद "आत्मानं तेजोमयं विभावयेत्" उच्चारणकर अपने सब तत्वोंको और समष्टिभावमें जगत्के सब तत्वोंको तेजोमयरूपमें, भगवद्भावसे परिभावितरूपमें, उपलब्ध करनेकी चेष्टा करते थे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

धामतत्त्व

धामतत्वमें सब कुछ अप्राकृत ज्योतिर्मय है। साधकके वहाँ पहुँच जानेपर उसके सब कार्य पूजामें परिणत हो जाते हैं। भगवद्धाम भजनका राज्य हैं। इस उपलब्धिके विषयमें भगवान शंकरने कहा है :—

सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः
गांगं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ता क्रियाः
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरा वाराणसी मेदिनी
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि ॥

अन्यत्र उन्होंने फिर कहा है :—

सचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरः।
यद्यत् कर्म करोमि तत् तदखिलं शम्भोस्तवाराधनम् ॥

वैष्णव कवियों ने भी कहा है कि वहाँ सब कुछ अप्राकृत है, आनन्द और शान्तिका अपूर्व समावेश है। 'कथा गानं नाट्यं गमनपि'। वहाँकी 'चिदानन्द-ज्योतिः' परम अर्थात् आस्वादनके अतीत होनेपर भी आस्वाद्य हो जाती है।

"धाम शब्दका अर्थ है ज्योतिः अथवा तेज। इसको आश्रय करके ही स्वरूप-तत्व प्रकाशित होता है। मूलमें स्व-स्वरूप और इष्ट-स्वरूप एक होनेपर भी उपासना अथवा भजनकी सुविधाके लिए एवं रसकी अभिव्यक्तिके लिए दोनोंको पृथक्-पृथक् प्राप्त करना होता है। मायिक जगत् और मायिक देहके संवेष्टनसे अपने आपको मुक्तकर ज्योतिमें अपने नित्य रूपका दर्शन करना होता है। अपना नित्यरूप प्रकाश होनेके साथ ही वह ज्योति ज्योतिर्मय-राज्यरूपमें आत्मप्रकाश करती है। इस राज्यके अधिष्ठाता जो बिन्दु अथवा केन्द्रमें विराज करते हैं तब भी प्रकाशित नहीं होते। धाममें प्रवेश करतेपर अपना नित्यरूप उपलब्धकर क्रमशः इष्टका स्वरूप दर्शन और आस्वादन करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। व्यापक दृष्टिसे देखा जाय तो गुणातीत, स्वयंप्रकाश, निर्विकार, चिदानन्दमय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमज्योतिः ही धामतत्व है। भावुककी भावनानुसार यह नाना रूपमें प्रकट हो सकती है किन्तु तत्व एक ही है। माया अतिक्रान्त हुए बिना धामतत्व प्रकाशित नहीं होता।''

*द्वन्द्वातीतं त्रिगुणरहितं स्वप्रकाशस्वरूपं
शान्ताकारं गगनसदृशं निर्विकारं वरेण्यम्।
भक्तैर्जुष्टं विमलनिलयं योगिभिर्ध्यानगम्यं
नित्यानन्दं परमसुखदं चेतसा तं स्मरामि ॥१२॥

द्वन्द्वातीतं (सुखदुःखादि द्वन्द्वातीत) त्रिगुणरहितं (सत्व, रजः, तमःत्रिगुण-रहित) स्व-प्रकाश-स्वरूपं (स्व-प्रकाशस्वरूप) शान्ताकारं (शान्ताकार) गगनसदृशं (आकाशके समान व्यापी) निर्विकारं (विकाररहित) वरेण्यं (सर्वोत्तम्, वांछनीय) भक्तैः जुष्टं (भक्तवृन्द द्वारा परिसेवित) विमल-निलयं (विमल आनन्दधामस्वरूप) योगिभिः (योगीगणके) ध्यानगम्यं (ध्यान द्वारा गम्य) नित्यानन्दं (नित्यानन्दस्वरूप) परम सुखदं (परम सुख देनेवाले ; तं (उस भगवद्धामको) चेतसा (चित्त द्वारा) स्मरामि (मैं चिन्तन करता हूँ)।

अर्थात् कूटस्थमें अवस्थित भगवद्धाम ज्योतिर्मय, गुणातीत, निर्विकार, आनन्दरस-परिभावित और भक्तजन-सेवित है। साधक अपनेको ज्योतिर्मय भगवद्धाममें अपने इष्टके सम्मुख अवस्थित चिन्तन करता है। याद रखना होगा कि धामतत्व अप्राकृत चिन्मय है, श्रीभगवानकी सत्-शक्तिसे उत्पन्न और सत्का ही विकार है, अनन्त कल्याण-गुणकी खान है और अशेष सौन्दर्य-माधुर्यरसके पूर्ण विकासके अनुकूल है। वहाँके सब तत्व चिन्मय, सुन्दर, मधुर, भगवद्भावसे परिपूर्ण और भगवल्लीलाके सहाय हैं। साधक विरजा (वैतरणी) पारकर, अप्राकृत देह लाभकर, जब भगवद्धाममें प्रवेश करता है तो अनुभव करता है कि सभी ज्योतिर्मय हैं। तब उस ज्योतिमें अपना स्वरूप, भगवत्-स्वरूप तथा दोनोंके भीतरका सम्बन्ध स्वतः स्फुरित होने लगता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वरूपतत्त्व

"घामके प्रकाशके साथ-साथ अपना स्वरूप भी प्रकाशित हो जाता है। जब तक मायाका आच्छादन है तब तक घाम प्रकट नहीं होता, न अपना स्वरूप ही प्रकट होता है। अपना स्वरूप सत्य, चैतन्य एवं आनन्द है। परमात्माका स्वरूप भी ऐसा ही है। परमार्थ दृष्टि से दोनोंमें कोई भेद नहीं। अपना स्वरूप दिव्य, शोक-दुःखातीत एवं चिन्मय ब्रह्मात्मक है। यद्यपि परमात्माके और अपने स्वरूपमें वास्तविक कोई भेद नहीं तथापि देहमें रहते हुए 'तुम और मैं' का भाव रहता ही है। इसलिए अद्वैत-स्वरूपमें भी द्वैतका आभास वर्तमान रहता है। भगवान अथवा परमात्मा अनादिमुक्त हैं किन्तु जीव मायाको अतिक्रम करके मुक्त हो जानेपर भी आदि-मुक्त ही कहा जा सकता है, अनादि मुक्त नहीं। इसलिए तात्विक दृष्टिसे दोनों एक होते हुए भी भगवान अंशी हैं और जीव उनका सनातन अंश है। इसके फलस्वरूप जीव भगवानके सहित अपना सम्बन्ध आश्रय और आश्रित रूपमें ही धारणा करता है। जीव अपनेको भगवानका अंश चिन्तन कर सकता है। किन्तु भगवानको अपना अंश चिन्तन नहीं कर सकता। जैसे समुद्र और तरंग जलरूपमें एक ही हैं किन्तु समुद्रकी तरंग कही जा सकती है, तरंगका समुद्र नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार जीव और परमात्मा दोनों स्वरूपतः चिन्मय एक होनेपर भी जीव भगवानको 'तुम मेरे हो' कहकर चिन्तन नहीं कर सकता। 'मैं तुम्हारा हूँ' यह भाव उसके लिए उपयोगी है।"

घाम तत्त्वके स्फुरणके फलस्वरूप साधकके भीतरके आवरण स्वतः अपसारित हो जाते हैं और आत्माका प्रकृत स्वरूप उसके चित्तमें स्फुरित होने लगता है। पंचकोश-विवेक एवं नेति नेति साधनाका जो लक्ष्य है वह घाम-साधनाके प्रभावसे स्वतः साधित हो जाता है। तब साधक समझता है कि वह देह नहीं है, आश्रमी नहीं है; वह निःसंग, निष्क्रिय, सर्वोपाधि-विवर्जित है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

* अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवास्मि न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥ १३ ॥

अहं देवः (मैं देवता हूँ) अन्यः च न अस्मि (अन्य कुछ नहीं हूँ) ब्रह्म एव अस्मि (मैं निश्चय ब्रह्मस्वरूप हूँ) शोकभाक् न (मैं शोक भोग नहीं करता—शोक मुझे स्पर्श नहीं कर सकता) अहं सच्चिदानन्दरूपः (मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ) नित्य-मुक्त-स्वभाववान् (नित्य मुक्त होते हुए भी लीला-रत हूँ) ।

नाहं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी संगवर्जितः ।
निष्क्रियो निस्पृहः शान्तः सर्वोपाधिविवर्जितः ॥ १४॥

अहं विप्रादिकः वर्णः न (मैं ब्राह्मणादि वर्ण नहीं हूँ) आश्रमी न (ब्रह्म-चर्यादि आश्रम अवलम्बी नहीं हूँ) [मैं] संगवर्जितः (अनासक्त हूँ अर्थात् देहादि, आत्मीय-स्वजन सुख-दुःखादिके साथ मेरा किसी प्रकारका पारमार्थिक सम्बन्ध नहीं है) निष्क्रियः (कर्त्तृत्वाभिमान रहित) निस्पृहः (इच्छारहित शान्तः (शान्त) सर्वोपाधिविवर्जितः (सब प्रकार की उपाधि रहित) [हूँ] ।

नाहं देहो न मे देहो निष्कलो गगनोपमः ।
निराकारो निराधारः शुद्धविज्ञानविग्रहः ॥ १५ ॥

अहं देहः न (मैं देह नहीं हूँ) देहः मे न (देह मेरी नहीं है—अर्थात् देहके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है) [मैं] निष्कलः (कला रहित, भेद-रहित, पूर्ण) गगनोपमः (गगनके समान व्यापी) निराकारः (निराकार) निराधारः (निराधार) शुद्धविज्ञानविग्रहः (शुद्ध-विज्ञान-विग्रह स्वरूप) [हूँ] ।

धामतत्त्वमें जाकर जब आत्मदर्शन लाभ होता है तब 'मैं पापी हूँ' (पापोऽहं पापकर्माहं इत्यादि)—यह भाव नहीं रह जाता ।

साधकको इस स्थलमें पहुँचकर अपना नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव उपलब्ध हो जानेके कारण भगवानके साथ एक तादात्म्य भाव आ जाता है। फिर भगवानसे किसी प्रकारका भेदभाव उपलक्षित नहीं होता । तब प्रेममय भगवान मानो भक्तको अपने हृदयसे चिपका लेते हैं और भक्त और भगवान् दोनों ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आनन्दमें समाहित हो जाते हैं; किसीको अपना स्वरूप चिन्ता करनेका सुयोग नहीं मिलता। इस अवस्थामें भक्त और भगवानमें किसी प्रकारका भेद रहता है या नहीं, इस विषयमें पंडितोंने अनेक तर्क-वितर्क किया है किन्तु प्रेमिक भक्त चेतना लाभ करते ही अपनेको भगवानका दास समझकर उनके चरणोंमें लोटना चाहता है। भगवान चाहते हैं भक्तको अपने हृदयसे लगाकर रखना किन्तु भक्त चिरकाल दास्यभावसे उनकी सेवा करना चाहता है। जब तक अपने पृथक् अस्तित्वका ज्ञान रहता है तब तक साधक भक्त दास्यभाव छोड़नेको तैयार नही होता।

***सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।**
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ॥ १६ ॥

भेदापगमे सति अपि [भगवानमें और जीवमें] (पारमार्थिक दृष्टिसे भेद न होते हुए भी) [मैं कहूँगा] नाथ (हे नाथ) अहं तव (मैं तुम्हारा हूँ) त्वं मामकीनः न (तुम मेरे नहीं)। [जैसे] तरंगः (लहर) सामुद्रः हि (समुद्र की होती है) समुद्रः क्वचन तारंगः न (समुद्र तरंगका कभी नहीं कहा जा सकता)।

धाममें प्रवेश कर अपना प्रकृत स्वरूप, भगवत्स्वरूप एवं दोनोंके भीतरका सम्बंध उपलब्ध हो जाने पर अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होनेकी एक तीव्र अभिलाषा उत्पन्न होती है। उस समय भगवत्कृपा-शक्ति सद्गुरु-लाभमें सहायक होती है। इस सहायताके लाभसे साधक की इच्छा पूर्ण होनी सम्भवपर हो जाती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुतत्त्व

"गुरुका स्वरूप—भगवान अथवा परमात्मा एकाधारमें साधकके गुरु और इष्ट दोनों ही हैं। उनका स्वरूप सच्चिदानन्दमय है। वे निराकार, निष्कल और निर्गुण होते हुए भी साकार, सकल और सगुण हैं; सब वर्णों के अतीत होते हुए भी सर्ववर्णमय हैं। वे विश्वातीत भी हैं और विश्वात्मक भी। जैसे यह कहना सत्य है कि उनकी काया नहीं है वैसे ही यह भी सत्य है कि उनकी चिदानन्दमय काया है। समस्त देवी-देवता जिनके आंशिक स्फुरण हैं और जिनको आश्रय करके उनकी शक्तियाँ अपना-अपना काम करती हैं वे ही इष्ट हैं और वे ही गुरु हैं।" (परिशिष्टमें 'गुरु-इष्ट-भगवान-तत्त्व' द्रष्टव्य है)।

ॐइष्टदेवस्वरूपो यः सच्चिदानन्दविग्रहः।
शुद्धो बुद्धः प्रमुक्तश्च गुरुरादर्शमानवः॥ १७॥

गुरु आदर्शमानवः (गुरु आदर्श मनुष्य हैं) यः (जो) इष्टदेव-स्वरूपः (पुरुषोत्तमके जीवन्त विग्रहस्वरूप हैं) सच्चिदानन्द विग्रहः (सच्चिदानन्दकी घनीभूत मूर्त्तिके समान हैं) शुद्धः बुद्धः प्रमुक्तः च (शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त स्वरूप हैं)। इस अवस्थामें शुद्ध चित्तमें तीव्र पिपासा उदय होनेके कारण सद्गुरुतत्व-का स्फुरण और सद्गुरु-लाभ स्वाभाविक हो जाता है।

हम इष्टदेवको सम्मुख नहीं देख पाते, इसलिए उनको जाननेके लिए एक-ऐसे महापुरुषकी सहायता लेते हैं जिनके कर्म, वचन और भाव द्वारा इष्टतत्व हमारे अनुभववेद्य हो सकें; जो सत्ता चैतन्य और आनन्दकी पूर्ण प्रकटित तथा अपूर्व-समन्वय प्राप्त मूर्ति हों; जो कामना-वासनासे पूर्णतया मुक्त हों; जो अपने ज्ञान द्वारा हमारी अज्ञानता दूर कर सकते हों; जो स्वयं मुक्त होनेके कारण कर्म, वचन और भाव द्वारा हमको मुक्तिके पथपर ले जा सकते हों।

इष्टकी महिमा ऐसी है कि उनका एक बार दर्शन हो जानेसे और किसी वस्तुको देखनेका साध नहीं रहता, उनको जानकर और कुछ जाननेको बाकी नहीं रहता, उनको प्राप्त करके और कुछ प्राप्त करनेको बाकी नहीं रहता।

यत् दृष्ट्वा ना परं दृश्यं यद् भूत्वा न पुनर्भवः।
यज् ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तदिष्टमवधारय॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवत्तत्त्व

योगी-ऋषिगण किस प्रकार पहले ज्योति-दर्शन करते हैं और फिर इस ज्योतिके भीतरसे किस प्रकार भगवत्तत्त्वका स्फुरण होता हैं, गुरुकी कृपासे इसका रास्ता खुल जाता है। भगवत्-अस्तित्वका आभास पहले ज्योति-दर्शन रूप-में मिलता है। इसके फलस्वरूप मिलनकी इच्छा जाग उठती है और व्याकुलता आ जाती है। तब क्रमशः चित्त शुद्ध होकर भगवत्-प्राप्तिकी इच्छाको प्रबलकर देता है। भगवान्का प्रकृत स्वरूप वाक्य मनके अगोचर है। यह मूकास्वादनके भाँति अनिर्वचनीय है। जिन्होंने जान लिया है वे भी प्रकाश नहीं कर सकते। तटस्थ लक्षण द्वारा ऋषियोंने इसका एक आभास मात्र देनेकी चेष्टा की है।

ॐयं ब्रह्मा वरुणेन्द्र-रुद्र-मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैः गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः-
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥१८॥

यं (जिनकी) ब्रह्मा-वरुण-इन्द्र-रुद्र-मरुतः (ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण) दिव्यैः स्तवैः (दिव्य स्तव द्वारा) स्तुन्वन्ति (स्तुति करते हैं) यं सामगाः (जिनका सामवेदके गायकगण) सांग-पद-क्रम-उपनिषदैः (अंग, पद, क्रम एवं उपनिषदादि सहित वेदगान द्वारा) गायन्ति (कीर्तन करते हैं) यं योगिनः (जिनको योगीगण) ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा (ध्यान में अवस्थित हुए तद्गत चित्ता द्वारा) पश्यन्ति (उपलब्ध करते हैं), सुर-असुरगणाः (देवता और असुरगण) यस्य अन्तं न विदुः (जिनके अन्तको नहीं जानते हैं), तस्मै देवाय नमः (उन देवताको नमस्कार)।

भगवत्-स्वरूप—"ब्रह्म उभय लिंगक है। उनके सगुण रूपसे शक्ति अभिव्यक्त होकर कार्य करती रहती है किन्तु उनके निर्गुण रूपमें शक्ति अन्तर्लीन होनेके कारण किसी प्रकारकी क्रिया नहीं होती। वस्तुतः जो निर्गुण हैं वे ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सगुण हैं। एक ही समय उनमें दोनों लिंग विद्यमान हैं। दोनोंमें जो विरोध प्रतीत होता है वह केवल लौकिक दृष्टिका है किन्तु स्वरूपमें कोई विरोध नहीं। समस्त गुण एवं समस्त क्रिया उसी निर्गुण निष्क्रिय सत्तासे प्रादुर्भूत होते हैं।

वे स्वरूपतः सत्य-ज्ञान-आनन्द-स्वरूप हैं। उनमें कोई क्रिया नहीं है, कोई विकार नहीं है—यही उनके स्वरूपका लक्षण है। किन्तु जगत्में सृष्टि-स्थिति-संहार उनको अवलम्बन करके ही होता है। इसलिए वे ही जगत्के सृष्टि, रक्षा और संहारकर्त्ता हैं। यही उनका तटस्थ लक्षण है।

जगत्में जीव और जड़ रूपमें विभक्त अनन्त पदार्थ हैं। सबके भीतर निगूढ़ भावमें एवं सबके कर्मोंके नियामक रूपमें जो महासत्ता विद्यमान है, वे ही ब्रह्म-स्वरूप हैं। वे बहु रूपमें प्रकाशमान होते हुए भी स्वरूपतः एक, असंग और साक्षी-स्वरूप हैं। वे सर्वातीत होते हुए भी सर्वव्यापक हैं। वे समस्त जीवोंके अन्तर्यामी हैं।"

उपनिषदमें ब्रह्मकी वर्णना निर्गुण और सगुण इन दो भावोंमें की गई है। सगुण-भाव गुण-विषय-युक्त और जीव के अनुभववेद्य है, निर्गुण भाव अनुभूतिके बाहर है। ब्रह्म तो क्या एक सामान्य परमाणुके सम्बन्धमें भी हम कुछ जानते हैं (जो सगुणके अन्तर्गत है) और अनेकांश नहीं जानते (जो निर्गुणके अन्तर्गत है), अर्थात् सभी वस्तु सगुण-निर्गुण भावकी मिलित मूर्ति हैं। 'सब जानता हूँ' कहना जैसी भूल है, 'कुछ नहीं जानता' कहना भी उसी प्रकार असत्य है। "नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च" इत्यादि—'कुछ नहीं जानता' यह भी नहीं कह सकता और 'सब जान लिया' यह भी नहीं कह सकता। जो कुछ ज्ञात हुआ है अर्थात् जिस अवधि तक वे हमारे निकट आत्म-प्रकाशकर हमारे ज्ञानके विषयीभूत हुए हैं उसीका नाम 'सगुण' है। उनका सगुण रूप हमारे लिए मूर्त्त, प्रकटित अथवा व्यक्त है। उससे ऊपरकी अज्ञात अवस्थाका नाम 'निर्गुण' तत्व है। निर्गुण रूप अव्यक्त तथा अमूर्त है। निर्गुण भाव अक्षर, निर्विकार, शान्त भावके अन्तर्गत है। सगुण भाव विश्वमें अनेकांश प्रकटित है, निर्गुण भाव जीवकी धारणाके अगम्य एवं विश्वातीत है। निर्गुण भावको पाश्चात्य दार्शनिकोंकी भाषामें 'Being' (भव) एवं सगुण भावको

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Becoming' (भावका तत्त्व) कहा जा सकता है। ब्रह्मका जो अंश शक्ति-के गुण द्वारा आत्मप्रकाशकर हमारे ग्रहणयोग्य होता है वही सगुण तत्त्व है। सभी सदार्थों में हम सगुण-निर्गुणका अपूर्व समन्वय देखते हैं; सगुण भाव अवलम्बन द्वारा ही निर्गुणकी ओर जा सकते हैं। जो कुछ ज्ञात हुआ है उसकी सहायतासे अज्ञात तत्त्वको प्राप्त करना साधनाका उद्देश्य है। सगुण-निर्गुणका विरोध लौकिक दृष्टिमें है, स्वरूप में नहीं। समस्त गुण और क्रिया उसी निर्गुण निष्क्रिय सत्तासे आविर्भूत होते हैं। निर्गुण भावमें जो धारणाके अतीत अर्थात् वाक्य-मनके अगोचर हैं सगुण भावमें वे ही सब वाक्यों, सब शास्त्रों, सब चिन्ताओं और सब इन्द्रियोंके गोचर हैं। जो स्वरूपतः अव्यक्त अक्षर निर्गुण विश्वातिग हैं, वे ही व्यक्त क्षर सगुण एवं विश्वात्मक हैं। केवल यही नहीं, उनका परम स्वरूप (अर्थात् निर्गुण भाव) विश्वात्मक प्रकट स्वरूपमें भी अक्षुण्णभावमें नित्य अवस्थित है। इसी रूपमें वे अशेष कल्याण-गुणकी खान हैं। वे विधाता करुणामय, सृष्टि-स्थिति-लय कर्त्ता हैं। वे गम्भीरतामें परम और चरम सार तत्त्व हैं एवं व्यापकतामें परम होनेके कारण सर्वगत हैं। इसीलिए उनको 'परमात्मा' कहा जाता है। वे विश्वातीत होते हुए भी विश्वमय, उदासीन होते हुए भी सर्वभूत-हितमें रत हैं। उन्हींमें समस्त विरुद्ध भावोंका अपूर्व समन्वय पाया जाता है। सगुण-निर्गुणका उल्लेख उपनिषदोंमें इस प्रकार किया गया है—

***द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तंचैवामूर्त्तंच क्षरश्चाक्षरश्च**
सगुणो निर्गुणश्च विश्वानुगो विश्वातिगश्च ॥१९॥

द्वे वाव ब्रह्मणः रूपे (ब्रह्मके दो रूप प्रसिद्ध हैं) मूर्त्तं च अमूर्त्तं च एव (व्यक्त एवं अव्यक्त) क्षरः च अक्षरः च (क्षर एवं अक्षर) सगुणः निर्गुणः च (सगुण अर्थात् क्रियाशील एवं निर्गुण अर्थात् निष्क्रिय) विश्वानुगः विश्वतिगः च (विश्वमय एवं विश्वातीत अर्थात् व्यक्त एवं अव्यक्त)। वे स्वरूपतः अव्यक्त हैं एवं व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त हैं।

इस श्लोकका पूर्वार्ध उपनिषदसे लिया गया है और परार्ध उपनिषदके भाव और शब्द अवलम्बन करके संग्रह किया गया है। गुणके भीतरसे गुणका विभाक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि रूप-शब्द-स्पर्शादि द्वारा प्रकट न हो तो हम शक्तिमानको नहीं पहचान सकते—यहाँ तक कि शक्तिमानके अस्तित्वमें विश्वास करना भी कठिन हो जायगा। मैं अगर घरमें हूँ तो जब तक कोई मेरा मुख न देखे या मेरी आवाज न सुने तब तक किसीको कैसे मालूम होगा कि मैं अन्दर हूँ। भगवान यदि अपनी शक्ति द्वारा, पंचतन्मात्रा द्वारा, आत्मप्रकाश न करते और हमारी शक्ति भी उपयुक्त ग्रहणयोग्यता लाभ न करती तो उनके अस्तित्वमें विश्वास करना प्रायः असम्भव हो जाता। लीलामय भगवान जब लीलाके निमित्त अपनी शक्ति द्वारा आत्मप्रकाश करते हैं तभी उस प्रकटित भावमें—व्यक्तावस्थामें—उनको जानने, समझने, प्राप्त करनेका सुयोग मिलता है। जब उनकी विमर्श शक्ति लीलारत होती है तब वे सगुण हैं। जब विमर्श शक्ति अन्तर्लीन हो जाती है तब वे निर्गुण हैं। निर्गुण ब्रह्मकी लीला करनेकी इच्छा होते ही गुण और क्रिया उनके भीतरसे आत्मप्रकाश करते हैं।

❀ सगुणः सक्तियुक्तश्च निर्गुणः सुप्तशक्तिकः।
लीलया वापि युज्येरन् निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२०॥

[भगवान] शक्तियुक्तः च सगुणः (शक्तियुक्त होकर ही सगुण होते हैं) सुप्तशक्तिकः निर्गुणः (शक्तिकी सुप्तावस्थामें वे निर्गुण हैं) निर्गुणस्य वा अपि (भगवान् स्वरूपतः निर्गुण होते हुए भी) लीलया (लीलाके हेतु) गुणाः क्रियाः युज्येरन् (गुण और क्रिया उनमें प्रकटित होते हैं)। अर्थात् निर्गुणके जो गुण और क्रिया हैं वे उनके लीलावश होने से ही प्रकट होते हैं।

ब्रह्मका निर्गुणात्मक भाव—

ॐ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म
ॐ आनन्दरूपममृतं यद् विभाति
ॐ शान्तं शिवमद्वैतम् ॥ २१ ॥

यत् (जो) आनन्दरूपम् अमृतं (आनन्दरूपमें अमृतरूपमें), शान्तं शिवम् अद्वैतं (शान्त, शिव एवं अद्वैतरूपमें) विभाति (प्रकाशित होते हैं) [वे] सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म (सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्तस्वरूप ब्रह्म हैं)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्म सत्-स्वरूप हैं। वे षड्विध विकार (जायते, आस्ति, वर्धते, विपरिणमते अपक्षीयते, विनश्यति) वर्जित हैं। वे विकारयुक्त जगत्में रहते हुए भी जगदतीत हैं। वे सर्वदा समस्त गुण-क्रिया सहित लीलारत रहते हुए भी उसमें उदासीन हैं। उनको प्राप्त करनेके लिए हमें भी सब प्रकारके असद्भावको वर्जन करना होगा। उनके सत् स्वरूप होनेके कारण उनके सान्निध्यसे हमारे भीतर विशुद्ध सत्त्व भावका प्रकाश होगा। वे ज्ञानस्वरूप, ज्योतिर्मय हैं। उन्हींकी ज्योतिसे जगत् आलोकित है। उनकी चित्-शक्तिके अवलम्बन द्वारा जगत्में चित्का (ज्ञानका) खेल हो रहा है। उन ज्ञानस्वरूपकी साधना करके साधक समस्त ज्ञानसे भूषित हो जाता है। वे अनन्त हैं; उनको जानना, समझना, प्राप्त करना कभी शेष नहीं हो सकता। वे समस्त ज्ञान और प्रेमकी पूर्ण परिणत अवस्था में अवस्थित हैं। Any knowledge, love, etc. raised to power infinity is the knowledge, love, etc. of God! कोई भी ज्ञान अथवा कोई भी प्रेम पूर्णताको प्राप्त होनेपर भगवत्-ज्ञान अथवा भगवत्-प्रेममें परिणत हो जाता है। वे अनन्त स्वरूप हैं इसलिए उनका साधक कभी भी किसी प्रकारके सीमाबद्ध भावसे तृप्त नहीं हो सकता। उनके ध्यानके फलस्वरूप समस्त वृत्तियाँ असीम तक प्रसारित हो जाती हैं। वे ब्रह्म हैं—सर्वापेक्षा बृहत् हैं। गम्भीरतामें परम होनेके कारण वे चरम सार तत्त्व हैं, व्यापकतामें परम होनेके कारण वे सर्वव्यापी हैं। वे अपने साधकको गंभीरता और व्यापकताकी चरमावस्थामें ले जाये बिना नहीं छोड़ते। उनका साधक भी परम सार तत्त्वको जाने अथवा प्राप्त किये बिना, सर्वभूतमें अनुभव किये बिना, तृप्त नहीं होता। वे 'आनन्दरूपममृतं' हैं। इसीलिए जगत्में जो कुछ आनन्द है वह उन्हीं आनन्दस्वरूपका आंशिक प्रकाश है। 'एतस्यैव आनन्दस्य मात्रामुपजीवन्ति। तारतम्येन वर्तन्ते ब्रह्मानन्द लवाश्रया'। समस्त जीव और देवता उन्हींके आनन्दका कण पाकर आनन्दमें विभोर हैं। ब्रह्मके आनन्द स्वरूप होनेके कारण ही तो हम उनके भक्तमें निरानन्दकी छाया भी नहीं देखते। उनके आनन्दका कभी अभाव नहीं होता। इस ब्रह्ममंत्रका साधक ब्रह्ममंत्र जपके फलस्वरूप सर्वदा ब्रह्मभावसे परिभावित रहता है। फिर वे 'शान्तम्' हैं, उनमें कोई चंचलता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं है। इसलिए उनको प्राप्त करनेके लिए हमको भी 'सुशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः' होना होगा। वे साधकके अतिरिक्त और किसीके अनुभववेद्य नहीं हैं। वे 'शिवम्' हैं, जगत्-जीवके कल्याणमें तत्पर हैं। निस्स्वार्थ भावसे जगज्जीवकी सेवामें रत हुए बिना उनका स्वरूप समझमें नहीं आ सकता। वे 'अद्वैतम्' हैं— सर्वदा अखण्ड अद्वैत तत्त्वमें अवस्थित हैं। जो समस्त द्वैत भाव वर्जनकर सर्वत्र एकत्व भावकी उपलब्धिमें, एकत्व भावके प्रचारमें व्रती हैं वे ही केवल उनका अखंड स्वरूप उपलब्ध कर सकते हैं।

ब्रह्मका शान्तभाव (State of perfect equilibirum) गीताके 'समत्वं ब्रह्म उच्यते' भावका द्योतक है। 'शिवम्' शब्द परमात्मभावका द्योतक है। इस अवस्थामें ब्रह्मके भीतर क्रियाका विकास लक्षित होता है। वे जीवके कल्याणसाधनमें कितने व्यस्त हैं, यह अनुभवमें आता है। 'अद्वैतम्' शब्द वैष्णवोंके भगवत्तत्त्वका द्योतक है। भगवद्धाममें भगवानके अतिरिक्त और किसी वस्तुका अस्तित्व नहीं। वे ही लीलाके हेतु परिकर और धामादि रूपमें आत्मप्रकाशकर लीलारत हैं और सब कुछ उन्हींकी विभूति हैं, यह तत्त्व आस्वाद किया जाता है। वें हैं, वें अपरिवर्तनीय और विकाररहित हैं, यही उनके स्वभावका द्योतक है। वे ज्ञानस्वरूप, ज्योतिःस्वरूप, शक्तियुक्त हैं एवं शक्तितत्त्व द्वारा लीला करनेमें व्यस्त हैं। सब कुछ वे ही हैं—'वासुदेवः सर्वमिति'। यही ज्ञानतत्त्वकी महिमा है। हम उनके 'अनन्त' तत्त्व द्वारा उनकी गंभीरताकी एवं 'ब्रह्म'-तत्त्व द्वारा उनकी व्यापकताकी चरमावस्था लक्ष्य कर सकते हैं। "आनन्दरूपममृतम्' भाव भगवानके प्रकृत स्वरूपका—'रसो वै सः,' 'मधु ब्रह्म', इत्यादि भावका—द्योतक है। 'शान्तं-शिवम्-अद्वैतम्' शब्द में साधन-राज्यका एक गूढ़ तत्त्व निहित है। **साधनराज्यमें पहला काम है संयत होना, दूसरा काम है जीवसेवा, तीसरा काम है अद्वैत-तत्त्व आस्वाद करना।**

ब्रह्मका सगुणात्मक भाव—सगुण ब्रह्म सृष्टि-स्थिति-लय-कर्त्ता, अन्तर्यामी विधाता हैं। इस श्लोकमें ब्रह्मका तटस्थ लक्षण पाया जाता है।

ॐ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते
येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति,
तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म तत् ब्रह्मेति ॥२२॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

यतो वा (जिनसे) इमानि भूतानि (यह समुदय जगत्) जायन्ते (उत्पन्न होता है), येन जातानि जीवन्ति (जिनकी शक्तिसे उत्पन्न भूत समुदय जीवित है), यत् प्रयन्ति (जिनमें लीन होता है), अभिसंविशन्ति (जिनके भीतर जाकर जीव लीलाराज्यमें प्रवेश करनेका अधिकार लाभ करता है), तद् विजिज्ञासस्व (उनको सविशेष जाननेके लिए तत्पर हो), तद् ब्रह्म, तद् ब्रह्मेति (वे ही ब्रह्म हैं, वे ही [सगुण] ब्रह्म हैं)।

'यत् प्रयन्ति'से उनमें लय हो जाना अभिप्रेत है। इसके पश्चात् 'अभिसंविशन्ति' शब्दसे जीवके लीन हो जानेके बाद भी वे जो समस्त सृष्ट पदार्थोंको तद्भावसे परिभावितकर अपनी लीलाके सहायभूत कर लेते हैं, इसका आभास मिलता है। सृष्टि-स्थिति-लय द्वारा जीवत्वका पूर्ण विकास साधनकर उसको अप्राकृत धाममें ले जाकर जो लीलाके सहाय कर लिया जाता है, यह भी सगुण ब्रह्मके लक्षणके अन्तर्गत है। 'प्रयन्ति' शब्द लय-योग के 'अनुप्रविष्ट' भावका और 'अभिसंविशन्ति' 'अनुस्यूत' भावका द्योतक है।

मंत्रात्मक श्लोकोंमें कहीं-कहीं सगुण और निर्गुण दोनों भावोंका उल्लेख देखनेमें आता है, जैसे—'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्' इत्यादि।

प्रवर्त्तक अवस्थामें संयम, शुद्धि आदिकी तरफ विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। इससे चित्तको सम्पूर्णतः संस्कार-वर्जित होनेका सुयोग मिलता है। अहंकारका भाव जाता रहता है। तब साधनाके भीतर परमात्माभाव, भगवानका कार्य-कलाप, उपलब्धिमें आता है। इसके परिणामस्वरूप आत्मनिवेदन द्वारा सिद्धावस्था प्राप्तकर हम भगवल्लीला-रहस्य आस्वाद करनेका और भगवद्-भजनानन्दमें विभोर रहनेका सुयोग पाते हैं।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥२३॥

[यह सगुण ब्रह्म] एकः (अद्वितीय) देवः (द्योतनात्मक और लीलात्मक) सर्वभूतेषु गूढः (सब भूतोंमें अव्यक्त भावमें अवस्थित) सर्वव्यापी (सर्वव्यापी) सर्वभूतान्तरात्मा (सब भूतोंका अन्तरात्मा—प्रेरक, चालक व नियामक) कर्माध्यक्षः (सकल कर्मोंके मुख्य कर्त्ता) सर्वभूताधिवासः (सब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूतोंमें अधिष्ठित) साक्षी (द्रष्टा) चेता (चैतन्यदाता) केवलः (निष्कल) निर्गुणः च (एवं निर्गुण) है ।

ये सगुण ब्रह्म समस्त क्रियाओंके चालक होते हुए भी गुणातीत (अचल) हैं, समस्त कर्मोंमें रहते हुए भी उदासीन हैं; विश्वमय और विश्व के शासक होते हुए भी विश्वातीत हैं । इन्हींको कहा गया है—'अनासक्त-अनुरागी, संसारी-संसारत्यागी' ।

सर्वेशः सर्वगः साक्षी शर्वेन्द्रियनियामकः ।
विधाता सर्वदृक् कर्ता करुणामय ईश्वरः ॥२४॥

सर्वेशः (सबके नियन्ता) सर्वगः (सर्वव्यापी) साक्षी (द्रष्टा) सर्वेन्द्रिय-नियामकः (सब इन्द्रियोंके चालक) विधाता (विधान करने वाले) सर्वदृक् (सर्वद्रष्टा) कर्त्ता (स्वतंत्र मुख्य कर्त्ता) करुणामयः ईश्वरः (करुणामय ईश्वर) [है] ।

सगुण ब्रह्ममें यह सब लक्षण वर्तमान हैं ।

कः सर्वतत्त्वे तिष्ठन् सर्वतत्त्वस्यान्तरः,
यं सर्वतत्त्वं न वेद, यस्य सर्वतत्त्वं शरीरं,
यः सर्वतत्त्वं यमयति, स ह्यात्मा अन्तर्यामी ॥२५॥

यः (जो) सर्वतत्त्वे तिष्ठन् (सब तत्वोंमें वर्तमान) सर्वतत्वस्यान्तरः (सब तत्त्वोंके अन्तरमें अवस्थित) [हैं] यं सर्वतत्वं न वेद (जिनको सब तत्व नहीं जानते) सर्वतत्वं यस्य शरीर (सब तत्व जिनके शरीर) [हैं] यः सर्वतत्वं यमयति (जो सब तत्वों के नियामक हैं) स अन्तर्यामी आत्मा (वे ही अन्तर्यामी परमात्मा) [हैं] ।

अर्थात् जो सब तत्वोंमें अवस्थित रहकर सब तत्वोंको अपने-अपने कार्यमें नियुक्त रखते हैं, जिनको कोई भी तत्व सम्पूर्णतः प्रकाश नहीं कर सकता, वे ही मेरे परमात्मा हैं ।

उपनिषदोंमें कुछ श्लोक केवल निर्गुण भावके, कुछ सगुण भावके और कुछ दोनों भावोंके प्रकाशक हैं । कहना अनावश्यक होगा कि निर्गुण और सगुण तत्त्व

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
एकाधारमें अनेकांश युगलरूपमें वर्तमान हैं। ज्ञात अवस्था अज्ञात स्तर भेदकरके ही क्रमशः प्रकाशित होती है। 'स पर्यगात्' श्रुति उभय भाव का दृष्टान्त है; प्रथमांश निर्गुण भावका और द्वितीयांश सगुण भावका द्योतक है तथा सर्वशेषांक मानो ब्रह्मभावको अतिक्रमकर परमात्मभावमें प्रवेश कर गया है। ब्रह्म भावके भीतर हम साधारणतः संस्कारवर्जित शून्यतत्वमें निर्विशेष भावमें डूब जाते हैं। इसके बाद उस शून्यको भेदकर, वहाँकी क्रिया दर्शनकर परमात्म भावका स्फुरण आरम्भ होता है जिसकी पूर्णता सगुण ब्रह्ममें भगवद्भावमें है। परमात्मा ही साधकके उपास्य हैं। अन्तमें हम निकुञ्जलीलाके सामरस्य तत्वके भीतर भी एक निर्विशेष भावका आभास पाते हैं।

शक्तितत्त्व

"शिव और शक्ति स्वरूपतः एक ही वस्तु है तथापि व्यावहारिक दृष्टिसे दोनोंमें थोड़ासा पार्थक्य है। जब शिवका शक्तिके सहित योग नहीं होता तब वे निष्क्रिय, निस्पन्द, निर्गुण एवं निष्फल हैं। उनका प्रभुत्व अथवा ऐश्वर्य शक्तिसापेक्ष है। शक्तिहीन शिव शवके समान हैं किन्तु वास्तवमें शिव कभी शक्ति-हीन नहीं होते। जिस अवस्थाको शक्तिहीन कहा जाता है उस अवस्थामें शक्ति अव्यक्त रूपमें शिवमें अन्तर्लीन रहती है; उस समय शिवके सहित उसका योग नहीं होता। किन्तु शक्ति जब अभिव्यक्त होती है तभी शिवके साथ उसका योग होता है।

शक्तिके अभिव्यक्त होनेपर उसकी उपासना की जाती है। यह उपासना आवश्यक है। कारण, शक्तिकी उपासना किये बिना अर्थात् जाग्रतशक्तिका आश्रय लिये बिना आत्मा अपना शिवत्व अनुभव नहीं कर सकता।

शक्तिके जागरित हो जानेपर विश्वरूप दर्शनमें आता है। तभी समझमें आता है कि एक ही सत्ता अनन्त रूपमें प्रकाशमान है। जगतमें जितने रूप हैं सब उन्हींके रूप हैं, जितने चक्षु हैं सब उन्हींके चक्षु हैं, जितने मुख हैं सब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन्हींके मुख हैं—इस प्रकारकी प्रतीति आ जाती है। जिनका रूप नहीं है, आकृति नहीं है, चक्षु नहीं है तब सर्वत्र उनके रूप, उनकी आकृति, उनके चक्षु देखनेमें आते हैं। जिनमें कुछ नहीं है उनमें सभी कुछ देखनेमें आता है—यही शक्तिकी महिमा है।

ज्ञानेन्द्रियोंकी ज्ञान शक्ति, कर्मेन्द्रियोंकी कर्मशक्ति—सबका मूल यही चैतन्य-शक्ति है। इसलिए चैतन्यरूपी शक्ति ही 'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनः········चक्षुषश्चक्षुः' है। समस्त शक्तियोंमें प्राणरूपा शक्ति ही चैतन्य है।

ये ही जगत्-प्रसविता परमेश्वरकी परम भर्ग हैं। इनका ध्यान करनेसे परमात्मा अन्तर्यामीरूपमें हृदयमें प्रतिष्ठित होते हैं और उपासककी देहको आश्रयकर अवस्थानपूर्वक उसकी ज्ञान और कर्म शक्तिको प्रयोजनानुसार अपने-अपने विषयोंमें प्रवर्त्तित करते हैं।

शक्ति उपासनाका उद्देश्य ही यह है कि शक्तिहीनके भीतर शक्तिका संचार हो। इसीलिए बलसे बलके लिए प्रार्थना की जाती है (श्लोक २९ देखिए)। बल ही स्वाभाविक शक्ति है। उनकी कृपासे उनका किंचित् अंश हममें आहित हो जाय तो हम प्राप्तकर अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमें अग्रसर हो सकेंगे। याद रखना होगा कि 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'।

वे प्रकाशस्वरूप—स्वयंप्रकाश—हैं। किन्तु हम उनको प्रकाशमान रूपमें नहीं देख पाते। इसका एकमात्र कारण यह है कि हमारी दृष्टिके ऊपर जो परदा अथवा आवरण है वह अभी अपसारित नहीं हुआ है। जो स्वयंप्रकाश हैं उनको प्रकाशित नहीं करना पड़ता और न उनको ही प्रकाशित होना होता है—वे तो प्रकाशरूपमें हैं ही। किन्तु जो उनका दर्शन करना चाहता है उसकी धारणा-शक्ति और दर्शनशक्तिका उन्मुक्त होना आवश्यक है। लेकिन जीवका इतना सामर्थ्य नहीं जो अपने आप इस शक्तिको उन्मुक्तकर सके। इसलिए उसकी स्वाभाविक प्रार्थना यह होती है कि जो स्वयंप्रकाश हैं वे कृपापूर्वक उसकी दृष्टिशक्तिको उन्मोलित कर दें। दृष्टिशक्ति उन्मीलित होते ही विश्वरूपा माँकी सत्ता सर्वत्र अनुभवमें आने लगती है। तभी समझमें आता है कि वे सब भूतोंमें मातृरूपमें बैठे हैं।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

'शक्ति' शब्द सामर्थ्यवाचक 'शक्' धातुसे निष्पन्न है। किसी कार्य करनेकी योग्यताको शक्ति कहते हैं। कारणमें, अव्यक्तरूपमें, जो तत्त्व निहित है उसको कार्यरूपमें प्रकट करनेके लिए शक्तिकी आवश्यकता होती है। प्रत्येक पदार्थमें—यहां तक कि प्रत्येक परमाणुमें—अनन्त शक्ति निहित है। इस निहित शक्तिको जागरितकर कार्योपयोगी करनेका नाम है शक्तिपूजा। शक्तिके बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। शक्तिके प्रकाशके बिना शिव केवल शवके समान है—सृष्ट्यादि कर्ममें सम्पूर्णतः असमर्थ हैं। किस प्रकार शक्ति सब पदार्थोंमें अव्यक्त रूपमें निहित है, किस प्रकार इस सुप्त शक्तिको जागरितकर उद्देश्य सिद्ध किया जा सकता है, जिनके भीतर शक्ति जागरित है उनकी सहायतासे किस प्रकार शक्तिमय हुआ जा सकता है—यही विषय शक्तिपूजाका रहस्य है। शक्तिकी आवश्यकता कोई अस्वीकार नहीं करता। 'शक्तिको नहीं मानता' कहनेमें भी शक्तिका प्रयोजन है। सब देशोंके साधकगण शक्तिके आविर्भावकी चेष्टा करते रहे हैं। देशकी रक्षाके लिए शक्ति चाहिए, जीवनधारणके लिए शक्तिकी जरूरत है, ज्ञानलाभके लिए शक्तिका प्रयोजन है, भगवदनुभूति--भगवत् प्राप्ति—के लिए शक्ति एकान्तावश्यक है। भगवान बुद्ध, कबीर, नानक, शिवाजी, गोविन्द सिंह--ये सभी शक्तिके उपासक थे। जगत्में यथेष्ट प्रकाश है किन्तु अन्ध उसको नहीं देख सकता—इस प्रकाशको देखनेके लिए चाहिए शक्ति। जगत्में ज्ञानका अभाव नहीं किन्तु इस ज्ञानको उपलब्ध करनेके लिए आवश्यकता है अपने भीतरके ज्ञान-प्रदीपको जलानेकी अर्थात् अपने भीतरकी सुप्त ज्ञानशक्तिके प्रकाशकी। जगत्में प्रेमका अभाव नहीं किन्तु यह प्रेम अपनी प्रेमशक्तिके विकासके बिना उपलब्ध करनेका और कोई उपाय नहीं। भगवद्दर्शन करनेके लिए चाहिए अपने चक्षुओंमें दूरदर्शन, सूक्ष्मदर्शन, दिव्यदर्शन करनेकी शक्ति अर्थात् ज्ञानचक्षुका उन्मीलन। इसी प्रकार भगवद्-वाक्य श्रवण करनेके लिए चाहिए दूरश्रवण, सूक्ष्मश्रवण, दिव्यश्रवण शक्तिका प्रकाश। संक्षेपतः हमारी समस्त इन्द्रियोंमें निहित सुप्तशक्ति पूर्णतया प्रकाशित हुए बिना भगवद्दर्शन भगवल्लीलास्वादन नहीं किया जा सकता। गोपियोंको कृष्णदर्शन, कृष्णसेवा, कृष्ण-प्रीति-सम्पादन, कृष्ण-प्राप्तिके लिए शक्तिकी आराधना, कात्यायनी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवतीकी पूजाकी आवश्यकता हुई थी। अतएव शक्तिके विकासके लिए, भगवद्-दर्शन और भगवत्-प्राप्तिके लिए, सर्वप्रथम शक्तिपूजा एकान्तावश्यक हैं। कृष्ण-लीलाके प्रकाश, प्रचार और आस्वादनके भीतर प्रारम्भमें ही पौर्णमासी योग-माया देवीका कार्यकलाप देखा जाता है।

❀ शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥२६॥

शिवः (मंगलमय भगवान्) यदि शक्त्या युक्तः भवति (जब शक्तिसे युक्त होते हैं अर्थात् जब शक्ति उनमें प्रकटित रहती है) [तब] प्रभवितुं शक्तः (सृष्ट्यादि कार्य करनेमें समर्थ होते हैं) एवं चेत् न (और अगर ऐसा न हो अर्थात् शक्तिसे युक्त न हों) खलु स्पन्दितुम् अपि कुशलः न (तो निश्चय स्पन्दन करनेमें भी समर्थ नहीं)।

शक्तिकी अप्रकटित अवस्थामें शिव कोई भी कार्य करनेमें समर्थ नहीं। शक्तितत्त्वका विवेचन करनेमें श्रीविद्या और कालीविद्याका प्रसंग मनमें आता है। माँ स्वरूपतः एक होते हुए भी मानो द्विविध रूपमें आत्मप्रकाश करती हैं। पहले कालीरूपमें हमारे विकार दूरकर आधारको परिष्कार करती हैं और फिर श्रीरूपमें उस आधारको अपनी शक्तिसे पूर्णकर भगवदनुभूति करनेकी योग्यता दान करती हैं।

पहले बताया गया है कि यदि शक्तिकी सहायतासे चरम तत्त्व आत्मप्रकाश न करें एवं हमारे भीतर उनकी शक्तिका कुछ विकास न हो तो हम चरम सत्य-का संधान नहीं पा सकते, न हम उनका स्वरूप समझ सकते हैं, यहाँ तक कि उनके अस्तित्वमें विश्वास करने अथवा करानेमें भी समर्थ नहीं हो सकते। माँ आद्याशक्ति हमारे भीतर अपनी शक्ति संचारकर हमारे भगवानके अस्तित्वमें विश्वास करनेमें, हमारे भीतर भगवद्भाव प्रकाशितकर हमारी भगवत्प्राप्तिसे सहायभूत होती हैं। केवल माँकी कृपासे ही हम पूर्ण परिणति लाभ करनेकी, भगवद्धाममें प्रवेश करनेकी, योग्यता लाभ करते हैं। इसीलिए साधनराज्यमें सर्वतोरूपसे शक्तिपूजाका एकान्त प्रयोजन है। याद रखना चाहिए कि शक्ति और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिमानमें कोई भेद नहीं । शक्तिमान ही मानो शक्तिकी सहायतासे अपने प्रियतम जीवको अपने निकट लाकर अपने भावसे परिभावित कर देते हैं ।

शक्तिपूजामें 'सर्वतः पाणिपादं तत्' इत्यादि ध्येयपदार्थके लक्षण शक्तितत्वको समझानेके लिए ग्रहण किये गये हैं । ये सब भाव सगुण ब्रह्मके द्योतक हैं और शक्ति किस प्रकार सगुण ब्रह्मके भीतरसे कार्य करती है इसका रहस्य प्रकाश करते हैं । शक्ति और सगुण ब्रह्मकी अनेकांश अभेदरूपमें कल्पना की गई है ।

शक्ति महामाया विविध यंत्र सृष्टकर उनके द्वारा कार्यकर रहीं हैं । वे स्वयं निस्तत्त्वा होते हुए भी कार्यगम्या हैं । जिस आधारके भीतरसे वे आत्मप्रकाश करती हैं उसी आधारकी कार्यप्रणाली अवलम्बन द्वारा वे अनुभवगम्या हैं । शक्तिकी धारणा करनेके लिए अनुभव करना अत्यावश्यक है कि वे किस प्रकार हमारी इन्द्रियोंको सृष्टकर उनके भीतर अधिष्ठित रहकर (तत् सृष्टा तदेवानुप्रविशत्) इस देहयंत्रको एवं इस जगच्चक्रको सुन्दररूपसे चला रही हैं । उनका अपना कोई आकार न होते हुए भी उनके सृष्ट अनन्त आकारों द्वारा हम उनका प्रकाश, उनकी लीला, अनुभव करनेका सुयोग पाते हैं ।

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२७॥

तत् (सर्वशक्तिके आधार वे परम वस्तु) सर्वतः पाणिपादं (सर्वत्र हाथ पैर-युक्त हैं) सर्वतः अक्षि-शिरो-मुखम् (सर्वत्र चक्षु, मस्तक और मुखयुक्त हैं) सर्वतः श्रुतिमत् (सर्वत्र कर्णयुक्त हैं) लोके सर्वम् आवृत्य तिष्ठति (ब्रह्मांडके सब पदार्थोंमें व्याप्त होकर अवस्थित हैं) ।

अर्थात् वे सबकी आंखोंसे देखते हैं, सबके कानोंसे सुनते हैं, सबके मुखसे खाते हैं, बातें करते हैं, और सबके हाथ-पाँवसे काम करते हैं ।

माँ आद्याशक्ति हमारे विभिन्न तत्त्वों विभिन्न इन्द्रियोंमें अधिष्ठित हुई सब कार्य सम्पादन कर रही हैं । जगत्में जो कुछ है उन्हींका प्रकाश है ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥२८॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

[तत् = वे] सर्वेन्द्रियगुणभासं (जीवकी समस्त इन्द्रियोंके गुणके प्रकाशक हैं) (इसलिए हम इन्द्रियों गुण उनमें आरोपकर उनको इन्द्रिय-युक्त मानते हैं) सर्वेन्द्रियविवर्जितं (तो भी उनकी अपनी कोई इन्द्रिय नहीं है)। असक्तं (अनासक्त अस्पृष्ट होते हुए भी) सर्वभृत् एवं च (सबको भरण करते हैं)। निर्गुणं (स्वयं गुणरहित [गुणातीत] होते हुए भी) गुणभोक्तृ (समस्त गुणोंके भोक्तारूपमें कल्पित है) मालूम होता है कि जैसे वे ही सब गुण भोग रहे हैं]।

अर्थात् शक्ति अपने सृष्ट यंत्रों द्वारा कार्य करते हुए भी स्वयं यंत्रोंसे स्वतंत्र है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥२९॥

भूतानाम् (सर्वभूतके) बहिः अन्तः च (बाहर एवं भीतर) [वे अवस्थित हैं]। अचरम् चरं एव च (अन्तर्लीन अवस्थामें वे निष्क्रिय होनेके कारण अचर हैं एवं सृष्टि आदि व्यापारके समय सक्रिय होनेके कारण चर हैं)। सूक्ष्मत्वात् (सूक्ष्म अर्थात् अतीन्द्रिय होनेके कारण) तद् अविज्ञेयं (विशेषरूपमें उनका ज्ञान सम्भवपर नहीं) तत् दूरस्थं अन्तिके च (वे दूर भी हैं और निकट भी—अर्थात् सर्वव्यापी हैं)।

हम शक्तिको सूक्ष्मतत्त्व अर्थात् मन-बुद्धिके अतीत होनेके कारण विशेरूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥३०॥

तत् च (वे) अविभक्तं (अभिन्न, एक विभागहीन) [सदपि = होते हुए भी] भूतेषु (प्राणियोंमें) विभक्तं इव च स्थितम् (भिन्न, नाना विभागयुक्तके भाँति अवस्थित हैं।) तत् भूतभर्तृ च (वे भूतोंके पालनकर्ता), ग्रसिष्णु (प्रलयकालमें ग्रहणशील—जिसमें सब लयको प्राप्त होते हैं), प्रभविष्णु च (और उत्पत्तिके कारण भी हैं) ज्ञेयं (वे जानने योग्य हैं)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् मूला शक्ति एक होते हुए भी अपने विविध आकारों द्वारा किस प्रकार कार्यभेदसे भिन्न रूपोंमें प्रतीयमान होती हैं, यहाँ इसका एक आभास दिया गया है।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥३१॥

तत् (वे) ज्योतिषाम् अपि ज्योतिः (सूर्यादि ज्योतिष्कमंडलकी भी ज्योतिः हैं अर्थात् उन्हींकी ज्योतिसे ज्योतिष्कमंडल प्रकाशमान है) तमसः (अज्ञानरूप अन्धकारसे) परम् उच्यते (अतीत कहे जाते हैं)। [अर्थात् उन्हींके प्रकाशसे सब प्रकाशित हैं। उनका तत्त्व वाक्य-मनके अगोचर है। उनको ज्ञान-स्वरूप जो कहा गया है वह यह बतानेके लिए कि वे अज्ञान-स्वरूप नहीं हैं]। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं (वे नित्य ज्ञानस्वरूप हैं, वे ज्ञेय भी हैं और साधकके हृदयमें चिद्रूपमें प्रकाशमान होने योग्य हैं) सर्वस्य हृदि विष्ठितम् (सबके हृदयमें विशुद्ध बुद्धि रूपमें वर्त्तमान हैं)।

हमारी ज्ञानेन्द्रियोंकी ज्ञानशक्ति, कर्मेन्द्रियों की कर्मशक्ति, सबके मूलमें यही चैतन्यशक्ति है—यह तत्त्व यहाँ प्रकट किया गया है। यही चैतन्यरूपी शक्ति आँखों-की आँख, कानोंकी कान, मनकी मन, प्राणकी प्राण, आत्माकी आत्मा है। यही तत्त्व समझानेके लिए, केनोपनिषदानुसार, देवताओंके सम्मुख हैमवती उमा आविर्भूता हुई थीं।

❀ ॐ श्रोतस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचम्।
स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः ॥ ३२ ॥

यत् श्रोत्रस्य श्रोत्रं (जो श्रवणके श्रवण) मनसः मनः (मनके मन) वाचः ह वाचम् (वाक्यके भी वाक्य) [हैं] सः. उ (वे ही फिर) प्राणस्य प्राणः (प्राणके प्राण) चक्षुषः चक्षुः (चक्षुके चक्षु) [हैं]।

अर्थात् एक ही भगवत् शक्ति हमारी विभिन्न इन्द्रियों द्वारा विभिन्न शक्ति-रूपमें अनुभूत होती हैं। हमारे विषय-ग्रहण, ध्यान-धारणादि उन्हींके विभिन्न प्रकाश हैं। वे ही सबकी मूलाधार हैं। इन्द्रियातीत अवस्थामें जाय बिना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनका प्रकृत तत्त्व अनुभवमें नहीं आता। एक ही चिन्मयी महाशक्ति द्वारा हमारी समस्त अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रियके कार्य निर्वाह हो रहे हैं। चक्षु देखते हैं किन्तु यह शक्ति वस्तुतः चक्षुकी नहीं है। चक्षुकी दर्शन-क्रिया उन्हींका खेल है। तद्रूप हमारे श्रोत्रादि इन्द्रियोंकी श्रवणादि शक्ति उन्हीं महाशक्तिका विभिन्न प्रकाश है। अभिमानवश जीव पृथक्‌रूपमें धारण करता है किन्तु यह असत्य है। वस्तुतः वे ही देखती हैं, वे ही सुनती हैं, वे ही सब कुछ करती हैं। उनकी सृष्टि की हुई हमारी आँखोंके भीतर उनका आत्मप्रकाश हमारा दर्शन है, उनके सृष्टि किए हुए हमारे कानोंके भीतर उनका आत्मप्रकाश हमारा श्रवण है, हमारी बुद्धिके भीतर उनका आत्मप्रकाश हमारा ज्ञान है, हमारे चित्तके भीतर उनका आत्मप्रकाश हमारा आनन्द है। हम अहंकारवश उनको भूलकर, अपनी इन्द्रियोंके भीतर उनके प्रकाशको, उनके कार्यकलापको, अपना कर्त्तृत्व कहकर प्रकट करते हैं। तुलनीय—'प्रकृतेः क्रियमाणानि—' गी० ३–२७)।

अब साधक अनुभव करने लगता है कि शक्ति एक ऐसी वस्तु है जिसके बिना उसकी कोई भी इन्द्रिय काम नहीं कर सकती, जिसके बिना उसके माँ, बाप, भाई, बन्धु एवं जगत्‌के किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं रह सकता। यहाँ तक कि वह भी नहीं रह सकता। यह शक्तितत्व ही हमारी सत्ता, चैतन्य और आनन्दका मूल प्रस्रवण है। दुःखका विषय है कि जो हमारी सर्वस्व है और जिनके अभावसे सब शवमें (शून्यमें) परिणत हो जाता है उनके अस्तित्वको हम अस्वीकार करनेमें संकोच नहीं करते।

❀ ॐ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ॥ ३३॥

देवस्य सवितुः (सवितृ देव की) वरेण्यं (वरणीय, सर्वोत्तम) तत् भर्गः (उस परमज्योतिः का) धीमहि (हम ध्यान करते हैं) यः (जो) नः धियः (हमारी बुद्धि [व कर्म] वृत्तियोंको) प्रचोदयात् (प्रकृष्ट कार्यमें लगाती हैं—मानों वे ही करती हैं)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे भर्ग देवी, (माँ आद्याशक्ति भगवती), तुम मेरे सब तत्त्वोंमें प्रवेश-कर, मेरे सब तत्त्वोंको अपनी शक्तिसे भरपूरकर, अपने प्रियकार्य साधनके सम्पूर्णतः उपयुक्त कर लो। प्राचीन ऋषिगण इन्हीं गायत्रीरूपा भर्गशक्ति को अपने सब तत्त्वोंमें अवतरण कराके, सब तत्त्वोंको शक्तिमय करके, सब तत्त्वों द्वारा भगवानकी लीला आस्वाद करनेका सुयोग पाते थे—भगवल्लीलामें सहायक होते थे। श्री अरविन्द इस शक्तिके अभिन्न अंशस्वरूप अतिमानस (Super mind) के अवतरणको 'Descent of the Divine' नाम-से प्रचार कर गये हैं। यह अवतरण ही उनके समस्त साधन-भजन का मूल-मंत्र था।

❀ ॐ बलमसि बलं मयि धेहि। ॐ वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
ॐ सहोऽसि सहो मयि धेहि। ॐ ज्ञानमसि ज्ञानं मयि धेहि।
ॐ आनन्दोऽसि आनन्दं मयि धेहि। ॐ आविरावीर्म एधि।
ॐ आविरावीर्म एधि। ॐ आविरावीर्म एधि ॥३४॥

बलम् असि (तुम बलस्वरूप हो) मयि बलं धेहि (मुझको बल दो), वीर्यम् असि (तुम वीर्यस्वरूप हो) वीर्यं मयि धेहि (मुझे वीर्य दान करो), सहः असि (तुम सहनशक्ति हो) सहः मयि धेहि (मुझको सहनशक्ति दो), ज्ञानम् असि (तुम ज्ञानस्वरूप हो) मयि ज्ञानं धेहि (मुझे ज्ञान दो) आनन्दः असि (तुम आनन्दस्वरूप हो) मयि आनन्दं धेहि (मुझको आनन्द दो) [अर्थात् मुझको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तिसे भूषित करो]। आविः (हे निर्गुण ब्रह्म), आवीः (हे शक्तियुक्त ब्रह्म, तुम सगुणरूप में) मे (मेरे भीतर) एधि (प्रकाशित हो)।

भगवानकी ज्योति सर्वत्र वर्तमान है। किन्तु जब तक मैं दृष्टिशक्ति लाभ न करूँ तब तक मैं उस ज्योतिको ग्रहण नहीं कर सकता। हे माँ भगवती, तुम मेरे भीतर ज्योतिरूप, ज्ञानरूप, प्रेमरूपमें प्रकाशित होकर अपने सर्वत्र प्रसारित ज्ञान, ज्योति, और प्रेमको उपलब्ध करनेकी योग्यता प्रदान करो।

"बल ही स्वाभाविक शक्ति है। माँकी कृपासे यदि उस बलका थोड़ा सा अंश हमें प्राप्त हो तो हम अपनी लक्ष्यप्राप्तिमें अग्रसर हो सकेंगे। कारण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'। अखंड स्मृति लाभ करनेके सामर्थ्यको 'वीर्य' कहते हैं। वीर्य भिन्न स्मृतिके रहनेका स्थान नहीं है। माँकी कृपासे उस वीर्यका किंचिदंश हममें आहित हो जाय तो हम उनके स्वरूपकी ध्रुवानुस्मृतिमें समर्थ होंगे। सहः (सह्यगुण) हमारे भीतर प्रकाशित हो जाय तो हम देवी वसुन्धराकी भाँति अम्लान मुखसे सब सहनकर सबको क्षमा कर सकेंगे। हम माँको समस्त शक्तिका मूलाधार जानकर, 'हम केवल निमित्तमात्र हैं' यह तत्त्व उपलब्धकर उदासीन द्रष्टारूपमें माँकी लीलादर्शन करनेकी योग्यता लाभ करते हैं। तब माँ हमारे सब तत्त्वोंमें प्रकाशित होकर, सब तत्त्वोंको अपनी शक्तिसे शक्तिमयकर, हमें पुरुषोत्तमकी पूजा करनेकी योग्यता दान करती हैं।"

❀ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३५॥
❀ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३६॥
❀ या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३७॥
❀ या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्मै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३८॥
❀ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३९॥

या देवी (जो देवी) सर्वभूतेषु (सब भूतोंमें) मातृ-शक्ति-बुद्धि-कान्ति-शान्ति रूपेण संस्थिता (मातृ-शक्ति-बुद्धि-कान्ति-शक्तिरूपमें विराजमान हैं) तस्यै नमः (उनको नमस्कार) तस्यै नमः (उनको नमस्कार) तस्यै नमः नमः (उनको बारंबार नमस्कार करता हूँ)।

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥४०॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वमंगलमांगल्ये (हे सर्वमंगल तथा मंगलकी उपाय-स्वरूपिणी) शिवे (हे कल्याणदात्री) सर्वार्थसाधिके (हे सर्वार्थसाधिके) शरण्ये (हे रक्षक) त्र्यम्बके (हे त्रिनयने) गौरि, नारायणि (हे गौरी, हे नारायणी) ते नमः अस्तु (तुमको नमस्कार हो)।

अर्थात् जो स्वयं मंगलमयी हैं, सबको मंगलके पथपर ले जाती हैं, जो सबकी यथार्थ वासना पूर्ण करती हैं, जो जीवका आश्रय हैं, जो भूत-भविष्य-वर्तमान सब जानती हैं, जो विशुद्ध सत्त्वगुण द्वारा अनुभूता हैं, जो जीवकी चरम गति हैं—उन महामाया भगवती देवीको नमस्कार।

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ४१॥

सर्वस्वरूपे (हे विश्वरूप) सर्वेशे (हे सर्वेश्वरी) सर्वशक्तिसमन्विते (हे सर्वशक्तिसम्पन्ने) देवि (हे देवी) भयेभ्यः (सर्वप्रकारके भयसे) नः त्राहि (हमारी रक्षा करो) दुर्गे देवि (हे दुर्गे देवी) ते नमः अस्तु (तुमको नमस्कार हो)।

अर्थात् विश्वरूपा, विश्वेश्वरी, सर्वशक्तिमयी, सर्वविपदसे त्राणकारिणी दुर्गा भगवतीको हम नमस्कार करते हैं।

सर्वरूपमयी देवि सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम्॥ ४२॥

देवी सर्वरूपमयी (देवी लीलामयी विश्वरूपधारिणी हैं) सर्वं जगत् (यह समस्त जगत्) देवीमयं (देवी द्वारा परिव्याप्त है) अतः (इसलिए) अहं (मैं) तां (उसी) विश्वरूपां (विश्वरूपधारिणी) परमेश्वरीम् (परमेश्वरी देवीको) नमामि (नमस्कार करता हूँ)।

अर्थात् मेरी माँ भगवती लीलाके निमित्त विश्वरूपमें परिणत अथवा विवर्तित होकर जीवजगत् रूपमें मेरे सामने उपस्थित हैं। वे ही समस्त जगज्जीव की विधाता, चालक एवं अन्तार्यामी हैं। मैं उन्हींको नमस्कार करता हूँ।

हमारी समस्त शक्ति माँका आत्मप्रकाश है। अपनी शक्तिके पृथक् अस्तित्व-
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

को भूलकर, मांके निकट पूर्ण आत्मनिवेदन कर, हमें अपने पृथक् अस्तित्वको लोप कर देना होगा। माँ शरणागत सन्तानके समस्त अभाव दूरकर, उसके भीतर अपनी शक्ति संचारकर अर्थात् सन्तानको सम्पूर्णतः मातृमयकर, उसको पुरुषोत्तमकी पूजा करनेकी योग्यता दान करती हैं—साधक यहाँ यह तत्त्व आस्वाद करनेमें समर्थ होता है।

शक्तितत्त्व परमात्मभावका, सगुण ब्रह्मका, द्योतक है। परमात्मा किस प्रकार शून्यतत्व भेदकर जीवकी पूर्णता लाभमें सहायक होते हैं, वे किस प्रकार सब प्रयोजन सिद्धकर जीवको पूर्णता दान करनेमें व्यस्त हैं—शक्तितत्व द्वारा, मातृभाव द्वारा, साधकको यह रहस्य आस्वाद करनेका सुयोग मिलता है।

❀ द्रष्टुमिच्छामि ते रूपं देहि मे दिव्यदर्शनम्।
कर्त्तुमिच्छामि ते प्रियं भूतानां हितसाधनम् ॥ ४३ ॥

ते रूपं (तुम्हारा रूप) द्रष्टुम् इच्छामि (मैं देखनेकी इच्छा करता हूँ) मे दिव्य दर्शनं देहि (मुझे दिव्यदर्शन प्रदान करो)। ते पियं (तुम्हारा प्रियकार्य) भूतानम् हितसाधनं (जोवगणका हितसाधन) कर्त्तुम् इच्छामि (करनेकी इच्छा करता हूँ)।

साधक इस अवस्थामें पहुँचकर माँका दिव्यरूप दर्शन करनेके लिए व्यस्त हो जाता है किन्तु इन चर्म नेत्रोंसे माँका दिव्य रूप दर्शन करना असम्भव है। अर्जुन भगवत्कृपासे दिव्यदृष्टि लाभकरके भी भगवज्ज्योति सहन नहीं कर सका था। किन्तु माँ किसी सन्तानका अनिष्ट सहन नहीं कर सकतीं। जब तक किसीसे किसी जीवके अनिष्ट होनेकी सम्भावना है तब तक माँ उसको भगवद्धाममें प्रवेश नहीं करने देंगी—अपनी शक्तिसे शक्तिमान नहीं करेंगी। माँका यह व्रत उपलब्धकर साधक माँकी सन्तानका सर्वांगीण हितसाधन करनेके लिए दृढ़-प्रतिज्ञ होता है और उनसे शक्ति प्रदान करनेकी प्रार्थना करता है। माँका प्रकृत-तत्व किसीके लिए भी समझना सम्भवपर नहीं। उनका कार्य देखकर उनकी श्रेष्ठ सन्तानकी सहायतासे उनको उपलब्ध करना होगा। माँ तब कहती हैं, 'मैं अपने कार्यकलाप द्वारा पुरुषोत्तमको प्रकाशित करनेकी चेष्टा कर रही हूँ;

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये पुरुषोत्तम ही सर्वदेश और सर्वकालके (बुद्ध, शंकर, ईसा, इत्यादि नामके) आदर्श पूजित हैं। इन पुरुषोत्तमको कैसे अनुभव किया जाता है, कैसे अवतीर्ण किया जाता है, गीतामें श्रीकृष्ण अपने मुखसे इसका आभास दे गये हैं। यदि तुम लोग दुष्टके दमन और शिष्टके पालन द्वारा धर्मराज्य स्थापित करनेमें दृढ़व्रती हो पुरुषोत्तम आविर्भूत होकर तुम्हारी पूर्णता लाभमें, भगवत् प्राप्तिमें, सहायक होंगे'।

ॐ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय करिष्ये वचनं तव ॥४४॥

साधूनां परित्राणाय (साधु-सज्जनोंके परित्राणके लिए) दुष्कृतां विनाशाय च (एवं दुराचारियोंके ध्वंसके लिए अर्थात् उनकी दुष्कृति दूर करनेके लिए) धर्मसंस्थापनार्थाय (धर्मको दृढ़पूर्वक प्रतिष्ठित करनेके लिए) तव वचनं (तुम्हारी आज्ञा, भगवत्-निर्देश) करिष्ये (मैं पालन करूँगा)।

माँकी कृपासे साधकके चित्तमें अब पुरुषोत्तमतत्त्वका स्फुकरण आरम्भ हुआ है। अब वह सोचता है कि पुरुषोत्तम कब, कहाँ और किसलिए अवतीर्ण होते हैं। उनका आविर्भाव, साधक भक्तके हृदयमें अथवा साधारण लोकदृष्टिसे स्थूलरूपमें, तभी होता है जब असुरोंका निर्यातन और साधुओंका कष्ट उनके हृदयमें आघात पहुँचाता है और वे प्रकृत धर्म-संस्थापनके लिए इच्छुक हो जाते हैं। उस समय साधकके हृदयमें उपयुक्त भूमि तैयार करनेकी तीव्र आकांक्षा जाग उठती है और वह भगवानके प्रिय कार्य साधन द्वारा उनको आविर्भूत करनेके लिए कृतसंकल्प होता है। अद्वैताचार्यके आवाहनसे महाप्रभुका आगमन तत्त्व यहाँ आस्वादनीय है। साधक जब दुष्टका दमन और शिष्टका पालनकर भगवानका धर्मराज्य स्थापन करनेमें सहायक होनेके लिए दृढ़प्रतिज्ञ होता है तब उसके भीतर पुरुषोत्तमतत्त्वका स्फुरण आरम्भ होता है।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारणकाणम् ॥४५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्णः (सर्वचित्ताकर्षक पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण) सच्चिदानन्दविग्रहः (सत्, चित् और आनन्दकी घनीभूत मूर्ति हैं) परमः ईश्वरः (वे परम ईश्वर हैं) अनादिः आदिः गोविन्दः (वे अनादि परन्तु आदि हैं अर्थात् स्वरूपतः अनादि होते हुए भी तटस्थरूपसे जीव-जगत्के आदि हैं, वे गोविन्द हैं अर्थात् इन्द्रियातीत होते हुए भी विशुद्ध इन्द्रियों द्वारा अनुभववेद्य हैं) सर्वकारणकारणम् (वे सब कारणोंके भी कारण हैं अर्थात् स्वयं कूटस्थ होते हुए भी सबकी उत्पत्तिके हेतु हैं)।

याद रखना होगा कि यहाँ 'कृष्ण' शब्दसे तात्विक सर्वचित्ताकर्षक पुरुषोत्तमको ही विशेषतः लक्ष्य किया गया है—जो अन्य देश व अन्य समाजके ईसा, आदिरूप में ग्रहणयोग्य हैं। 'कृष्ण' शब्द ऐतिहासिक कृष्ण में पर्यवसित नहीं किया गया है

अनर्गलस्वात्ममये परेशे
तिष्ठन्ति यस्मिन् विभुशक्तयस्ताः।
तं शक्तिमन्तप्रणामि देवं
श्रीकृष्णसंज्ञं जगदेकसारम् ॥४६॥

यस्मिन् (जिस) अनर्गलस्वात्ममये (अपने अबाधित आत्मास्वरूपमें प्रकाशमान) परेशे (परमेश्वरमें) ताः विभुशक्तयः (ये सब प्रसिद्ध परमेश्वरोचित शक्तियां अर्थात् सर्वज्ञत्व, सर्वकर्त्तृत्व, विभुत्व, नित्यत्व, आप्तकामत्व, इत्यादि) तिष्ठन्ति (स्थिररूपमें विद्यमान हैं) अहं [मैं] तं (उसी) जगदेकसारं (समग्र जगतके एकमात्र सारपदार्थस्वरूप) श्रीकृष्णसंज्ञं (श्रीकृष्णनामधेय) शक्तिमन्तं (पूर्वोक्त सर्वशक्तिसम्पन्न) देवम् (चिदानन्दमय परम पुरुषको) प्रणमामि (प्रणाम करता हूँ अर्थात् उनके श्रीचरणोंमें आत्मनिवेदन करता हूँ)।

अर्थात् परम-पुरुष परमेश्वर हमारे सबके अपने-अपने आत्माके अबाधित-स्वरूप हैं। वे किसी भी अंशमें हमारे स्वरूपसे भिन्न अथवा पृथक् रूपमें कल्पित नहीं हैं। वे सर्वशक्तिनिधान हैं। उनको आत्मसमर्पण करनेका अर्थ है अपनेको परमात्माके निकट आत्मसमर्पण करना अर्थात् अहं-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारात्मक परिच्छिन्न 'मैं' को देश कालादि द्वारा अपरिच्छिन्न शुद्ध अखण्ड आत्माके निकट विसर्जन करना। (यहाँ गोचारणलीला के सम्बन्धमें एक बंगला संगीत है)।

गोचारणलीला गौड़ीय वैष्णवोंकी साधना का एक प्रधान अंग है। गोचारण के सम्बन्धमें गोपतापनीय उपनिषद में कहा है 'गावः इन्द्रियाणि' अर्थात् इन्द्रियाँ गौ हैं। कृष्ण भीतर बैठे हुए किस प्रकार हमारी इन्द्रियोंको विषय राज्यमें चरा रहे हैं—कृष्णको अपनी इन्द्रियोंका भार सौंप देनेसे हमारा इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण किस प्रकार पूजामें परिणत हो सकता है—कृष्ण भीतर बैठे हुए किसप्रकार हमको चलानेकी चेष्टा कर रहे हैं, गोचारलीला द्वारा यह तत्त्व आस्वाद करनेका सुयोग मिलता है। इस स्थलके संगीतका प्रकृत भाव यह है कि 'हे भगवान्, तुम हमारे भीतर हमारी देह के मालिक रूपमें अधिष्ठित होकर हमको चलाओ। हम तुम्हारे ऊपर सब भार छोड़कर तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हारे प्रियकार्य साधनमें समर्थ हों'।

सन्ध्या समय उपर्युक्त भावसे परिभावित होकर साधक मानो देखता है कि पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण वंशी बजाते हुए उसके निकट आ रहे हैं। कृष्णभावसे परिभावित चित्तमें तब पुरुषोत्तमका स्फुरण और भी स्पष्टतः होने लगता है।

पुरुषोत्तमतत्त्व

"महाशक्तिकी उपासनाके फलस्वरूप पुरुषोत्तम का आदर्श हृदयमें जागरित होता है। महाशक्ति विश्वजननी हैं, पुरुषकी जननी एवं पुरुषोत्तम की भी जननी हैं। उनके अनुग्रहसे उनसे आविर्भूत परम पुरुषका भाव हृदय में प्रतिष्ठित होता है। यह परम पुरुष ही उत्तम पुरुष, परमेश्वर, 'अनादिरादि गोविन्दः' हैं। साधारण जीव इन्हींका सनातन अंश है। वरेण्य भर्गका ध्यान करते-करते हृदयाकाशमें, अन्तरके अन्तःपुरमें अन्तर्यामी रूपमें, उत्तम पुरुष प्रस्फुटित होते हैं। तब समझमें आता है कि माँकी पूजा सार्थक हुई। ये उत्तम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
पुरुष ही जीवके जीवनके एवं सब कर्मोंके एकमात्र लक्ष्य हैं। ये दिव्यरूप हैं, दिव्यविभूतिसम्पन्न हैं; सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं अनन्त करुणामय हैं।

जगत्की विशृंखला दूर करना, साधुसज्जनोंकी रक्षा करना, दुष्कृतकारीको दमन करना एवं धर्मराज्य स्थापन करना इन्हींका काम है। जीवको इनका अंश होनेके कारण इन सब कार्योंका स्वभावसिद्ध अधिकार है। इसलिए इस अवस्थामें जीवका प्रथम कर्त्तव्य है पुरुषोत्तमका दिव्य विश्वमंगलमय रूप दर्शनकर उन्हींके आचरित धर्मसंस्थापन कार्यमें प्रवृत्त होना। जीवका पृथक् कुछ भी कर्त्तव्य नहीं। जो सब जीवोंके नायक हैं उनके कर्त्तव्यको ही जीवको अपना कर्त्तव्य समझकर ग्रहण करना योग्य है। इसलिए उसका एकमात्र कर्त्तव्य कार्य है परम पुरुषका आदर्श अनुसरणकर, उनकी आज्ञाका पालनकर, सर्वलोकके हित व सुखसाधनमें नियुक्त होना।

पुरुषोत्तमके चरित्रका अनुकरण एवं उनके आदेश-पालनके फलस्वरूपवे प्रसन्न होकर जीवकी शुद्ध दृष्टिके सम्मुख अपने स्वरूपमें प्रकाशित होते हैं। यद्यपि महामायाकी साधनाके फलस्वरूप उन्हींकी कृपासे पुरुषोत्तमका हृदयमें आविर्भाव होता है किन्तु जब तक अपने कर्म द्वारा पुरुषोत्तमको प्रस्फुटित न किया जाय तब तक उनका पूर्णस्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता। अब उनके पूर्ण आविर्भावका अवसर आया है। इसलिए उनका आदरपूर्वक श्रद्धाभक्ति सहित आवाहन करना होगा।"

परम करुणामय पुरुषोत्तम जीवको शिवमें परिणत करनेके लिए अनेक समय व्यक्तरूपमें प्रकट होते हैं। उस समय उनके मनुष्यरूपमें, प्रतीयमान देहमें, असीमके सब तत्त्व और सब रहस्य वर्तमान रहते हैं। वे मानो ससीम देहमें असीम की जीवन्तमूर्ति (Infinite Individuality) हैं। वे अपने उस ससीम मानवीय देहमें असीमके रूप, गुण और क्रिया दिखानेमें समर्थ हैं। अर्जुन आदि भक्तोंने कृष्णदेहमें—यहाँ तक कि कृष्णके प्रत्येक परमाणुमें—विश्वरूप दर्शन किया था। वे अखंड अद्वय आत्मतत्वमें सर्वदा प्रतिष्ठित रहते हैं, सब जीव उन्हींके आत्माको विभूति है। वे सर्वभूतके आत्मा हैं; इसीलिए सब
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

भूतोंके हितमें रत हैं। सबका स्वार्थ उनका स्वार्थ है, सबका ऐश्वर्य उनका ऐश्वर्य है, सबका ज्ञान उनका ज्ञान है, सबका आनन्द उनका आनन्द है।

यही व्यक्त विग्रह वेद-उपनिषदादि ग्रन्थोंके चरमतत्त्वका पूर्ण प्रकाश अर्थात् जीवन्त विग्रहस्वरूप है। सब तत्त्व उनकी देहमें पूर्ण विकसित हैं। उनमें समस्त वृत्तियोंकी पूर्ण परिणति एवं अपूर्व समन्वय देखनेमें आता है। वे सत्ता, चैतन्य और आनन्दकी पूर्ण प्रकटित मूर्ति हैं। उनके भीतर भाव और भवका (Idea और Reality का) भेद दूरीकृत होकर दोनों पूर्ण परिणति एवं अपूर्व समन्वयको प्राप्त हुए हैं। वे सब शास्त्रोंके जीवन्त प्रतीक हैं। इन्हीं पुरुषोत्तमके भीतर शक्तिमान और शक्तितत्वका पूर्ण विकास तथा अपूर्व मिलन आस्वाद करनेका सुयोग मिलता है। वे मानो शिव-शक्ति, कृष्ण-राधा, राम-सीता-की युगल मूर्ति हैं। भीतर शिव भावमें, शान्त अद्वैत भावमें, अवस्थित हैं और बाहर शक्तिके कार्य द्वारा दुष्टका दमन और शिष्टका पालन—धर्मराज्यका संस्थापन—करनेमें सर्वदा व्रती हैं। वे भीतर विश्वातीत बाहर विश्वमय हैं; भीतर निर्गुण बाहर सगुण हैं; भीतर संन्यासी बाहर आदर्श गृही हैं। वे एका-धारमें अनासक्त, अनुरागी एवं संसारी संसारत्यागी हैं। वे अपने आचरण द्वारा जीवको धर्म सिखानेके लिए आते हैं। इन्हींके सम्बन्धमें कहा गया है "बहिः कृत्रिम-संरम्भः हृदि संरम्भ-वर्जितः"। उनमें परस्पर विरुद्ध भावोंका अपूर्व समन्वय है—"तत्र सर्वेषां विरुद्ध-भावानाम् अपूर्व-समन्वयः"। वे क्षर-अक्षर, प्रकृति-पुरुष, सगुण-निर्गुण भावके संयोजक, चालक एवं नियामक होते हुए भी उनके ऊपर अवस्थित हैं। वे सगुण-निर्गुण दोनोंको अधिकारमें कर, दोनोंको धारणकर, दोनोंको सम्भवपर कर, दोनोंके ऊपर उदासीन भावमें अवस्थित हैं। वे स्वयं कर्म कर, सबको कर्ममें प्रवृत्ति दानकर, स्वयं स्वधर्म-पालनके चरम आदर्शमें वर्तमान रहते हुए भी कर्ममें अलिप्त, अनासक्त, फलाकांक्षावर्जित एवं कर्मातीत हैं। प्राचीनकालमें जब कर्मकांड और ज्ञानकांडके विवादने भारतमें तीव्र रूप धारण किया था तब उन्होंने श्रीकृष्ण रूपमें आविर्भूत होकर कर्म और ज्ञानका प्रकृत स्वरूप दर्शन कराके, दोनोंको पूर्णता दानकर, भक्ति द्वारा दोनोंके भीतरका योग साधनकर, दोनोंके भीतर अपूर्व समन्वय स्थापनकर, भगवानका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सच्चिदानन्द नाम सार्थक किया था। उन्होंने दिखा दिया था कि आसक्ति-फलाकांक्षा वर्जित कर्म ही मुक्तिका कारण है। वे युद्ध-क्षेत्रमें सारथी होकर भी अस्त्र धारणमें विरत थे। जीव-जगत्में अनुप्रविष्ट रहते हुए भी वे दोनोंके अतीत, अच्युत हैं। ये जीव भी नहीं हैं, जगत् भी नहीं हैं तो भी जीव-जगत् इनको छोड़कर नहीं रह सकता। ये कर्त्ता और कर्म दोनोंको धारणकर, दोनोंके भीतर वर्तमान रहते हुए भी, दोनोंके अतीत हैं। ये निर्गुण होकर भी गुणभोक्ता हैं, भूतस्थ न होते हुए भी भूतभावक हैं। ज्ञानीपुरुष इनके निर्विशेष शान्त भावमें विभोर हैं; कर्मीगण इनके नियामक, चालक, अन्तर्यामी भाव द्वारा इनकी इच्छा पूरण करनेमें नियुक्त हैं; प्रेमिका भक्त इनके सौन्दर्य-माधुर्य-रसमें निमज्जित हुए अपनेको भूलकर इनकी प्रीति सम्पादन करनेमें तत्पर है। उनकी सब इन्द्रियाँ, सब वृत्तियाँ, पूर्ण परिणत हैं तो भी इनका सब कुछ अप्राकृत है। इनमें क्षरका कर्म और अक्षर (ज्ञान) का फलत्याग दोनों ही वर्तमान हैं तो भी ये स्वयं क्षर-अक्षरके ऊपर पुरुषोत्तमरूपमें वर्तमान हैं। मदन-दाहनके पश्चात् ये मदन-मोहन रूपमें सर्वचित्ताकर्षक हैं। इनकी स्थूल देह भी अप्राकृत है। ये सब तत्त्वोंमें अधिष्ठित रहते हुए भी, सब तत्त्वोंके अन्तर्यामी चालक होते हुए भी, सब तत्वोंके ऊपर अपने निरंजन स्वरूपमें वर्तमान हैं। इन्हींके भीतर 'होना और पाना', 'आश्रय और विषय' तत्वकी पूर्ण सार्थकता देखी जाती है। इनके रूप-गुण द्वारा आकृष्ट होकर सब इनकी इच्छा पूरण करनेमें व्रती होनेको बाध्य हैं। यह बाह्यतः साधारण मनुष्यके समान बन्धु भावमें रहते हुए, साधारण मनुष्यके समान सब कार्य करते हुए, अपने आश्रित जीवोंको भगवद्धाम ले जानेमें समर्थ और तत्पर हैं। ये एकाधारमें मनुष्य एवं अति-मनुष्य हैं। मनुष्य भावमें सर्वचित्ताकर्षक असमोर्ध्व-लावण्य-सार हैं; देव भावमें गूढ़ भगवान हैं। मनुष्य भावमें जीव इनके निकट जाकर अनिच्छित होते हुए भी देवभाव लाभ करता है। इनके स्पर्शसे लोहा मानो सोना हो जाता है। बुद्धादि पुरुषोत्तमके—सब अवतारोंके—भीतर ही देश-कालोचित इस प्रकारके जीवहितकर सर्वचित्ताकर्षक कार्यका परिचय मिलता है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह नहीं समझना चाहिए कि पुरुषोत्तमकी शक्तिकी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्तान कहकर छोटा किया गया है। शक्तिकी सहायतासे जिनकी अनुभूति होती है, शक्ति द्वारा जो आत्मप्रकाश करते हैं, वे ही पुरुषोत्तम हैं। उनका अप्रकाश-अंश निर्गुण तत्व है और प्रकाशांश सगुण रहस्य है। उनका यथार्थ रूप वाक्य-मनके अगोचर है। चूंकि वे शक्ति द्वारा प्रकाशित होते हैं इसलिए हम उनको शक्तिकी सर्वश्रेष्ठ सन्तान (तन् = विस्तार) रूपमें कल्पना करते हैं। शक्तिके आश्रय बिना—शक्तिका पूर्ण विकास हुए बिना—पुरुषोत्तम तत्त्व अनधिगम्य है। इसलिए पुरुषोत्तमकी पूजाके पूर्व शक्तिपूजा इतनी प्रयोजनीय है। लक्ष्य है कृष्ण-प्राप्ति, प्राप्तिका उपाय है कात्यायनीकी कृपा-लाभ, सहायता-प्राप्ति का उपाय है अवधारण। 'साधन' शक्ति द्वारा शक्तिकी सहायतासे किया जाता है और 'भजन' कृष्ण-प्राप्तिके पश्चात् कृष्णकी तृप्तिके लिए होता है।

याद रखना होगा कि पुरुषोत्तम केवल कृष्णमें सीमाबद्ध नहीं हैं; ये बौद्धोंके बुद्ध, ईसाइयोंके ईसा, शैवोंके शिव, इत्यादि हैं। जिस अर्थमें ईसाको Son of God कहा गया है, ठीक उसी अर्थमें पुरुषोत्तम शक्तिकी सन्तान हैं। यहाँ God = पिता नोऽसि (उपनिषद्), माता स्वधा (स्वधया क्लिप्तं)। कबीरने कहा है—'निर्गुण है पिता हमारा और सगुण महतारी'। भोलानाथ सार वस्तु होते हुए भी हमारे लिए मृत्कल्प हैं, उनका होना न होना समान है। हम उनकी कृपा लाभ करते हैं माँकी सहायतासे, जो सन्तान और पिताका मिलन करानेमें व्यस्त हैं। इसीसे हम इतने मातृगत, मातृसर्वस्व हैं। "माँ यदि सन्ताने मारे छेले कांदे माँ माँ बले। छेड़े दिलेओ गला धरे छाड़े ना माँ जतो बके।"* माँकी समवायिनी शक्ति शिवके तृप्तिविधानमें व्यस्त है और परिग्रहा शक्ति सन्तानके पालन और रक्षणमें—जीवको शिवमें परिणत करनेमें—सर्वदा व्यस्त है। लक्ष्य पिता (विषयतत्व) होनेपर भी माँ (आश्रयतत्व) ही आश्रयनीया हैं।

---

*भावार्थ—माँ जब बच्चेको मारती है तो बच्चा माँ-माँ ही चिल्लाता है। माँ चाहे जितना डाँटे बच्चा माँका पीछा नहीं छोड़ता।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधारणतः दो विषय हमारे अनुभवमें आते हैं— (१) तत्त्व (Idea) और (२) इतिहासादि रूपमें उसका बहिःप्रकाश (Reality)। ऋषियोंने समाहित अवस्थामें चरम तत्त्वको जिस प्रकार उपलब्ध किया, जीव-जगत्के भीतर ऐतिहासिक भावमें उसका अनेकांश बहिःस्फुरण देखकर स्तम्भित हो गये। जीव-जगत् मानो उसी चरम तत्त्वका बहिःस्फुरण है—Manifestation of the Unmanifested. यहां तत्त्व जीवनगत होकर व्यक्तिगत होनेकी चेष्टा कर रहा है। हम सर्वत्र तत्त्वका (Principle) का बहिःप्रकाश, व्यक्तिरूपमें आविर्भाव (Personification) देखते हैं। भाव पहले आया या भव, इस विषयमें अनेक गवेषणा हो रही है। आर्यऋषि इन दोनोंका अपूर्व समवन्य साधितकर, दोनोंको एक चरम सत्यके विभाव रूपमें वर्णन कर गये हैं। तत्त्व भिन्न व्यक्तित्व और व्यक्ति भिन्न तत्त्व अनुभव करना प्रायः असंभव है। धवलता (Whiteness) को धवल पदार्थके बिना अनुभव करना सहज नहीं। जो धवल पदार्थको छोड़कर धवलता अनुभव करनेकी चेष्टा करते हैं उनकी चेष्टाको पाश्चात्य पंडितोंने Metaphysical abstraction कहकर विद्रूप किया है। तात्त्विक पुरुषोत्तम जब व्यक्तित्व द्वारा आत्मप्रकाश करते हैं तब वे वरेण्य, लोभनीय ग्रहणयोग्य हो जाते है इसमें सन्देह नहीं। इसीसे भारतके ऋषि-साधक तत्त्व और लीलाका अपूर्व समन्वय दिखानेके लिए इतने व्यस्त थे। जिसको विचारमें चरम सार तत्त्व मानकर ग्रहण किया है उसको बाहर ऐतिहासिक जगत्में अपने सामने प्रकटित देखनेपर वह तत्त्व अत्यधिक हृदयग्राही, लोभनीय, और उपास्य हो जाता है। दयाके सम्बधमें आलोचना और ग्रन्थ पाठ करनेकी अपेक्षा एक उन्नत दयालु व्यक्तिका सान्निध्य लाभ करना, दया वृत्तिके अनुशीलनमें विशेष उपयोगी होगा इसमें सन्देह नहीं। इसीलिए शायद साधकगण, विशेषतः वैष्णवगण, तत्त्व चिन्ताकी अपेक्षा लीलारस आस्वादनकी इतनी चेष्टा करते हैं। 'मानुष हुइया एसो प्रभु भगवान। दुटि कथा कये तबे जुड़ाइबे प्राण ।।'* हमारे पुरुषोत्तम ही चरम तत्त्वके पूर्णताप्राप्त प्रतीक हैं।

* हे भगवान, मनुष्यरूपमें आओ। दो बात करूँगा तब तो दिल मिलेगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीव जब शक्तिपूजाके फलस्वरूप पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेके लिए व्यस्त हो जाता है, पुरुषोत्तमके प्रिय-कार्य-साधनमें दृढ़ प्रतिज्ञ होता हैं, तब वे जीव-के दुख से व्यथित होकर, जीवके सम्मुख वंशी बजाते हुए, क्षणमात्रके लिए व्यक्त रूपमें उपस्थित होते हैं। तब जीव उनके क्षणिक दर्शनसे मुग्ध हुआ उनको स्थायी रूपमें प्राप्त करनेके लिए व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगता है।

एह्येहि कृष्ण सकृदेव भवातिथिस्त्वं
हे भक्तवत्सल गृहाण निमंत्रणं मे।
प्रेमाश्रु-पाद्य-परिधौत-पादाम्बुजे ते
आत्मानमेव कुसुमांजलिमुत्सृजामि ॥४७॥

कृष्ण (हे कृष्ण) एहि (आओ) सकृद् एव (एक बार) एहि (आओ) त्वम् अतिथिः भव (तुम अतिथि रूपमें मेरे सम्मुख, मेरे हृदयमें आविर्भूत हो)। (हे भक्तवत्सल) मे निमंत्रणं गृहाण (मेरा निमंत्रण ग्रहण करो)। ते प्रेमाश्रु-पाद्य-परिधौत-पादाम्बुजे (प्रेमाश्रुरूपी पाद्य द्वारा परिधौत तुम्हारे चरण-कमलों-में) आत्मानम् एव (अपने आत्माको ही) कुसुमांजलि (कुसुमांजलि रूपमें) उत्सृजामि (उत्सर्ग कर दूंगा) ।

अर्थात् हे मेरे प्राणप्रिय इष्टदेव श्रीकृष्ण, एक बार मेरे सम्मुख आविर्भूत हो, मैं अपने आत्माको ही तुम्हारे चरणोंमें निवेदनकर जीवन सफल करूंगा।

❀ एह्येहि कृष्ण सकृदेव भवातिथिर्मे
पादाम्बुजे तव निवेदनमेतदेव।
प्राणेश हे हृदय-कोमल-पद्म-तल्पे
त्वां शाययामि सुचिरं न विसर्जयामि ॥४८॥

एहि एहि कृष्ण सकृत् एवं भव अतिथिः मे (आओ, हे कृष्ण, एक बार आओ, मेरे अतिथिरूपमें आविर्भूत हो) तव पादाम्बुजे (तुम्हारे चरणकमलों-में) एतत् एव निवेदनं (यही एकमात्र निवेदन है)। हे प्राणेश (हे प्राणेश) हृदय-कोमल-पद्म-तल्पे (अपने हृदयकी कोमल पद्म-शय्यापर) त्वां सुचिरं शाययामि (तुमको चिरकाल के लिए शयन कराऊँगा) विसर्जयामि न (और कभी जाने नहीं दूंगा) ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् हे मेरे अभिलषित भगवान्, मैं तुमको अपने हृदयमें हमेशाके लिए जगह दूंगा और कभी नहीं जाने दूंगा। तुम आओ मुझे दर्शन दो।

भगवद्दर्शनका क्रम—साधनाके फलस्वरूप चित्त जब अनेकांश शुद्ध हो जाता है तब भक्तवत्सल भगवान् प्रथमतः अति अल्प समयके लिए भक्तको दर्शन देकर अन्तर्हित हो जाते हैं। इस अवस्थामें साधक भगवत्-विरहसे व्याकुल हो जाता है। चित्तसे सब कामना, वासना, आसक्ति, संस्कार, प्रतिष्ठामोह, सुख-स्पृहा, इत्यादि सम्पूर्णतः दूर हो जानेपर साधक जब कृष्ण-सुखैक-तत्पर हो जाता है अर्थात् जब कृष्णके अतिरिक्त भीतर और बाहरकी सब अनुभूतियाँ सम्पूर्णतः लोप हो जाती हैं अथवा जब वह "तन्मनस्क तदालाप-तद्विचेष्ट-तदात्मक' हो जाता है तब भक्तवत्सल प्रेममय श्रीभगवान उसके सम्मुख भुवनमोहन रूपमें आविर्भूत होकर साधकका जीवन सार्थक करते हैं। प्रथम दर्शनके पश्चात्का यह विरह-भाव पूर्ण मिलनमें सहायक होनेके कारण वैष्णव समाजमें अति आदृत है।

अनन्तविश्वाश्रय वीर्यशालिन् विश्वस्थसौन्दर्यनिदानभूत।
माधुर्यलावण्यरसैकसिन्धो हे सच्चिदानन्द नमो नमस्ते ॥४९॥

अनन्तविश्वाश्रय (हे अनन्त विश्वके एकमात्र आश्रय) वीर्यशालिन् (हे अनन्त वीर्यशालिन्) विश्वस्थसौन्दर्यनिदानभूत (हे विश्वके समस्त सौन्दर्य-माधुर्य-की एकमात्र खान) माधुर्य-लावण्य-रसैकसिन्धो (माधुर्य लावण्य रसके एकमात्र समुद्रस्वरूप) हे सच्चिदानन्द (हे सच्चिदानन्द) ते नमः नमः (तुमको बारं-बार नमस्कार)।

अर्थात् सगुण-ब्रह्म अशेष कल्याण गुणकी खान हैं; सत्ता, चैतन्य और आनन्द-की घनीभूत मूर्ति हैं, असमोर्ध्व लावण्यसार हैं।

सर्वज्ञाननिधिर्गुणैकनिलयो भावाश्रयः सर्वगः
त्वं सर्वत्र सदा समंजसतया सर्वान्तराकर्षकः।
ध्येयः सिद्धजनैर्मदीयहृदये धृत्वेष्टदेवद्युतिं
सार्थं मे कुरु जीवनं करुणया दीनैकबन्धो विभो ॥५०॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्वं सर्वज्ञाननिधिः (तुम सर्वज्ञानके समुद्र) गुणैकनिलयः (समस्त गुणके एकमात्र आश्रय) भावाश्रयः (शान्त-दास्यादि सब भावोंके आश्रय) सर्वगः (सर्वव्यापी) [हो]। सर्वत्र सदा (सब जगह एवं सब समय) समंजसतया (सब गुणोंके अपूर्व समन्वय द्वारा) सर्वान्तराकर्षकः (सबके चित्ताकर्षणकारी हो)। सिद्धजनैः ध्येयः (सिद्ध महात्मागण तुम्हारा नियत ध्यान करते हैं)। दीनैकबन्धो (हे दीनोंके एकमात्र बन्धु) विभो (हे विभु) करुणया (कृपा करके) मदीयहृदये (मेरे हृदयमें) इष्टदेवद्युतिं धृत्वा (इष्टदेवके ज्योतिर्मय रूपमें आविर्भूत होकर) मे जीवनं सार्थं कुरु (मेरा जीवन सार्थक करो)।

अर्थात् भगवान श्रीकृष्णमें सब भावोंकी और सब गुणोंकी पूर्ण परिणित तथा अपूर्व सामंजस्य वर्तमान है; इसलिए वे पूर्णता-प्राप्त आदर्श, पूर्णावतार, और सर्वचित्ताकर्षक हैं। वे हमारे इष्ट कृष्णविग्रहरूपमें हमारे हृदयमें आविर्भूत होकर हमारा जीवन सफल करें।

अंगानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।
आनन्द-चिन्मय-सदुज्ज्वल-विग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥५१॥

आनन्द-चिन्मय सद्-उज्ज्वल-विग्रहस्य (सत्-चित्त-आनन्दमय उज्ज्वल विग्रहरूप) यस्य (जिनके) सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति (समस्त इन्द्रिय-गुण-वृत्ति-युक्त) अंगानि (अंग-प्रत्यंग) जगन्ति (अनन्त ब्रह्मांडको) चिरं पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति (सर्वदा देख रहे हैं, रक्षा कर रहे हैं, सृष्टि एवं संहार कर रहे हैं अर्थात् जिनके प्रत्येक अंगमें सब इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ और सामर्थ्य हैं। तं आदिपुरुषं गोविन्दं अहं भजामि (उन विश्व-विश्रुत आदिपुरुष गोविन्दको मैं भजता हूँ)।

अर्थात् जो भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्येक रोमकूपमें अनन्त विश्व ब्रह्मांड दर्शन करानेमें समर्थ थे उनके प्रत्येक अवयवमें समस्त इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ पूर्णतया विकसित होंगी इसमें सन्देह करनेका कारण नहीं। उनके चक्षु केवल देखनेमें ही समर्थ न थे प्रत्युत सब इन्द्रियोंका कार्य सम्पादन कर सकते थे। उनके भीतर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
सत्ता, चैतन्य और आनन्द पूर्णरूपमें विकसित थे। उनकी देह-इन्द्रियादि सभी अप्राकृत थे।

❀ **विश्वजीवनविमोहनच्छविः कोऽसि देव यदुदेसि मे पुरः।**
त्वां पिवामि हृदयेन निर्भरं तिष्ठ तिष्ठ सविधे क्षणं मम ॥५२॥

देव (हे देव) [त्वं] कः असि (तुम कौन हो) यत् मे पुरः (जो मेरे सम्मुख) विश्व-जीवन-विमोहनच्छविः (विश्वजीवको विमोहन करने वाले रूप-में) उदेसि (आये हो)। त्वां (तुमको अर्थात् तुम्हारी रूपमाधुरीको) हृदयेन (समस्त अन्तरसे) निर्भरं (एकान्त, निर्भय अथवा पूर्णरूपसे) पिवामि (मैं पान करूँगा)। तिष्ठ (अपेक्षा करो) मम सविधे (मेरे सम्मुख) क्षणं तिष्ठ (क्षण भरके लिए ठहरो)।

अर्थात् तुम जगत्की दृष्टि और जीवनको मोहितकर ·विराजमान हो। तुम मेरे हृदयमें प्रकट हुए हो। इसीसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम कुछ समयके लिए मेरी दृष्टिमें उपस्थित हो जिससे मेरी दृष्टि तुम्हारे रूपकी सेवाकर धन्य हो सके।

❀ **गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।**
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥५३॥

[त्वं] गति (तुम जीव और जगत्की एकमात्र गति) भर्त्ता (पालन कर्त्ता) प्रभुः (रक्षक) साक्षी (अन्तर्यामी द्रष्टा) निवासः (आश्रयस्थान) शरणं (शरण्य) सुहृत् (मित्र) प्रभवः (उत्पत्ति स्थान) प्रलयः (लय स्थान) स्थानं (अन्तिम पर्यवसान स्थल) निधानं (सब प्रकारके गुण और शक्तिके एकमात्र गूढ़ आधार) अव्ययं बीजं (समस्त जगत्के चिरस्थायी बीज-स्वरूप और अव्यय [हो])।

गति—सब तत्त्वोंके भीतर परावस्थामें आकर भगवद्दर्शन लाभ करना होगा। सब भावोंमें उनको आस्वाद करना होगा। वे हमारे ही सर्वस्व हैं, उनको छोड़कर और कुछ नहीं है, यह तत्त्व अच्छी तरह हृदयंगम करना होगा। भगवान ही हमारी गति हैं किन्तु गम्यस्थलमें पहुँचकर ही उनको प्राप्त करेंगे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसा नहीं है, प्रत्येक पदमें उनको आस्वाद करना होगा। वे ही हमारे पास आकर हमको हाथ पकड़कर अपने आनन्दलोकमें ले जा रहे हैं; वे ही हमारे जीवनके लक्ष्य हैं, हमारी साधना हैं, हमारे गुरु हैं—यह तत्व अनुभव करना होगा।

भर्त्ता—हे हमारी गति, तुम्हीं हमारे भर्ता हो। तुम्हीं हमारे भीतर शक्ति संचारकर पालकके वेशमें हमारे संगी बनकर हमें ले जाते हो। रास्तेमें हमारे भरण-पोषणका भार भी तुम्हींने लिया है। "याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।" (शाश्वत कालसे सब अर्थोंका आवश्यकतानुसार विधानकर रहे हो)।

प्रभु—बुद्धिके दोषसे, संस्कारवशतः, हम तुम्हारे संग चलनेको अनिच्छित हों तो तुम प्रभु बनकर बलपूर्वक हमें साथ ले चलो। अपने आनन्दधाममें ले जाय बिना, अपना पूर्णानन्द आस्वाद कराये बिना, तुम हमें नहीं छोड़ सकते। हम चलनेमें असमर्थ हों तो तुम हाथ पकड़कर, गोदमें लेकर, ले जानेको तैयार हो।

साक्षी—तुम हमारे अक्लान्त चालक होते हुए भी अपना कोई स्वार्थ न होनेके कारण निर्लिप्त और उदासीन हो। तुम्हारा यह भाव देखकर हमारा कर्त्तृत्वाभिमानादि स्वतः दूर हो जाता है। (तुलनीय— "अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति")

निवास—तुम हमको विदेश अथवा बन्दीशालामें नहीं ले जा रहे हो। स्वरूप-विस्मृति, अशान्त, दुःखार्त्तको उसका प्रकृत स्वरूप बतलाकर प्रकृत आनन्दधाम में ले जा रहे हो। तुम्हीं हमारे चरम विश्राम, नित्यधामके आनन्द निकेतन हो।

शरणं—तुम्हीं हमारे रक्षा-कवच हो। हमें अब भयका कोई कारण नहीं, और कोई आश्रम ढूँढ़नेकी भी जरूरत नहीं। हमें जो कुछ जानना, समझना, होना और पाना है वह सब कुछ तुम्हीं हो। हमारी समस्त कामना-वासनाका पर्यवसान तुम्हींमें है। तुमको प्राप्त करके हमारी समस्त वृत्तियाँ और चिन्ताएँ लोप हो जाती हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुहृद्—तुम हमको परम मित्रको भाँति हाथ पकड़कर हमारे हृदयमें बसकर चला रहे हो। तुम केवल रक्षक ही नहीं वरन् हमारे परम सुहृद् हो। तुम जो हमको हाथ पकड़कर ले जा रहे हो यह अपने किसी स्वार्थके लिए नहीं अथवा कर्त्तव्यकी ताड़नाके कारण भी नहीं—इसमें तुम्हारी अहैतुक कृपा, तुम्हारे मनकी गंभीर वेदना मुझे दिखाई देती है।

प्रभव-प्रलय—तुम्हारी सृष्टि, तुम्हारी यह लीला "आनन्दप्राचुर्यात् न तु अभावात्—बालनृत्यवत्" है। तुम आनन्दमय हो, इसीलिए तुम प्रत्येक जीवको, प्रत्येक परमाणुको, सृष्टि-स्थिति-लयके द्वारा पूर्ण परिणति पूर्ण आनन्दकी ओर ले जा रहे हो। हम समुद्रकी लहरके समान तुमसे उत्पन्न हैं, तुम्हारे सहित लीलारत हैं एवं तुममें ही लयको प्राप्त होंगे।

स्थान—तुम्हीं चरम विश्राम, हमारे नित्यधाम हो। 'यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'—(गी० ८–२१) यह जो हमारी बीचकी थोड़ी सी स्थिति है यह भी तुमने अपनी लीलामाधुर्य द्वारा आनन्दमयकर रखी है।

निधान—तुम ही हमारे चरम एवं परम आधार हो। तुमको प्राप्त करके ही जीवको परम विश्रान्ति मिलती है।

बीज—हमारी पूर्ण परिणति और चरम शान्तिके लिए यह जो तुम्हारा लीला रहस्य है इसके भी मूल कारण तुम ही हो। इस पूर्ण परिणतिका बीज सब जीवोंमें, प्रत्येक परमाणुमें, निहित है। तभी तो तुमने गीतामें कहा है 'अहं बीजप्रदः पिता'—(गी० १४–४)। सृष्टि-स्थिति-लय द्वारा हमारी आनन्दधामकी ओर गतिका मूल कारण भी तुम्हारी कृपा हैं। यदि तुम हमारे भीतर बीज रूपमें न होते तो हम पत्थरके समान अचेतन होते।

अव्यय—इतने क्रिया-व्यापारमें भी तुम अक्रिय-उदासीन-अखंड-अद्वय तत्त्व रूपमें विराजित हो। तुम हमको अपना अखंड-अद्वय-नित्य आनन्द आस्वाद कराये बिना तृप्त नहीं हो सकते। तुम इतने प्रेमिक हो कि अपने और हमारे बीचका भेदभाव दूरकर, हमको अपने प्रेमसागरमें डुबाकर, चरम अखंड अद्वय तत्त्व आस्वाद करानेके लिए सर्वदा सचेष्ट हो।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

❀ त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥
(३ बार) ५४॥

त्वं एव माता (तुम्हीं माता) त्वं एव पिता च (और तुम्हीं पिता) त्वं एव बन्धुः (तुम्हीं बन्धु) त्वं एव सखा च (और तुम्हीं सखा) त्वं एव विद्या (तुम्हीं विद्या) त्वं एव द्रविणं (तुम्हीं धनदौलत [हो] । देवदेव (हे देवादिदेव) त्वं एव मम सर्वं (तुम्हीं मेरे यथासर्वस्व हो) ।

अर्थात् तुम भावाश्रय हो । तुमको जो जिस रूप जिस भावमें स्मरण करता है तुम उसी रूप उसी भावमें उसके पास जाते हो । तुम वस्तुतः सब सम्बन्धोंसे अतीत होते हुए भी, स्नेहवशतः, मनुष्यके साथ सब प्रकारके संबंध द्वारा आबद्ध हो । इसलिए तुम्हीं माता, तुम्हीं पिता, तुम्हीं बन्धु, तुम्हीं सखा, तुम्हीं ऐश्वर्य, तुम्हीं ज्ञान, तुम्हीं विज्ञान हो । तुम्हारे अतिरिक्त हमारे चिन्तन करने, इच्छा करने, अथवा प्राप्त करने योग्य और कुछ नहीं है । तुमको प्राप्त करके और कुछ प्राप्त करनेको बाकी नहीं रह जाता ।

प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मात्
यदेषोऽन्तरतमः आत्मा ॥५५॥

पुत्रात् प्रेयः (पुत्रसे प्रिय) वित्तात् प्रेयः (वित्तसे भी प्रिय) अन्यस्मात् सर्वस्मात् प्रेयः (अन्य जो कुछ है सबसे प्रिय) [हो] यद् एषः (इसलिए कि) अन्तरतमः आत्मा (अन्तरतम आत्मा) [हो] ।

अर्थात् पुत्र, वित्त एवं जगत्के समस्त पदार्थोंसे तुम प्रिय हो । वस्तुतः तुम सबकी अपेक्षा प्रियतम हो क्योंकि तुम अन्तरतम आत्मस्वरूप हो । तुम इनके भीतर हो इसीलिए तो हमारे आत्मीय-स्वजन हमको इतने प्रिय हैं; जब तुम इनके भीतर प्रकाशित नहीं होते तब हम इनको श्मशानमें ले जाकर फूंक देते हैं ।

ॐ रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति
तृप्तिभवति अमृतीभवति ॥५६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सः (वे) रसः वै (रसस्वरूप हैं)। अयं (यह जीव) रस ही एव (उन रस-स्वरूप परब्रह्मको ही) लब्ध्वा (लाभ करके) आनन्दीभवति (आनन्दित होता है) तृप्तिभवति (तृप्त होता है) अमृतीभवति (अमृतमय होता हैं)।

अर्थात् वे रस-स्वरूप हैं और सब प्रकारके आनन्दके मूलमें उन्हीं रस-स्वरूपका परमास्वाद है।

ॐ यत् प्राप्य न किंचिद् वांछति न शोचति
न रमते नोत्साही भवति ॥५७॥

यत् प्राप्य (जिसको प्राप्त करके) [मनुष्य] न किंचित् वांछति (और कुछ नहीं चाहता) न शोचति (न शोक करता है) न रमते (न किसी वस्तुमें आसक्त होता है) न उत्साही भवति (और न किसी वस्तुके लिए उत्साह करता है)।

अर्थात् तुमको प्राप्त करके जीवकी समस्त इच्छाएँ और कामना-वासना सम्पूर्णतः निवृत हो जाती हैं।

ॐ यज् ज्ञानान्मत्तो भवति स्तब्धो भवति
आत्मारामो भवति ॥५८॥

यत् ज्ञानात् (जिसका ज्ञान प्राप्त करके) [मनुष्य] मत्तः भवति (बाह्य ज्ञान रहित आनन्दसे उन्मत्त हो जाता है) स्तब्धः भवति (स्तब्ध हो जाता है) आत्मारामः भवति (आत्माराम लाभ करता है)।

अर्थात् उनको जानकर जीव आत्मानन्दमें ऐसा विभोर हो जाता है कि फिर और कुछ भी करणीय, चिन्तनीय, वरणीय बाकी नहीं रहता।

❀ तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥५९॥

ईश्वराणां परमं महेश्वरं (जो सब ईश्वरोंके परम महेश्वर हैं) तं (उनको) देवतानां परमं दैवतं च (जो सब देवताओंके भी परम देवता हैं)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तं (उनको) पतीनां पति (जो पालनकर्त्ताओंके भी पालनकर्त्ता हैं) परस्तात् परमं (सब विषयोंमें श्रेष्ठ हैं) भुवनेशं (भुवनके ईश्वर हैं) ईड्यं देवं (उन्हीं पूज्य देवको) विदाम (हम जानेंगे) ।

अर्थात् ईश्वर अनेक हैं। प्रत्येक ब्रह्मांडका पृथक् ईश्वर हैं किन्तु हमारे पुरुषोत्तम सब ईश्वरोंके अधीश्वर रूपमें, महेश्वर या परमेश्वर रूपमें, विराजमान हैं। भगवत्-स्वरूपकी थोड़ी सी उपलब्धिके पश्चात् भजनस्पृहा आरम्भ होती है, भगवत्धाममें प्रवेश और स्थिति-लाभ करनेकी तीव्र आकांक्षा उत्पन्न होती है। तब परमात्मभावमें सब साधनोंको पूर्ण करनेकी प्रबल चेष्टा जाग उठती है।

भगवत्-कृपासे भगवत्-स्वरूप उपलब्धकर ज्ञात हो गया कि हमारे देहेन्द्रियादि, आत्मीय-स्वजन सब भगवानने दिये हैं; वे ही हमको चला रहे हैं। उनको छोड़कर हमारा कुछ नहीं है और कोई नहीं है। अब तक वृथाभिमानने हमको यह तत्त्व अनुभव नहीं करने दिया और अशेष दुःख भोगना पड़ा। अब हम अंगन्यास, करन्यासादिकी सहायतासे भगवानमें समस्त कर्त्तृत्वाभिमान त्यागकर अपने भीतर और बाहर सर्वत्र भगवल्लीला दर्शन करनेकी चेष्टा करेंगे।

न्यास-तत्व

'नि' पूर्वक 'अस्' धातुसे 'न्यास' शब्द साधित होता है। 'अस् क्षेपणे स्थापने च'। अस् धातुका अर्थ है क्षेपण करना एवं स्थापन करना। जिसका जो स्थान नहीं है यदि वह बलपूर्वक वहाँ बैठ जाय तो उसको उस स्थानसे हटाकर वहाँके प्रकृत मालिकको बैठा देनेका नाम है 'न्यास क्रिया'। स्वर्ग इन्द्रका राज्य है; महिषासुर बलपूर्वक वहाँ प्रवेशकर स्वर्गका राजा बनकर बैठ गया है—'स्वर्गात् निराकृता देवा इन्द्रोऽभूत् महिषासुरः'। इसी प्रकार हमारी यह देह, देहके विचित्र यंत्र तथा विभिन्न तत्व हमने सृष्ट नहीं किये; इनके ऊपर हमारा कोई कर्तृत्व नहीं है; मृत्युके समय हम इनको अपने साथ नहीं ले जा सकते। चरम निर्वाणके समय यह हमारे संग नहीं जायेंगे। इसलिए इनके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मालिक हम नहीं हैं, श्रीभगवान हैं। उन्होंने दया करके ये देह, आत्मीय-स्वजन, धन-दौलत एवं अन्य सुखके सब उपकरणोंको केवल भोग करनेका कुछ अधिकार मात्र हमको दिया है। अपनी देहको, बालबच्चोंको, धन-ऐश्वर्यको 'मेरा' कहना सम्पूर्णतः भूल है। ये कोई भी न मेरे साथ आया था, न मेरे साथ जायगा। यह सब भगवानके हैं। हमने इनको 'अपना' कहकर नाना उपसर्गोंकी सृष्टि कर दी है। इन सब पदार्थोंमें से आगन्तुक अनर्थकारी 'मेरा' भाव दूरकर ये सब भगवानके हैं, यह तत्त्व अनुभव करना ही अंगन्यास क्रियाका उद्देश्य है। अंगन्यास क्रियाके मंत्रोंके भीतर अपने विभिन्न अंगोंमें, विभिन्न देवताओंका, विभिन्न भगवत्-शक्तियोंका चिन्तन करनेकी व्यवस्था है। इसका उद्देश्य है उपलब्ध करना कि ये सब अंग, ये सब तत्त्व, श्रीभगवानके हैं—मेरे नहीं।

अंगन्यास—अंगका अर्थ है देह। अंगन्यासका अर्थ है देहके विविध तत्त्वोंका न्यास, इनके ऊपर वृथा स्वाभिमान त्याग करना। ये सब मेरे नहीं हैं, ये हमारे प्रियतम भगवानके हैं इसलिए मेरे आदरके योग्य हैं। इनको प्रेमपूर्वक अच्छी तरह रखना होगा। किन्तु समझना होगा कि ये मेरे नहीं हैं। अंगन्यास क्रिया द्वारा हम अनासक्त-अनुरागी होनेकी शिक्षा लाभ करते हैं।

करन्यास—हमारी यह देह सर्वप्रथम एक परमाणुके समान सूक्ष्म थी। किसकी शक्तिसे और किस प्रकार यह पुष्ट परिणत सर्वकार्यक्षम यंत्रमें परिणत हुई यह किसी भी दार्शनिक अथवा वैज्ञानिकके सम्पूर्णतः अनुभवमें नहीं आता। इस देहके विभिन्न अवयव, शिरा, स्नायु, इन्द्रियादि एवं इनकी कार्य-प्रणाली हृदयंगम करनेमें श्रेष्ठ वैज्ञानिक तक स्तम्भित और पराभूत हो गए हैं। किस प्रकार भुक्त अन्न रक्तमें परिणत होता है, किस प्रकार विविध यंत्रोंका कार्य साधित होता है, इस विषयमें हमें कोई कर्तृत्व अथवा ज्ञान नहीं। हमारे संस्कार कहांसे उत्पन्न होते हैं, कहाँ ले जा रहे हैं, कैसे हमको चला रहे हैं—यह तत्त्व तो प्रायः हम कुछ भी नहीं जानते। नदीमें बहता हुआ फूल यदि कहे कि मैं इस स्रोतका चालक हूँ, हाथमें कलम यदि कहे कि मैं हाथसे लिखवाता हूँ, अथवा विद्युत्‌के सम्बन्धको वर्जनकर पंखा यदि कहे कि मैं हवा देता हूँ या बल्ब कहे कि मैं प्रकाश देता हूँ, तो यह जिस प्रकार हास्यकर होगा हमारे सब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कार्योंमें हमारा वृथा कर्तृत्वाभिमान देखकर भी शायद कोई इसी प्रकार हँसता है। इस प्रसंगमें केनोपनिषदकी देवताओंका दर्प चूर्ण करनेकी कहानी आस्वादनीय है। इसलिए तत्वदर्शी ज्ञानी कहते हैं कि 'कार्य हम नहीं करते, ये हमारे द्वारा कारित होते हैं; हम कर्ता नहीं हैं, हम यंत्रमात्र हैं'। इसी कारण गीतामें अर्जुनको केवल निमित्तमात्र होनेका उपदेश किया गया है—'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्' (गी० ११-३३)। इस वृथा कर्त्तृत्वाभिमान रूप महिषासुरको बधकर अहंकारके हाथसे कर्त्तत्व बुद्धिको छीनकर प्रकृत कर्त्ताको अर्पण करना ही न्यासक्रियाका उद्देश्य है। करने न करनेका कर्ता मैं नहीं हूँ, कर्त्ता हैं श्रीभगवान—भगवत्-शक्ति। इस प्रकारकी अनुभूतिके साथ निरहंकार भाव स्वतः ही आ जाता है। अंगन्यास, करन्यास द्वारा हम निर्मम-निरहंकार भाव लाभ करते हैं। दुःखका विषय है कि आजकल ये सब कियाएँ प्रायः एक नीरस मंत्रोच्चारण और बाह्यिक हस्तक्रियामें पर्यवसित हो गई हैं।

मातृकान्यास—'मातृ' शब्दके सहित अल्पार्थवाचक 'क' प्रत्यय युक्त करनेसे स्त्रीलिंग 'मातृका' शब्द बनता है। मातृकाका अर्थ है 'खंड-खंड माँ' अर्थात् शक्ति। हमारी इस खंडदेहमें वर्णोच्चारणादि क्रियाकलापका कर्तृत्व इन्हीं मातृकाके हाथमें न्यस्त है। ये मातृका ही हमारी खण्ड देहमें स्थित हुई—परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी स्तर भेदकर—हमारे द्वारा उच्चारित शब्दोंकी प्रकृत मालिक हैं। इनके कथनको अपना कथन समझकर हम अपने संस्कार द्वारा, अपने विकृत भाव द्वारा, शब्दब्रह्मको विकृत कर देते हैं। मातृकान्यासके फलस्वरूप हम अपनी इस देहाविच्छिन्न खण्डीकृत माँको जगद्व्यापी माँके मिलाकर अखंड मातृशक्तिका, अखंड शब्दब्रह्म तत्त्वका, स्वरूप आस्वाद करनेकी योग्यता लाभ करते हैं। तब माँ हमारे मुखसे अपने शब्द तत्त्वका अबाधित प्रकाश साधितकर हमारे उच्चारित शब्दोंको शब्दब्रह्म रूप वेदमें परिणत करनेका सुयोग लाभ करती हैं। इस अवस्थामें साधक समझता है कि माँ ही मानो मेरे मुखसे वेद उच्चारण कर रही हैं, माँ शब्दब्रह्मतत्त्व प्रकाश कर रही हैं। मांको शब्दब्रह्म रूपमें, अपने भीतरसे अबाधित रूपमें आत्मप्रकाश करनेकी योग्यता दान करनेका नाम ही है मातृकान्यास। ऋषिगण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मातृकान्यासके फलस्वरूप भगवानमें आत्मसमर्पण कर, अपने अवधारित कथन द्वारा, वेदकी महिमा प्रचार करते थे और अपनेको वेदमंत्रके द्रष्टा व उच्चारण कर्ता कहकर परिचय देते थे। इसीलिए ऋषि-वाक्य अभ्रान्त सत्य माना जाता था। मातृकान्यासकी अनुभूति लाभ करनेके लिए ही हमारी प्रचलित सरस्वती पूजा है।

ऋष्यादिन्यास—ऋष्यादिन्यासके फलस्वरूप हम वेदके मंत्रकर्त्ता ऋषियोंके भावसे परिभावित होकर, ऋषियोंकी संगतिमें चालित होकर, अपने उच्चारित वाक्योंको ऋषिवाक्य अथवा वेदवाक्य रूपमें अनुभव करनेका सुयोग पाते हैं। तब हमारी देह, हमारी वागिन्द्रय, ऋषियोंके—परमात्मा भगवानके—यंत्ररूपमें परिगणित होनेकी योग्यता लाभ करती है।

व्यापकन्यास—सर्वभूतमें सर्वव्यापी भगवत्सत्ताकी, भगवत्-कार्य प्रणालीकी एवं भगवत्-आनन्दकी उपलब्धि लाभ करना ही व्यपकन्यासका उद्देश्य है। जीवजगत् श्रीभगवानकी मूर्ति—भगवद्विकास—है। इस मूर्तिके भीतर उनका अस्तित्व और उनकी लीला दर्शन करना एवं उनमें सत्यप्रतिष्ठा, प्राणप्रतिष्ठा और आनन्दप्रतिष्ठाका अधिकार लाभ करना ही व्यापकन्यास क्रियाको स्वाभाविक परिणति है।

अनन्त विश्वके अधिष्ठाता, हमारे एकमात्र प्रियतम सुहृद्, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यके आधार, श्रीभगवान हमारी देहके सब यंत्रोंको निर्माणकर हमारे हृदयमें अधिष्ठित हुए इनको परिचालित कर रहे हैं। हमारी वृथा आसक्ति और कर्त्तृत्वाभिमान इस परम तत्त्वको अनुभव करनेमें बाधा देते हैं। हम साधनाके प्रभावसे अपने देहादिमें वृथा स्वाभिमान और कर्त्तृत्वाभिमानको दूर कर सकनेसे ही भगवानका कर्तृत्व उपलब्ध करनेकी योग्यता लाभ करेंगे। यही वृथा ममत्वाभिमान और अहंकार दूरकर अपने भीतर स्थित अन्तर्यामीका कार्यकलाप उपलब्ध करनेके लिए ही न्यासतत्त्वका एकान्त प्रयोजन है। न्यासतत्वकी साधनाके फलस्वरूप हमारे भीतरसे निर्मम-निरहंकार भाव उदित होकर हमको सत्य-प्रतिष्ठ और प्राणप्रतिष्ठ करता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब न्यासोंका एक ही उद्देश्य है। श्रीभगवान किस प्रकार अनन्तरूप धारणकर अनन्त लीलारस विस्तार किये हुए हैं—यह अनुभूति लाभकर, सर्वत्र उनका दर्शनकर, उनके ध्यान और सेवाकी योग्यता लाभ करना ही न्यासक्रिया-का स्वाभाविक फल है।

न्यास प्रधानतः त्रिविध हैं :—

(१) अंगन्यास द्वारा यह तत्त्व उपलब्ध होता है कि मेरे, मेरे आत्मीय जनोंके एवं जगत्‌के सब अवयव अथवा तत्त्व मेरे नहीं हैं, ये श्रीभगवानके हैं। इसके फलस्वरूप साधक सम्पूर्णतः आसक्तिवर्जित होकर निर्मम भाव लाभ करता है।

(२) करन्यास द्वारा साधक उपलब्ध करता है कि वह किसी कर्मका कर्त्ता नहीं है, सब कर्म प्रकृति द्वारा कारित हो रहे हैं। यह तत्त्व उपलब्धकर साधक निरहंकार भाव लाभ करता है। इन दोनों न्यासोंके परिणामस्वरूप 'मेरा अपना' कहकर कुछ नहीं रह जाता और 'मैं किसी कर्मका कर्त्ता नहीं हूँ' यह तत्त्व उपलब्ध होता है।

(३) व्यापक न्यास द्वारा सर्वत्र ब्रह्मानुभूतिकी योग्यता लाभ होती है। व्यापक-न्यास यथार्थ रूपसे सम्पन्न हो जानेपर साधक जगत्‌के समस्त पदार्थों-में भगवानका अपूर्व प्रकाश अनुभवकर आनन्द लाभ करता है। सौन्दर्य-माधुर्यादि चित्ताकर्षक धर्म तब खंडरूपसे स्थानविशेषमें अनुभव करनेकी आवश्यकता नहीं होती। समग्र जगत् अपने शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धके संभार सहित साधककी इन्द्रियोंके सामने उपस्थित होता है। और साधक अनुभव करता है कि यह जगत् उन्हींकी श्रीमूर्त्ति है। इस अवस्थामें सौन्दर्य-माधुर्य-के लिए अन्वेषण नहीं करना पड़ता क्योंकि व्यापकन्यासके फलस्वरूप समस्त जगत् ही श्रीभगवानकी सत्तासे अनुरंजित दिखाई देता है और जिस तरफ इन्द्रिय जाती है उसी तरफ श्रीभगवानका कोई माधुर्यमय प्रकाश साधक-को गोचर होता है। भक्त अपने इष्टको अपने जीवनका चरम आदर्श एवं अपनी सब प्रकारकी आकांक्षाओंका चिर विश्रान्तिका स्थान मानता है। आँखोंमें भावका अंजन लगा सकनेसे सौन्दर्यका अन्वेषण बाहर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं करना पड़ता। सर्वत्र पूर्ण सौन्दर्यका मूर्त्त प्रकाश अनुभव होता है। जिसको व्यापकन्यास कहकर वर्णन किया है वह नेत्रोंमें 'भाव' का अंजन लगानेके समान है। अंगन्यास और करन्यास सिद्ध हो जानेपर ममत्व और अहंकार अपगत हो जाते हैं और साधक अपने-आपको अकिंचन अनुभव करता है। जैसे चातक तृष्णार्त्त होते हुए भी अन्य जलकी ओर आकृष्ट नहीं होता—वह केवल आकाशके जलबिन्दुके लिए ही उन्मुख रहता है; साधककी अवस्था भी इसी प्रकार हो जाती है—वह केवल उनकी कृपाकी ओर ही उन्मुख रहता है। तब उसके निर्मल चित्तमें 'भाव' का उदय होता है। वस्तुतः यह श्री भगवानका कृपादान है। इस 'भाव' का अंजन लगाकर जब वह बाह्य जगत्का निरीक्षण करता है तब उसके इष्ट अथवा प्रियतमकी अपार माधुरी उसकी इन्द्रियोंके सामने प्रकटित होकर उसको विह्वल कर देती है।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥६०॥

कर्माणि सर्वशः (सब प्रकारके कर्म) प्रकृतेः गुणैः (प्रकृतिके गुणों द्वारा) क्रियमाणानि (साधित होते हैं)। अहंकारविमूढात्मा अहं कर्त्ता (अहंकारसे विमूढ़ हुआ जीव मैं कर्त्ता हूँ) इति मन्यते (इस प्रकार समझता है)।

भगवान्की प्रकृति अर्थात् माँ आद्याशक्ति ही समस्त कर्मोंकी कर्त्ता हैं। मनुष्य, बुद्धिके दोषसे, संस्कारवशतः, अपनेको कर्त्ता मानकर, अनर्थकी सृष्टि करता है, यह उपलब्धि करनी होगी।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणागुणेषु वर्त्तन्ते इति मत्वा न सज्जते ॥६१॥

महाबाहो (हे महाबाहो अर्जुन) गुणकर्मविभागयोः तत्त्ववित् तु (प्रकृतिके भीतर गुण और कर्मका खेल हो रहा है, जो इस विभागको जानते हैं ऐसे तत्त्ववित्) गुणागुणेषु वर्त्तन्ते (सत्त्व, रज, तम, तीनों गुणोंका खेल तत्तत्गुणान्वित विषयोंमें होता रहता है) इति मत्वा (ऐसा मानकर) न सज्जते (प्रकृतिके गुण व कर्ममें आसक्त नहीं होते)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

तत्त्वदर्शी सब कर्मोंमें जीवका कर्मफल-रहस्य एवं तदनुसार प्रकृतिके गुणोंका खेल आस्वादकर, अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठ रहकर, अनासक्त भावसे यह खेल देखता रहता है।

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥६२॥

यदा द्रष्टा (जब उदासीन भावसे द्रष्टा पुरुष) गुणेभ्यः (त्रिगुण भिन्न) अन्यं कर्त्तारं न अनुपश्यति (अन्य कर्त्ता नहीं देखता) गुणेभ्यः च परं वेत्ति (और गुणोंसे अतीत वस्तुको जानता है) [तदा (तब)] सः मद्भावम् अधिगच्छति (वह मेरे भावको, ब्रह्मभावको प्राप्त होता है)।

साधक जब अपने-आपको प्रकृतिके गुण अथवा गुण-कार्यसे सम्पूर्णतः पृथक् अनुभव करता है अर्थात् अपने व्यष्टि देह एवं समष्टि जगत्के प्रत्येक कार्यके मूलमें प्रकृतिका कर्त्तृत्व देखता है और स्वयं स्वरूपस्थ होकर अपने-आपको सम्पूर्णतः पृथक् पुरुषचैतन्य रूपमें अनुभव करता है तब वह भगवद्भावसे परिभावित हुआ उदासीन भावसे भगवल्लीला दर्शन करनेकी योग्यता लाभ करता है।

॥ देहेन्द्रियाणि च मनो न तु मे तवैव
स्वात्मीयबांधवगणा न तु मे तवैते।
सर्वं त्वदीयमिति मे प्रियमेव सर्वं
त्वत्प्रीतये सततमेव नियोजयानि ॥६३॥

देहेन्द्रियाणि मनः च (देह इन्द्रिय एवं मन) न मे (मेरे नहीं हैं) तु तव एव (परन्तु तुम्हारे ही हैं) स्वात्मीयबान्धवगणाः (आत्मीय बान्धवगण) न मे (मेरे नहीं हैं) तु एते तव (परन्तु ये तुम्हारे हैं)। सर्वं त्वदीयं (सब तुम्हारे हैं) इति (इसलिए) सर्वं मे प्रिय एव (सब मेरे भी प्रिय हैं)। त्वत्प्रीतये एव (तुम्हारी प्रीतिके लिए ही अर्थात् तुम्हारे प्रिय कार्यमें ही) सततं नियोजयानि (इनको सर्वदा नियुक्त करूँगा)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् मेरी इन्द्रियाँ एवं आत्मीय-स्वजन ये कोई भी मेरे नहीं हैं, मेरे संग जायेंगे भी नहीं। यह सब तुम्हारे हैं इसलिए मेरे प्रिय हैं। सुतरां अनासक्त अनुरागी होकर इनको तुम्हारे कार्यमें नियुक्त रखना मेरा एकान्त कर्त्तव्य है।

❀ देहस्य बीजमतिसूक्ष्मसणुप्रमाणं
सृष्टं त्वयैव सुविचित्रतया च पुष्टम्।
सर्वात्मना परिणतं कृतियोग्यदेहे
कर्त्तृत्वबुद्धिरिह नास्तु कदापि नाथ ॥६४॥

देहस्य बीजम् (इस देहका बीज) अणुप्रमाणं अतिसूक्ष्मम् (अणुप्रमाण अतिसूक्ष्म) त्वया एव सृष्ट (तुम्हारे द्वारा ही सृष्ट हुआ है) सुविचित्रतया पुष्टम् च (एवं अतिसुन्दर विचित्ररूपसे परिपुष्ट हुआ है) [तथा] सर्वात्मा परिणतं (सब प्रकारसे तुमने इसकी परिणति साधन की है)। नाथ (हे नाथ) इह कृतियोग्यदेहे (इस सब कार्य करनेके योग्य शरीरमें) कर्त्तृत्वबुद्धिः (मेरी कर्त्तृत्व बुद्धि) कदापि न अस्तु (कभी न हो)।

अर्थात् यह शरीर सर्वप्रथम एक बिंदु रक्त था, तुमने इसको एक सुन्दर पुष्ट परिणत सर्वकार्यक्षम देहमें परिणत किया; इसलिए इस देहमें एवं इसके कार्यके विषयमें मेरा मिथ्या कर्त्तृत्वाभिमान रहना उचित नहीं।

❀ यंत्री त्वमेव तव यंत्रमिदं शरीरं
स्वयेच्छयैव परिचालयसि प्रभुत्वात्।
एवं मनोऽपि मम देव मतं त्वयैव
बुद्धिः स्थिरा मम हृषीकपतेऽत्रभूयात् ॥६५॥

त्वम् एव यंत्री (तुम्हीं यंत्री हो) इदं शरीरं तव यंत्रम् (यह शरीर तुम्हारा यंत्र है), प्रभुत्वात् (तुम प्रभु होकर) स्वया इच्छया एव (अपनी इच्छानुसार ही) [इसको] परिचालयसि (चलाओ) एवं मम मनः अपि (इसी प्रकार मेरा मन भी) त्वया एव मतं (तुम्हारी इच्छानुसार परिचालित हो, मननीकृत हो अर्थात् तुम ही मेरे मनके मन हो, 'येनाहुर्मनो मतम्'; मनमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

रहकर तुम ही मनको चालित करते हो)। देव हृषीकपते (हे देव हृषीकेश) अत्र मम बुद्धिः (इस विषयमें मेरी बुद्धि) स्थिरा भूयात् (स्थिरता लाभ करे)।

अर्थात् तुम यंत्री हो, मेरी देह तुम्हारे हाथमें एक यंत्र मात्र है, तुम स्वयं इसको अपनी इच्छानुसार चलाते हो। मेरे मनके विषयमें भी ऐसा ही है। मैं इस तत्वको कभी न भूलूँ।

त्वं सर्वभूतेषु विराजसे सदा
सर्वेषु जीवेष्वसि जीवनं स्वयम्।
त्वद्दर्शनं सर्वग मेऽस्तु सर्वत-
स्तवैव पूजास्तु च कर्मभिर्मम ॥६६॥

त्वं सदा सर्वभूतेषु विराजसे (तुम सब भूतोंमें सदा विराजमान हो) सर्वेषु जीवेषु स्वयं जीवनं असि (सब जीवोंमें तुम जीवन रूप धारण किये हुए हो अर्थात् तुम्हीं हमारे प्राणके प्राण हो, तुम्हींको लेकर तो हम जीवित हैं)। सर्वग (हे सर्वव्यापी) सर्वतः त्वद्दर्शनं मे अस्तु (सर्वत्र सब भूतोंमें तुम्हारा दर्शन मुझे लाभ हो) मम कर्मभिः च (मेरे सब कर्म द्वारा) तव एव पूजा अस्तु (तुम्हारी पूजा हो)।

अर्थात् तुम जगत्को सृष्टकर उसमें अनुप्रवेश कर गये। तुम्हारी सत्ता, चैतन्य और आनन्दका प्रकाश ही हमारा जीवन, मन और आनन्द है। तुमको सर्वत्र दर्शन करना, अनुभव करना और सेवा करना ही हमारी चरम साधना है। (यहाँ एक बंगला संगीत है)।

मेरा कहकर जो कुछ है वह सब तुम्हीं हो। तुम्हीं मेरे आत्मीत-स्वजन, बन्धु-बान्धव, धन-दौलतके रूपमें मेरे तृप्ति-विधानके लिए मेरे सामने उपस्थित हो। इन सबके भीतर, इन सबके मूलमें, तुम्हीं सत्यरूपमें अधिष्ठित हो। मैं भी तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ—तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब हूँ। मेरा बल-बुद्धि सब तुम्हीं हो; तुम्हीं मेरे भीतर शक्तिरूपमें अधिष्ठानकर मेरे दर्शन, श्रवण, ज्ञान और उपलब्धिमें सहाय होते हो। तुम्हारे दिये हुए नेत्रोंमें तुम्हारा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाश मेरा देखना है; तुम्हारे दिये हुए कानोंमें तुम्हारा प्रकाश मेरा सुनना है; तुम्हारी दी हुई बुद्धिमें तुम्हारा प्रकाश मेरा ज्ञान है; मेरा सुख-शान्ति-आनन्द तुम्हारे दिये हुए चित्तमें तुम्हारा प्रकाश है। तुम अपनी दी हुई इस देहके भीतर, अन्तर्यामी रूपमें अधिष्ठित हुए इसको कल्याण और शान्तिके पथपर ले जा रहे हो। यह यंत्र तुम हो, इसके चालक तुम हो, इसका ज्ञान तुम हो, इसका आनन्द भी तुम्हीं हो। विद्युत्-शक्ति जिस प्रकार बल्ब और पंखेकी चालक है तद्रूप तुम भी इस देहयंत्रके चालक हो। तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई भी अथवा कुछ भी नहीं है। तुम्हीं मेरे यथासर्वस्व हो। इसलिए मुझमें अब आसक्ति, कर्तृत्वाभिमान, प्रतिष्ठामोह, सुख-स्पृहादिके रहनेका अवकाश नहीं।

न्यास-तत्व साधित हो जानेके फलस्वरूप ममता-अहंता शिथिल पड़ जाती हैं। तब समझमें आता है कि वे ही सर्वस्व हैं, वे ही सब कर रहे हैं, सर्वत्र उन्हींकी लीला हो रही है। तब भगवत्-कृपासे अपने भीतर परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीका स्फुरण होनेपर समझमें आता है कि पूजाके उपचार रूपमें वे ही आगत हैं और हमारे भीतर बैठे हुए पूजा ग्रहण भी वे ही कर रहे हैं। तब साधक सोचता है कि भगवानको क्या दूँ, सभी तो उनका है। इस तत्वका चिन्तन करते-करते उसकी समझमें आता है कि आत्मा तक भगवानको निवेदित हो जानेपर ही प्रकृत आत्मनिवेदन सार्थक हो सकता है।

उपचार समर्पण

'उपचार' शब्द 'उप' (समीप) पूर्वक घञ् प्रत्ययान्त 'चर्' धातु (चरण, विचरण) से निष्पन्न होता है। निस्तब्ध अखंड अद्वय तत्त्वमें कर्मकांडका—यहाँ तक कि ज्ञानकांडका भी—सद्भाव नहीं किन्तु जब तरंग उठती है तब उसमें परा प्रकृति और अपरा प्रकृतिकी विषयी और विषय रूपमें, अन्नाद और अन्नरूपमें आदान-प्रदान-रूपात्मिका क्रिया दर्शनमें आने लगती है। प्रथम समर्पण है परम पुरुषका परा और अपरा प्रकृति द्वारा विषयरूपमें आत्मप्रकाश; द्वितीय समर्पण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

है विषयके द्वारा विषयीका चरम तत्त्वके निकट आत्मसमर्पण। प्रथम समर्पणमें भगवान स्वयं जीव-जगत् रूपमें आत्मप्रकाश करते हैं; द्वितीय समर्पणमें जीवजगत् भगवानमें निवेदित होकर लीन हो जाता है। श्रीभगवान शान्त-दास्यादि भाव द्वारा परा प्रकृति रूपमें एवं उपचार द्वारा विषय रूपमें हमारे निकट ग्रहणयोग्य हुए हैं। वे ही मानो उपचार रूपमें, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धादि रूपमें, अपरा प्रकृति रूपमें, हमारे सम्मुख आगत हैं। हम अपरा प्रकृति रूप विषय-उपचारादि-को शुद्धकर, समर्पणक्रिया द्वारा, प्रथमतः परा प्रकृतिको तत्पश्चात् भगवानको समर्पण करनेकी चेष्टा करते हैं। साधारणतः हम देखते हैं कि अन्नाद और अन्न तत्त्वके भीतर ऊपरके तत्त्व भोक्ता रूपमें और नीचेके तत्व भोग्य रूपमें प्रतीयमान हैं। इसलिए स्थूल विषयोंको, उपचारोंको, शोधन द्वारा सूक्ष्ममें पर्यवसितकर, भोक्ता रूपमें आगत आत्मा एवं आत्मीयगणको समर्पणकर, हम समस्त विषयोंको और अन्तमें विषयीको भी भगवानको निवेदनकर अखंड तत्त्वमें प्रवेश करनेका सुयोग लाभ करते हैं।

मूल अन्नाद अथवा भोक्ता स्वयं श्रीभगवान हैं, व्यावहारिक अन्नाद अथवा भोक्ता परा प्रकृति रूपी जीव है। बाहरके प्रातिभासिक भोक्ता तन्मात्रस्थ अव्यवहित ऊपरके तत्व हैं। पृथिवीका भोक्ता जल है, जलका भोक्ता अग्नि, अग्निका भोक्ता वायु, वायुका भोक्ता आकाश, आकाशका भोक्ता मन, मनका भोक्ता बुद्धि, बुद्धिका भोक्ता जीवात्मा और जीवात्माका भोक्ता परमात्मा है। हम पंचतन्मात्रको उपचार अथवा भोग्य रूपमें और परा प्रकृति रूप जीवको गौण भोक्ता तथा भगवानको मुख्य भोक्ता रूपमें निर्देश करते हैं। अपना आत्मा और आत्मीय स्वजनोंके आत्मा गौण भोक्ता हैं। उपचार शोधन द्वारा मुख्य भोक्ता ही तन्मात्र रूपमें, उपचार रूपमें आगत हैं—यह तत्व उपलब्ध करनेकी व्यवस्था देखी जाती है। हमारे उपचार रूपी विषय गौण कर्त्ताके द्वारा मुख्य कर्त्तामें समर्पित हो रहे हैं।

'उपचार' का अर्थ है जो हमारे सम्मुख विचरण कर रहा है। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धादि पंचतन्मात्र उपचार हमारे जीवन धारणके प्रधान अवलम्बन हैं। हमारी साधारण पूजाके पाद्य-अर्घ्य-धूप-दीप-नैवेद्य आदि उपकरण इन्हीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पंचतत्वके प्रतीक हैं। सुतरां उपचार शब्दका अर्थ है जो कुछ हम भोग करते हैं, व्यवहार करते हैं, उपलब्ध करते हैं अर्थात् हमारे जीवन धारण और उन्नति लाभके लिए जो कुछ आवश्यक है उसका समष्टि। साधकके अधिकारानुसार उपचारमें भी भेद पाया जाता है। जो स्थूल भोग पदार्थोंमें ही व्यस्त हैं उनके लिए पंचउपचारकी व्यवस्था है। जो मनोवृत्ति सहित साधन करनेके अधिकारी हैं उनके लिए पंच स्थूल उपचारके साथ मानसिक वृत्ति योगकर सोलह उपचार-से पूजा करनेकी व्यवस्था है। तत्त्वज्ञानीके लिए २४ तत्व पूजाके उपकरण हैं। जो सिद्ध महात्मा भगवानमें पूर्ण समाहित हैं उनके लिए आत्मा एकमात्र पूजाका उपकरण है। विश्वब्रह्मांडमें जो कुछ दिखाई देता है, जो कुछ हमारे भोगमें आता है अर्थात् शास्त्रके समस्त 'इदं' पदार्थ, उपचार रूपमें भगवानको अर्पण करनेकी व्यवस्था है। इस स्थानमें उपचारसमर्पणका मंत्र है—"विश्वं जुहोमि वसुधादि शिवावसानम्"। यहाँ विश्व शब्दका अर्थ है परा और अपरा जगत्‌के समस्त पदार्थ।

उपचारको साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त किया गया है। स्थूल अधिकारीके लिए देहादिके प्रयोजनीय समस्त पदार्थ, सूक्ष्म अधिकारीके लिए चित्तकी समस्त वृत्तियाँ और उससे ऊपरके उत्तम अधिकारीके लिए केवल आत्मा।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी तत्त्व के विचारके भीतर हम देखते हैं कि भगवान परमात्मा किस प्रकार परा आदि चारों स्तर भेदकर हमारे निकट वैखरी रूपमें अर्थात् हमारे ग्रहणयोग्य दृश्य भोग्य पदार्थ रूपमें आकर उपस्थित हुए हैं एवं इन दृश्य पदार्थोंकी ग्रहणादि क्रिया द्वारा ये पदार्थ किस प्रकार हमारे भीतरके वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती स्तर भेदकर ब्रह्ममें पर्यवसित हो रहे हैं। सब पूजाओंमें उपकरण-शुद्धिकी व्यवस्था देखनेमें आती है। इस रहस्यके भीतर जानेपर मालूम होता है कि भगवान ही इस दृश्य रूप वेशमें हमारे निकट आये हैं। इस अनुभूतिसे उपचार ब्रह्म-प्राप्तिमें सहायक हो जाते हैं। गीता का "ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः" मंत्री इसी तत्त्वका आभास देता है। तब साधक अनुभव करता है कि हमारे लीलामय भगवान ही हमारी शान्ति और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्याणके लिए उपचार रूपमें उपस्थित हैं। 'छिन्नमस्ता'का रहस्य तभी अनुभवमें आता है।

समर्पण शब्दका अर्थ है सम्यक् प्रकारसे अर्पण करना अर्थात् जिसकी वस्तु है उसी को दे देना; जहाँसे आई है वहीं पहुँचा देना। सव जीव-जगत् भगवान से आये हैं; समर्पण क्रिया द्वारा ये फिर भगवान में जाकर पर्यवसित होते हैं।

उपचार समर्पणके मंत्रोंका रहस्य चिन्तन करनेसे मालूम होता है कि हमारे शब्द-स्पर्शादि ग्रहण द्वारा विषयपंचक किस प्रकार तत्-पदार्थसे आते हैं और फिर तत्-पदार्थमें ही जाकर पर्यवसित हो जाते हैं। 'तत्' हमारे निकट भोग्य विषय रूपमें 'त्वं' अथवा 'इदं' रूपमें उपस्थित हुए हैं। साधक उपचार समर्पण द्वारा इन विषयोंको फिर तत्-पदार्थमें पर्यवसित करता है। साधक उपचार-आगमनके भीतर पुरुष-मेध यज्ञका एवं उपचारसमर्पणके भीतर नरमेध यज्ञका गूढ़ रहस्य आस्वाद करनेका सुयोग पाता है। श्रीभगवान हमारे ग्रहणयोग्य होनेके लिए वहु रूपमें आये हैं; हमारी साधना है इस वहु रूपके भीतरसे भगवानको ग्रहण करना और उनकी लीलामें सहायक होना।

न्यास क्रिया उत्तम रूपसे साधित हो जानेपर साधक अपने परमाराध्य देव-को केवल अपने ही देहेन्द्रिय अधिष्ठाता रूपमें सीमाबद्ध न मानकर विश्वके अधिष्ठाता और चालक रूपमें उपलब्ध करता है। अर्थात् वे यंत्री हैं और साधक तथा समस्त जीव-जगत् उनके हाथमें यंत्र मात्र हैं। तभी जीवजगत्के भीतर प्रकृतिका लीलारहस्य अनुभवमें आता हैं। तभी साधक समझता है कि वह इस लीलाका कर्त्ता नहीं है—कर्त्ता स्वयं प्रकृति देवी भगवती हैं। तव प्रकृतिके कार्यमें हस्तक्षेप करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती और उपचारसमर्पण-का गूढ़ रहस्य उन्मीलित होना आरम्भ होता है। साधक तब समस्त जगत्के भीतर, समस्त क्रियाकांडके भीतर, श्रीभगवानका लीला-रहस्य (पूजा-रहस्य) आस्वाद करता है और अपने वृथा कर्तृत्वाभिमानसे सम्पूर्णतः मुक्ति लाभ करता है। तब अपनी देहकी तरफ देखनेसे प्रतीत होता है कि यह देह प्रकृति-का ही अंश है, प्रकृतिके कार्य साधनमें नियुक्त है, भगवल्लीलामें सहायक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तभी समझमें आता है कि तरंग स्वतः जलसे उठती है और स्वतः जलमें लीन हो जाती है, जीव केवल द्रष्टामात्र है। उपचारसमर्पण एक स्वाभाविक तत्व है, स्वभावतः ही हमारे द्वारा साधित हो रहा है।

वैष्णव साधकगण श्रीराधाकी, सखी-मंजरीवृन्दकी, गुरु-प्रदर्शित सिद्ध देहके द्वारा कृष्णसेवाके भीतर यह तत्त्व आस्वाद करते हैं। तब हमारे देखनेमें भगवानका देखना, हमारे सुननेमें भगवानका सुनना, हमारे आहारमें भगवानका आहार, हमारे सब कार्यमें भगवानका कार्य, उनका लीला-रहस्य आस्वाद करनेकी योग्यता लाभ होती है। उपचार शोधन द्वारा हम उपलब्ध करते हैं कि वे कितने रूपोंमें, कितने भावोंमें, हमारे निकट उपस्थित होकर ग्रहणयोग्य हैं। समर्पणक्रिया द्वारा हम उपलब्ध करते हैं कि हमारी देहके सब कार्य किस प्रकार उनमें पर्यवसित हो रहे हैं। उपचार-समर्पणके फलस्वरूप, सर्वभूतमें भगवानका एवं भगवानमें सर्वभूतका दर्शन करनेके परिणामस्वरूप, जीव-जगत्, आत्मीय-स्वजन भगवानकी लीला-स्वीकृत विग्रह हो जाते हैं। तब पुत्र-पुत्रीको उनके बालगोपाल-कुमारी भगवती रूपमें, माँ-बापको उनके अन्नपूर्णा-विश्वनाथ रूपमें, पति-पत्नीको उनके कृष्ण-राधा अथवा शिव-दुर्गा रूपमें, संक्षेपतः सब जीवोंको शिव रूपमें प्रत्यक्ष करनेकी एवं आत्मीय-स्वजनों अथवा बन्धु-बांधवों के लिए तथा अपने लिए अनुष्ठित सब कर्मोंको भगवत्पूजामें परिणत करनेकी योग्यता लाभ होती है। यही भाव लक्ष्यकर भगवान् शंकरने कहा है "पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिः स्थितिः। संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरः, यद् यत् कर्म करोमि तत् तद् अखिलं शम्भोः तवाराधना।"

प्रकृति देवीका लीला-रहस्य दर्शन करते-करते साधकका सब चिन्तन भगवद्-ध्यानमें और सब कार्य भगवत्-पूजामें पर्यवसित हो जाते हैं। "ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः" श्लोकका मर्म तभी उपलब्ध होता है। सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा भगवान किस प्रकार साधकको सीमाबद्ध रूपके द्वारा असीम तत्त्वमें, उपचार-समर्पणके द्वारा सर्वजीवके सेवाव्रतमें, जीवके समस्त कार्यको पूजामें परिणतकर; जीवको भगवद्भावसे परिभावितकर ऊपर उठानेमें, अपने प्रियतम जीवको अपनी ओर आकर्षित करनेमें, सर्वदा सचेष्ट हैं यह रहस्य उपलब्धकर जीव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आनन्दमें समाहित हो जाता है। कहना अनावश्यक होगा कि सिद्ध अवस्थामें साधक अपने और अपने आत्मीय-स्वजनोंके स्नानमें भगवानका स्नान, जीवको खिलानेमें भगवानको अन्नसमर्पण, सब जीवोंके कल्याण-साधन शिवकी सेवामें पर्यवसित हो जाते हैं। भगवान 'सर्वभूतमयो हरिः' हैं, जीवकी सेवा ही शिवकी सेवा है। हम निर्लिप्त होकर उपलब्ध कर सकते हैं कि हमारे स्नानाहारादि सब क्रियायें भगवत्-पूजामें परिणत हो जाती हैं।

प्राचीन आर्यऋषियोंके भगवान सर्वव्यापी थे। वे जीव और जगत्‌को—विशेषतः गुरु और आत्मीय स्वजनोंको—भगवानकी विशेष मूर्त्तियाँ मानते थे। इन सब विग्रहों द्वारा भगवान किस प्रकार हमारे सहाय होते हैं इनके द्वारा किस प्रकार भगवानका स्नेह क्षरित हो रहा है उपलब्ध कर, इनकी सेवाके द्वारा अपना ऋण शोधकर, कृतज्ञता प्रकाश करना ही हमारी समस्त पूजाका—विशेषतः उपचार-समर्पणका—मूल उद्देश्य है। वे असंख्य मूर्त्तियोंमें उपस्थित हैं किन्तु हम उनको उन मूर्त्तियोंके शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर इन पांच भावोंमें ग्रहण कर सकते हैं। इन्हीं पाँच भावोंके भगवद् विग्रहों द्वारा भगवत्-सेवाकी व्यवस्था देखी जाती है। हमारे ग्रहणयोग्य अथवा व्यवहार्य सब पदार्थ (अर्थात् हम जो कुछ देखते, सुनते, खाते, पीते या सूंघते हैं) उपचारोंमें हैं और इनको पाँच, दस अथवा सोलह भागोंमें विभक्त कर लिया गया है। ये वास्तवमें पंचतन्मात्रके प्रतीक हैं। देश-काल-पात्र भेदानुसार हमारे प्रयोजनीय द्रव्योंमें परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है, यह बात हम भूल गये हैं। जैसे, "पाद्य" अप् तत्वका प्रतीक है। प्राचीन कालमें पादुकाका इतना व्यवहार नहीं था। अधिकतर लोग नग्न पद ही यातायात करते थे। उस समय किसी गुरुजनके घरमें आनेपर उनके पाँव धुलाने अथवा स्नान करानेकी व्यवस्था थी। यही था प्रधान पाद्य। अब शीतकालमें जूता मोजा पहनकर यदि कोई गुरुजन हमारे घर आये तो उनका जूता मोजा उतारकर पाँव धुलाने जाना शान्तिजनक होनेके बजाय कष्टजनक होगा। माला चन्दनादिसे सुसज्जित करनेकी प्रथामें भी आजकल परिवर्त्तन करना आवश्यक है। हमारे उपचारसमर्पणके पात्र पत्थर या धातुकी मूर्तिके बजाय यदि मनुष्य वेषधारी जीवन्त विग्रह होते तो हम देश-काल-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पात्रानुसार उपचारोंमें परिवर्त्तन करनेको बाध्य होते। गुरुजन, आत्मीयस्वजन, श्रेष्ठ महापुरुष और अवतारोंका स्थान आजकल उनकी मूर्तियों और प्रतीकोंने ले लिया है। इसीसे उपचार-समर्पण अब एक बेगारी कामके समान हो गया है। उपचार-समर्पण वस्तुतः हमारा जीवनव्यापी क्रिया-रहस्य था जिसके अनुष्ठानसे हम आनन्दसे आयु व्यतीत करते थे। आजकल यह एक निष्प्रयोजन संस्कारमें परिवर्त्तित हो गया है जिसको हम दो-तीन मिनटमें शेष कर देते हैं।

अपने बाल-बच्चों तथा आत्मीय स्वजनोंके स्नानके समय पाद्यसमर्पण-तत्व और सबके आहारके समय अन्ननिवेदन-तत्व आस्वाद करना होगा। सब जीवों एवं सब पदर्थोंमें वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती एवं परा अवस्था वर्तमान है। वैखरी स्थूल भाव, मध्यमा मानसिक सूक्ष्म भाव, पश्यन्ती जीवात्म-भाव और परा परमात्म-भाव है। श्रीभगवान परा भावमें अवस्थित हुए हमारे प्रदत्त उपचारोंको ग्रहण कर रहे हैं। पहले बाहरकी अचलमूर्तिमें उपचार समर्पण अभ्यासकर क्रमशः जीव-रूप सचल विग्रहके भीतर अर्थात् जीव सेवाके द्वारा उपचार-समर्पण तत्व आस्वाद करना होगा। वर्तमान कालकी साधारण पूजामें उपचार-समर्पणकी ही प्रधानता देखी जाती है।

'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' अर्थात् अपने प्रत्येक चक्रमें, प्रत्येक तत्वमें, मन और प्राणको स्थिर करके देखना कि भगवान हमारी पूर्ण परिणति लाभके लिए क्या कर रहे हैं—इस उपलब्धिका नाम 'धारणा' है। धारणाकी परिपक्वावस्थामें अपनी देहके सब तत्वोंमें देहके समस्त कार्यकलाप संदर्शनकर चित्तमें जो एकतानता आ जाती है इसका परिणाम है 'ध्यान'। ध्यानके फलस्वरूप हम जीवजगत्के प्रत्येक पदार्थमें भगवानकी अवस्थिति और लीलारहस्य उपलब्ध करनेका सुयोग पाते हैं। तब भगवान प्रथम हमारी देहके भीतर और तत्पश्चात् जगत्के भीतर चिन्मय रूपमें आत्मप्रकाश करनेका सुयोग पाते हैं। इस अवस्थामें प्रकृत न्यास एवं उपचार-समर्पण सहज, सुन्दर और स्वाभाविक हो जाते हैं। इसी अवस्थाको लक्ष्य करके कहा गया है "कृष्णमयी कृष्ण जार अन्तरे बाहिरे। जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े ताहाँ कृष्ण स्फुरे॥" "जित देखौं तित श्याममयी है।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

"जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।" तभी "वासुदेवः सर्वमिति" तत्व पूर्ण सार्थकता लाभ करता है।

प्राचीन कालमें जो जीवनगठनके, पूर्णतालाभ के, भगवत्प्राप्तिके सहाय था अब वह एक आडम्बर-पूर्ण बाह्यिक अनुष्ठानमें परिणत हो गया है। प्राचीन कालकी साधनामें क्रमोन्नति (Promotion) की एक सुन्दर व्यवस्था थी। अब यह केवल गुरुदेवका वर्षमें एक बार शिष्यके घर आकर रुपया वसूल करनेके रूपमें रह गया है। हमारी दीक्षाके मन्त्रमें निम्नस्तरसे सर्वोच्चस्तरमें जानेका एक सुन्दर कौशल था। गुरुदेव प्रतिवर्ष शिष्यसे एक बार मिलकर वह जिस स्तरमें है उसकी वह साधना पूर्ण हुई या नहीं अथवा वह ऊपरके स्तरके योग्य हुआ कि नहीं, यह परीक्षाकर उसको ऊपरका स्तर लाभ करनेमें सहायता करते थे। जैसे प्रथम स्तरमें कह दिया कि 'एते गंधपुष्पे ॐ नमः शिवाय या कृष्णाय' उच्चारणकर चन्दन और पुष्प इष्टके चरणोंमें यथाविधि अर्पण करते रहना। दूसरे वर्ष गुरु शिष्यको उच्चभूमिका अधिकारी देखकर बता देते थे कि ये गन्ध-पुष्प तुम्हारे नहीं हैं, ये सब पदार्थ श्रीभगवानके हैं। तुम उनकी वस्तुमें वृथा कर्तृत्वाभिमान आरोपकर अशेष लांछना भोग कर रहे थे। आजसे तुम इस कर्तृत्वाभिमानको दूर करनेके लिए गन्ध-पुष्पादि अर्पण करते समय प्रार्थना करना—'हे ठाकुर, मेरा तो कुछ भी नहीं है, मैं तुम्हारी वस्तु तुम्हींको देकर—गंगाजलसे गंगापूजाकी भाँति—तुम्हारी पूजा करता रहूँगा।' फिर अगले वर्ष गुरुदेव जाकर कहते थे कि 'तुम्हारे बाल-बच्चे, आत्मीय-स्वजन, बन्धु-बांधव भगवत्-धामके, उनके बागके, सुन्दर फूल हैं, ये कोई भी तुम्हारे नहीं हैं; जब तक इनके भीतर भगवान प्रकट हैं तभी तक ये शोभनीय, आदरणीय, और वरणीय हैं, उनके अन्तर्धान होते ही यह शव में परिणत हो जायेंगे और तुम इनको फूँक देनेको बाध्य होगे।' 'सर्वं त्वदीयं इति मे प्रियमेव सर्वम्'—तत्व इस स्थलमें आस्वादनीय है।

इसके बाद अगले वर्ष फिर गुरुदेव आकर शिष्यको उच्च भूमिके उपयुक्त देखकर समझा देते थे कि ये पुष्पादि सद्गुणके प्रतीक हैं किन्तु ये सद्गुण भी तुम्हारे नहीं हैं; ये अशेष-कल्याणगुणके आकर श्रीभगवानके गुणविशेषका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुम्हारे भीतर आविर्भाव हैं। तब साधकको मालूम होता था कि उसका देखना भगवद्दत्त नेत्रोंमें भगवत् शक्तिका प्रकाश है; उसका सुनना भगवद्दत्त कानोंमें भगवत्-शक्तिका प्रकाश है, उसका ज्ञान भगवद्दत्त बुद्धिमें उनका आत्मप्रकाश है और उसके सब सद्गुण उसकी भगवद्दत्त चित्तभूमिमें भगवद्-भावके, भगवत्-गुणराशिके प्रकाश हैं। साधक तब अपने भीतर भगवत्-प्रकाश उपलब्धकर आनन्दमें विभोर हो जाता था।

अन्तमें गुरुदेव आकर शिष्यसे पूछते थे—'तुम जो ये सब समर्पण करते हो तो तुम स्वयं किसके हो।' तब साधक समझता था कि उसका आत्मा भी तो उसका अपना नहीं है, वह भी एक अखंड अद्वय तत्वका कल्पित खंड रूपमें प्रकाशमात्र है। तब शिष्य अपने कल्पित आत्मतत्वको एक पूर्ण अखंड तत्वमें निवेदनकर अखंड ज्ञानतत्वमें विभोर हो जाता था। तभी साधक भगवद्धाममें प्रवेश करनेका अधिकार लाभ करता था अर्थात् Enterance पास करता था। इस स्थलमें साधक-भावकी पूजा शेष हो जाती है और सिद्ध-भावकी पूजा प्रारम्भ होती है। अब समर्पण-क्रिया पूर्णतः साधित हो गई। जो कुछ भगवानके निकटसे आया था वह फिर भगवानमें जाकर लीन हो गया। जलकी तरंग जलमें लीन हो गई, एक शान्त सुन्दर जलतत्व बाकी रह गया। न्यासके शेष मंत्रसे हमें मालूम होता है कि भगवान सब भूतोंमें विराजमान हैं—सब जीवोंकी सेवा द्वारा प्रकृत पूजाका कार्य साधित हो जाता है। इसीसे हम समझ सकते हैं कि हमारे भगवान हमारे सम्मुख आत्मा, आत्मीय-स्वजन और बन्धु-बान्धव रूपमें समागत हैं।

कर्मफल अर्पित हो गया; अब साधकको आत्मभावमें पूर्णतया समाहित होकर उपलब्ध करनेका सुयोग मिला कि उसका आत्मा भी अपना निजस्व नहीं है। तब साधकका आत्मा भगवानके करुणाबलसे आकृष्ट होकर उन्हींके महान् स्वरूपमें प्रत्यावर्त्तन करता है और तन्मयता लाभ करता है। याद रखना होगा 'लीलार्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्'। हमारे प्रेममय श्रीभगवान स्वरूपतः अखंड अद्वय तत्व होते हुए भी लीलाके लिए अपनेको बहु भावमें विभक्त किये हुए हैं। इस लीलामें भी यह न भूलना होगा कि हमारा आत्मा उन्हींका आत्मा है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

❀ त्वद्ध्यानतोऽन्यन्न च चिन्तयानि
त्वत् कर्मतो वा करवाणि नान्यत् ।
द्रव्याणि सर्वाणि च मे तवैव
त्वय्येव तेषां भवतु प्रयोगः ॥६७॥

त्वद्ध्यानतः अन्यत् च (तुम्हारा ध्यान छोड़कर और कुछ) न चिन्तयानि (मैं चिन्ता न करूँ), त्वत् कर्मतः वा अन्यत् (तुम्हारा कर्म छोड़कर और कोई कर्म) न करवाणि (न करूँ), मे सर्वाणि द्रव्याणि च (मेरे समस्त द्रव्य, मेरा जो कुछ है सब) तव एव (तुम्हारा ही है) त्वयि एव (तुम्हारे ही प्रीत्यर्थमें) तेषां प्रयोगः भवतु (इनका प्रयोग होवे) ।

इस अवस्थामें साधकके मनमें भगवच्चिन्ताके अतिरिक्त और कोई चिन्ता नहीं आती; भगवत्-कार्यके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य करनेका सामर्थ्य नहीं होता । भगवानके सब द्रव्य, भगवानके सब तत्व, भगवानको समर्पणकर साधक साक्षिभूत स्व-स्वरूपमें स्थिति लाभ करता है । यहाँ व्रजगोपियोंका 'तन्मनस्का-स्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः' भाव उपलब्ध करनेकी चेष्टा करनी चाहिए ।

❀ आत्मानमात्मीयगणांश्च बांधवान्
याभिः क्रियाभिः परितोषयाम्यहम् ।
ताभिः सदैवेश्वर तृप्तिरस्तु ते
ताभिस्तवैवार्चनबुद्धिरस्तु मे ॥६८॥

अहं याभिः क्रियाभिः (मैं जिन कर्मों द्वारा) आत्मानं तथा एव आत्मीय-गणान् बांधवान् च (अपने आत्माको, आत्मीयजनोंको एवं बान्धवोंको) परि-तोषयामि (सन्तुष्ट करता हूँ) ईश्वर (हे जगदीश्वर) ताभिः (उन सब कर्मों द्वारा) सदा ते तृप्तिः अस्तु एव (सदा तुम्हारी तृप्ति होवे) । ताभिः (उन सब कर्मों द्वारा) तव एव अर्चनबुद्धिः मे अस्तु (तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ ऐसी मेरी बुद्धि हो) ।

मैं और मेरे आत्मीय-स्वजन सब भगवानके जीवन्त विग्रह हैं । छोटे लड़कों-के भीतर बाल-गोपाल रूपमें, लड़कियोंके भीतर कुमारी भगवती रूपमें, पति-पत्नीके भीतर भगवानके युगल रूपमें, माँ-बापके भीतर अन्नपूर्णा-विश्वनाथ रूपमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे प्रेममय श्रीभगवान लीलारत हैं। इनके लिए हम जो कुछ करते हैं वह सब शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुरादि भाव द्वारा हमारे भगवानमें अर्पित होकर प्रकृत पूजामें परिणत हो रहा है—यह तत्व अन्तरमें उपलब्ध करना चाहिए। हम इन सब विग्रहों द्वारा भगवानके विभिन्न रूपोंका आवाहन करेंगे, ध्यान करेंगे, सेवा करेंगे। यही उपचार-समर्पणका प्रकृत तात्पर्य है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥६९॥

अर्पणं ब्रह्म (अर्पण कर्म ब्रह्म है) हविः ब्रह्म (अर्पणके द्रव्य घृतादि भी ब्रह्म हैं) ब्रह्माग्नौ (ब्रह्मरूपी अग्निमें अर्थात् जिस अग्निमें हवन हो रहा है वह अग्नि भी ब्रह्म है) ब्रह्मणा हुतं (ब्रह्म द्वारा हुत हो रहा है अर्थात् हवन कर्त्ता भी ब्रह्म है) ब्रह्मकर्मसमाधिना (इन ब्रह्म यज्ञ अनुष्ठान द्वारा) तेन ब्रह्म एव गन्तव्यम् (हवनकारी ब्रह्मको ही प्राप्त होता है)।

भगवान ही लीलाके निमित्त, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, भोक्ता-भोग्य-भोजन रूपमें, अपनेको विभक्तकर समस्त क्रियाओंके कर्त्ता-कर्म-करण रूपमें आत्म-प्रकाश करते हैं। वे ही सर्वस्व हैं, उनके अतिरिक्त कोई नहीं है और कुछ नहीं है, यहाँ यह तत्व आस्वाद करनेकी योग्यता लाभ होती है।

❀ यद् यत् कृतं हृषीकेश तत् सर्वं न मया कृतम्।
त्वया कृतन्तु फलभुक् त्वमेव मधुसूदन ॥७०॥

हृषीकेश (हे हृषीकेश) यत् यत् कृतं (मेरे द्वारा जो कुछ किया गया है) तत् सर्वं मया न कृतं (वह सब मेरे द्वारा कृत नहीं हुआ अर्थात् तुम ही इन्द्रिय-अधिष्ठाता रूपमें प्रेरणा देते हो) तु त्वया कृतं (परन्तु तुम्हारे द्वारा कृत हुआ है) [अतएव] मधुसूदन (हे मधुसूदन) फलभुक् त्वं एव (तुम्हीं उसके फलभोक्ता हो)।

इतःपूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः
जाग्रत्-स्वप्न-प्रसुप्तावस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां
पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यद् यत् स्मृतं यदुक्तं
यत् कृतं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा ॥७१॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इतः पूर्वं (अब तब) प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः (प्राण-बुद्धि-देहके धर्मा-विकारवशतः) जाग्रत्स्वप्नप्रसुप्तावस्थासु (जाग्रत्-स्वप्न-प्रसुप्त अवस्थामें) मनसा वाचा हस्ताभ्याम् पद्भ्याम् उदरेण शिश्ना (मन, वाक्य, हाथ, पाँव, उदर और शिश्न द्वारा) यत् तत् स्मृतं यत् उक्तं यत् कृतं (जो कुछ चिन्तित, कथित अथवा कृत हुआ है) तत् सर्वं (वह सब) ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा (ब्रह्ममें अर्पित हो जाय ।)

अर्थात् मेरे भीतर बैठे अन्तर्यामी भगवानने सब किया है; मैं केवल निमित्त मात्र हूं, यह बोध सर्वदा मनमें जाग्रत् रहे ।

❀ यत् करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत् ।
यत्तपस्यामि गोविन्द तत् करोमि त्वदर्पणम् ॥७२॥

यत् करोमि (मैं जो कुछ करता हूं) यत् अश्नामि (जो कुछ खाता हूं) यत् जुहोमि (जो कुछ हवन करता हूं) यत् ददामि (जो कुछ दान करता हूं) यत् तपस्यामि (जो कुछ तपस्या करता हूं) गोविन्द (हे गोविन्द) तत् त्वदर्पणं करोमि (वह सब तुम्हींमें अर्पण करता हूं) ।

हमारे द्वारा शरीर, मन और वचनसे जो भी कर्म होते हैं उनके कर्त्ता स्वयं श्री भगवान हैं, हम केवल निमित्तमात्र हैं—यह तत्त्व हृदयंगमय हो जानेपर साधक-का समस्त कर्मफल भगवानमें अर्पित हो जाता है ।

एतदन्नादिकम् उपचारात्मकं सर्वं शोधयित्वा यदमृतं
संजातं तत् सर्वं परब्रह्मणि समर्पणं भवतु स्वाहा ॥७३॥

एतत् अन्नादिकम् (यह अन्नादि) उपचारात्मकं (उपचारात्मक) सर्वं (सब द्रव्य) शोधयित्वा (शोधनकर) यत् अमृतं संजातं (जो अमृत उत्पन्न हुआ है) तत् सर्वं परब्रह्मणि (वह सब परब्रह्ममें) समर्पणं भवतु स्वाहा (समर्पित होवे) ।

भगवान अमृतके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते, इसलिए हमारे भीतर भुक्त-द्रव्यादि क्रमशः रस, रक्त, वीर्य, ओजः और अन्तमें अमृतमें परिणत होते हैं; यही अमृत हमारे भगवानको ग्राह्य है । इस परिणतिके लिए हमारे भीतरके विभिन्न

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

चक्रोंमें भुक्त द्रव्यादिका क्रमशः आहुत होकर अति अलौकिक रूपसे अमृतमें परिणति लाभ करनेकी एक सुन्दर व्यवस्था है। यह व्यवस्था ही वास्तवमें यज्ञाग्नि में आहुति देना है (Process of distillation)।

❀ मयार्प्यते त्वच्चरणेऽयमात्मा प्रतीच्छ हे स्वस्य धनं स्वयं त्वम्।
किंचिन्निजस्वं न हि विद्यते मे यद्दीयते त्वच्चरणे मुकुन्द ॥७४॥

अयम् आत्मा (यह आत्मा) मया (मेरे द्वारा) त्वच्चरणे (तुम्हारे चरणों-में) अर्प्यते (अर्पित हो रहा है)। हे (हे सर्वात्मन्) त्वं स्वयं (तुम स्वयं) स्वस्य धनं (अपने इस धनको) प्रतीच्छ (ग्रहण करो)। मुकुन्द (हे मुक्ति-दाता) त्वच्चरणे (तुम्हारे चरणोंमें) यत् दीयते (जो कुछ अर्पित हुआ है) [उसमें] मे निजस्वं (मेरा निजस्व) किंचित् न विद्यते हि (कुछ भी नहीं है)।

शब्दस्पर्शादिभिस्ते प्रकृतिरविरतां यां सपर्यां विधत्ते
तस्या मर्मग्रहो मे भवतु हृदि सदा भक्तिभावश्च देव।
तत् पूजायां ममापि प्रकृतिसहकृतौ दीयतां मेऽधिकार–
स्त्वल्लीलायांच योगो मम भवतु सदा सुस्थिरस्त्वत्प्रसादात् ॥७५॥

प्रकृतिः (प्रकृति देवी, जगन्मयी माँ) शब्दस्पर्शादिभिः (शब्दस्पर्शादि द्वारा) अविरतां (निरन्तर) यां ते सपर्यां विधत्ते (तुम्हारी जो विधि पूर्वक पूजा कर रही हैं) तस्याः मे मर्मग्रहः भवतु (उसका मर्म मुझे उपलब्धिगोचर हो); देव (हे लीला-मय परमात्मन्) मम अपि (मेरे भी) हृदि सदा भक्तिभावश्च (हृदयमें भक्तिभाव सर्वदा) [विराज करे]; प्रकृतिसहकृतौ (प्रकृति देवीकी संगतिमें) तत् पूजायां (उस पूजामें) मे अधिकारः दीयतां (मुझको अधिकार प्रदान करो)। त्वत्प्रसादात् (तुम्हारे प्रसादसे) च त्वल्लीलायां मम सुस्थिरः योगः सदा भवतु (तुम्हारी लीलामें मेरा चित्त सर्वदा योजित रहे)।

इस समय साधक अपने देहादिको प्रकृतिके अंशरूपमें उपलब्ध कर इस अंशके ऊपर भगवानने जो कर्म निर्धारित किया है उस कर्म द्वारा अपने-को प्रकृतिकी परम पुरुषकी पूजाके सहायक रूपमें उपलब्ध करता है। यहां

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैष्णवोंकी अष्टकालीय लीलामें सखी-मंजरियोंके ऊपर न्यस्त कर्मरहस्य चिन्तनीय है। प्रकृत पूजा करती हैं माँ प्रकृति देवी। शब्दस्पर्शादिकी सहायतासे जिससे हमें पूर्ण परिणित, भगवत्-प्राप्ति, लाभ हो इस विषयमें माँ सर्वदा सचेष्ट हैं। समस्त विश्व, विश्वका विधान, हमारी भगवत्-प्राप्तिमें सहायक हैं। हम संस्कारवशतः अज्ञानताके प्रभावसे माँकी इस चेष्टामें माँकी इस पूजा में, बाधा देते हैं। माँकी इच्छासे अवगत होकर, माँका विधान जानकर, माँका विधान पालन कर यदि हम माँके कार्यमें सहायक हों तो माँकी प्रकृत पूजा साधित हो जायगी। माँका प्रकाश, माँकी हवा, उन्हींके सृष्ट दरवाजे-खिड़कियोंमें से हमारे गृहमें प्रवेशकर गृहको शुद्ध पवित्र ज्योतिर्मय करनेमें व्यस्त हैं। हम बुद्धिके दोषसे अपने घरके दरवाजे-खिड़कियाँ बंदकर माँकी इच्छामें बाधा देते हैं। जिससे माँकी शक्ति, सौन्दर्य, माधुर्य हमारे सब तत्त्वोंमें अबाधित रूपसे प्रवेश कर हमको माँके सब गुणों और भावोंसे विभूषित करें, हमको मातृमय करें, इसकी चेष्टा ही हमारी पूजा है।

हृदासनमधिष्ठाय प्रसीद मम पूजया
त्वयि प्रीते हृषीकेश क्लेशः संक्षीयतेऽखिलः ॥७६॥

हृषीकेश (हे हृषीकेश) हृदासनम् अधिष्ठाय (हृदयरूप आसनमें अधिष्ठान कर) मम पूजया प्रसीद (मेरी पूजा द्वारा प्रसन्न हो)। त्वयि प्रीते अखिलः क्लेशः (तुम्हारे प्रसन्न होनेसे समस्त क्लेश) संक्षीयते (सम्यक् रूपसे क्षय हो जायँगे)।

उपचार समर्पण करते समत साधक देखता है कि भगवान ही उपचार रूपमें उसके सामने उपस्थित हैं। तत् पदार्थं स्वयं अखंडित अद्वय रूपमें वर्तमान होते हुए भी उसके सामने विविध खंडित रूपमें आकर उपस्थित हुआ है और उसके भीतर जाकर फिर अखंड तत् रूपमें पर्यवसित हो रहा है। उपचार रूपमें भी वे ही हैं, इन्द्रिय रूपमें भी वे ही हैं, हमारे मन-बुद्धि-आत्मा रूपमें भी वे ही हैं। वे मानो छिन्नमस्ता रूपमें अपनेको छेदन कर अपना रक्त अपने आप ही पान कर रहे हैं। उपचार शोधन द्वारा "ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः" श्लोकका मर्म हृदयंगम हो जानेके बाद साधक अनुभव करता है कि भगवान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही सब रूपोंमें आगत हैं; वे सब उपचार ग्रहण कर, सब आत्मसात् कर, स्वयं तृप्त हैं। साधकको अब उनको भेंट देनेका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं रही। इस तत्त्वोपलब्धि के परिणामस्वरूप साधक मुग्ध हो जाता है और सब तत्त्वोंमें भगवल्लीला आस्वाद करनेकी योग्यता लाभ करता है।

प्रार्थना

उपचार-समर्पणके पश्चात् साधक अपने प्रियतमका प्रसन्न मुख देखकर आनन्द में विभोर हो जाता है। भगवान मानो उसकी पूजासे तृप्त होकर उसे वर देनेके इच्छुक हैं किन्तु भक्त क्या माँगे। बिना माँगे हुए जिन्होंने सब दे दिया, जिनके विचारमें भूल नहीं, दयाका अभाव नहीं, जो सबका अभाव पूरण किये बिना रह नहीं सकते उनसे साधक अब क्या प्रार्थना करे। भगवान भी भक्तके लिए कुछ किये बिना नहीं रह सकते। तब भक्त भगवानका आग्रह देखकर कहता है—'हे भगवन्! लौकिक धन, जन, मान, प्रतिष्ठादि अब मुझे कुछ भी मांगनेकी इच्छा नहीं किन्तु तुम्हारा आदेश पूर्ण करनेके लिए तुमसे यह प्रार्थना करता हूं कि :—

(१) तुम्हारे चरणारविन्दमें मेरी अनन्य भक्ति और अहैतुक अनुराग सर्वदा रहे; मेरे मनमें और कोई कामना उत्पन्न न हो।

(२) असत्य, अज्ञान और मृत्युमय जगत्से मुझको और सब जीवोंको अपने सच्चिदानन्द धाममें प्रवेश करनेका अधिकार दान करो।

(३) सर्वत्र सर्वेन्द्रिय द्वारा मैं तुम्हारा प्रियकार्य साधन कर सकूँ। जीव जगत्का समस्त दुख दूरकर उनका आनन्द विधान करो, दुर्जनको सज्जन करो; सज्जन शान्त और बन्धनमुक्त होकर और लोगोंकी मुक्तिकी व्यवस्था करें।

तब भगवान देखते हैं कि भक्त उनकी इच्छाके अतिरिक्त और कुछ नहीं माँगता। यही है प्रकृत निष्काम प्रार्थना। यही है पूर्ण आत्मनिवेदन एवं भगवदिच्छा-पूरण।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैं अपने इहलोक और परलोकके लिए कुछ नहीं चाहता। बिना माँगे जिन्होंने मुझे ये देह-इन्द्रिय-प्राण-मन-बुद्धि दिये हैं एवं इनकी तृप्ति और भोगकी पूरी व्यवस्था की है, मेरा कोई अभाव नहीं रखा, मुझे सुखी रखनेमें जो सर्वदा व्यस्त हैं, मुझको पूर्ण परिणति दान किये बिना—अपने भावसे सम्पूर्णतः परिभावित किये बिना—जिनका निस्तार नहीं उनसे अब और मैं क्या प्रार्थना करूँ। तथापि हे भगवन्! यदि मेरे मुखसे तुम कुछ प्रार्थना सुनना चाहते हो तो मेरी यही प्रार्थना है कि सर्वत्र तुम्हारी निगूढ़ इच्छा—जिस हेतु तुमने यह प्रपंच रचा है—पूर्ण सफलता लाभ करे; तुम स्वयं तृप्त होकर मुझे तृप्ति दान करो; इस जगत्में तुम्हारा स्वर्गराज्य आविर्भूत हो; सर्व जीवका सर्वविध कल्याण हो; सब सुखमें रहें।

❀ अन्याभिलाषिताशून्या कृष्णसुखात्मिका हि या।
अहैतुक्यव्यवहिता भक्तिर्मे दीयतां प्रभो ॥७७॥

या (वह भक्ति) अन्याभिलाषिताशून्या (जिनमें भगवानको पानेकी इच्छाके अतिरिक्त और कोई इच्छा नहीं है) कृष्णसुखात्मिका हि (जिसमें कृष्णको सुखी करनेकी ही एकमात्र इच्छा है) अहैतुकी (जिसमें भगवानके अतिरिक्त और कोई प्रार्थनीय विषय नहीं है) अव्यवहिता (जिसमें कोई विच्छेद अथवा बाधा नहीं है) प्रभो (हे निग्रह-अनुग्रह कर्ता) मे (मुझको) भक्तिः (वही भक्ति) दीयतां (प्रदान करो)।

अर्थात् मैं तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ भी जाननेकी या सोचनेकी इच्छा न करूँ। तुम्हारे प्रिय कार्यके अतिरिक्त और कोई कार्य करनेमें समर्थ न होऊँ।

न धनं न धनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥७८॥

जगदीश (हे जगदीश) न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा कामये (मैं धन, जन, सुन्दरी स्त्री, कवित्व शक्ति ये सब कुछ भी कामना न करूँ)। मम जन्मनि जन्मनि (मेरे जन्म-जन्ममें) त्वयि ईश्वरे (तुम ईश्वरमें) अहैतुकी भक्तिः भवतात् (अहैतुकी भक्ति होवे)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात्, हे जगदीश, मैं केवल तुम्हारे ऊपर अहैतुकी अचला भक्ति रखना चाहता हूँ।

❀ ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥७९॥

देव सवितः (हे सवितृदेव) विश्वानि (सर्व प्रकारके) दुरितानि (अशुभ पाप) परासुव (नष्ट हों), यद् भद्रं (जो शुभ है, कल्याणकर है) नः तत् आसुव (हमारे निकट वही आविर्भूत हो)।

अर्थात् जगत्में सब पाप दूर होकर भूलोकमें तुम्हारा स्वर्ग-राज्य स्थापित हो।

❀ ॐ असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मामृतं गमय आविरावीर्म एधि।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥८०॥

असतः (असत्से) मा (मुझको अर्थात् जगत्के समस्त जीवोंको) सद् गमय (सत्में ले चलो), तमसः (अन्धकारसे) मा (मुझको) अमृतं गमय (अमृतमें ले चलो), आविः (हे स्वप्रकाश) आवीः मे एधि (मेरे ज्ञान नेत्र खोलकर मेरे निकट प्रकाशित हो) रुद्र (हे रुद्र) यत् ते दक्षिणं मुखं (तुम्हारा जो कल्याण-कारी वराभयप्रद मुख है) तेन मां नित्यं पाहि (उसके द्वारा सर्वदा मेरी रक्षा करो)।

अर्थात् मुझे विषय-विषसे अपने आनन्दधाममें ले चलो। मेरा अज्ञान-अन्धकार दूर करो। हे प्रकाशस्वरूप, मेरे निकट चिर प्रकाशित रहो। कुपथसे रक्षित होते समय मैं तुम्हारे स्नेहावनत नेत्र देख सकूँ, इससे मुझे दंडभोगमें कष्ट नहीं होगा। तुम जब आवश्यक समझो तो चिकित्सककी भांति, मुझे बचानेके लिए, मेरे फोड़े पर अस्त्र प्रयोग करना, मेरे लिए कठोर व्यवस्था करना किन्तु मैं उस समय भी तुम्हारी मंगलमय करुण स्नेहदृष्टिको देखकर शान्त रह सकूं। मेरा समस्त हताश भाव बिलकुल दूर हो जाय।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम भद्रं चक्षुभिरवलोकयाम।
भद्रं मनोभिश्चिन्तयाम भद्रं बाहुभिः साधयाम ॥८१॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भद्रं (मंगलमय वाणी) कर्णेभिः (कानों द्वारा) श्रृणुयाम (हम सुनें) भद्रं (मंगलमय दृष्य) चक्षुभिः (आँखों द्वारा) अवलोकयाम (हम देखें) मनोभिः (मन द्वारा) भद्रं (शुभ) चिन्तयाम (चिन्ता करें) बाहुभिः (हाथों द्वारा) भद्रं (शुभ कर्म) साधयाम (साधन करें) ।

अर्थात् मैं सर्वेन्द्रिय द्वारा अपने हृषीकेशकी, सर्वेन्द्रिय नियामककी, पूजा करना चाहता हूं । 'हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुत्तमा' । मैं समस्त शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धादिको तुम्हारा दान समझकर आदर सहित ग्रहण कर सकूं । मैं कभी भी किसीके व्यवहारसे धैर्यच्युत न होऊँ और सबके लिए हृदयसे कल्याण प्रार्थना करता रहूं । जीवके हित साधनमें मेरा जीवन उत्सर्गीकृत हो ।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥ ८२॥

अत्र (इस जगतमें) सर्वे सुखिनः सन्तु (सब सुखी हों) सर्वे निरामयाः सन्तु (सब नीरोग हों), सर्वे भद्राणि पश्यन्तु (सब शुभ दर्शन करें), कश्चित् दुःख मा आप्नुयात् (कोई भी दुःखको प्राप्त न हो) ।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥८३॥

सर्वः दुर्गाणि तरतु (सब विपदसे उत्तीर्ण हों) सर्वः भद्राणि पश्यतु (सब मंगल दर्शन करें), सर्वः सद्-बुद्धिम् आप्नोतु (सबको सद्बुद्धि प्राप्त हो) सर्वः सर्वत्र नन्दतु (सब सर्वत्र आनन्द करें) ।

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ॥८४॥

दुर्जनः सज्जनः भूयात् (दुर्जन सज्जन हो जाये), सज्जनः शान्तिम् आप्नुयात् (सज्जन शान्ति लाभ करे), शान्तः बन्धेभ्यः मुच्येत (शान्त बन्धनसे मुक्त हो जाय), मुक्तः च अन्यान् विमोचयेत् (और मुक्त दूसरोंको बन्धन-मुक्त करे) ।

सुना जाता है कि भगवान बुद्ध किसीके घरसे चलते समय मन ही मन इस प्रकारका आशीर्वाद करते थे ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरे ज्ञान, प्रेम, शक्ति सब तुम्हारे प्रकाश हैं। मेरा अहंकार मेरे और तुम्हारे बीचमें सिर उठाकर, तुमको ढककर, वृथाकर्त्तृत्वाभिमानके प्रभावसे स्वयं कर्त्ता बनकर, सब विकृत न करने पाय। मेरे कार्य, भाव और वचन द्वारा तुम्हारी महिमा कीर्त्तित हो। मैं अपना गौरव प्रकाशकर अपनेको छोटा न करूँ। मैं तुम्हारी सन्तान हूँ, तुम्हारे प्रियकार्य साधनमें नियुक्त हूँ—यह मानो सब समझ सकें।

प्रणाम

प्रणामके समय अनुभव करना चाहिये कि मेरा कुछ भी नहीं है, सब उनका है अर्थात् 'न मम'— मेरा कुछ नहीं है। मैं उनके हाथका यंत्र हूं, वे इस यंत्रके चालक हैं—यह उपलब्धकर साधक अपना पृथक् अस्तित्व लोप कर देता है और भगवानमें पूर्णरूपसे तन्मयता लाभ करता है।

प्रणामका अर्थ है 'पूर्णतः नत होना'। सब प्रकारकी अहंताको, निज-सुख-स्पृहाको, अपनी इच्छाको विसर्जनकर प्रणम्यके चरणोंमें आत्मनिवेदन करना—Total and Unconditional Surrender to the Will of God—भगवदिच्छाके आगे अपनी इच्छाको सम्पूर्णतः बिना किसी शर्त्तके उत्सर्ग करना। माँगनेकी प्रवृत्ति रहनेसे प्रणाम सिद्ध नहीं होता।

प्रणाम उपासनाकी परिसमाप्ति सूचित करता है। सर्वप्रथम गुरुको ही प्रणाम करना आवश्यक है क्योंकि वे ही पथ-प्रदर्शक हैं। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और अपनेको उनके अनुगत समझना गुरु-प्रणामका उद्देश्य है। पुरुषोत्तमभावके स्फुरणके पश्चात् जब यह भाव हृदयमें दृढ़मूल हो जाता है तब इसके स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप सर्वव्यापी परब्रह्मका संधान मिलता है। सर्वव्यापी परब्रह्मको प्रणाम करनेके बाद और कोई प्रणम्य बाकी नहीं रहता। यही प्रणामका अवसान है।

गुरु-प्रणाम—"चराचर (स्थावर-जंगम) सृष्टि समष्टिभावमें अखंड-मंडलरूपमें प्रतिभासमान होती है। अतीत-अनागत-वर्तमान, दूर और निकटके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब देश एवं कार्य और कारणरूपमें सब पदार्थ इसी मंडलके अन्तर्गत हैं। इसी-का नाम विश्व है। जो कुछ है इसीमें है इससे बाहर कुछ नहीं है। इस चराचर जगत्को जो ओत-प्रोतरूपसे व्याप्त किये हुए हैं वे ही चैतन्य अथवा ब्रह्म हैं। जो इस व्यापक चिन्मय सत्ताको हमारी अन्तर्दृष्टिके सम्मुख प्रकाशित कर देते हैं, जिनकी कृपासे यह ब्रह्मपद प्रत्यक्ष होता है—वे श्रीगुरु हैं। केवल गुरु निष्क्रिय हैं; गुरुशक्ति श्रीगुरुके साथ अभिन्नरूपमें वर्तमान रहे बिना गुरु जीवोद्धाररूप अनुग्रह-कार्य नहीं कर सकते। इसलिए केवल गुरुको प्रणाम न कर श्री-युक्त गुरुको प्रणाम करना विधेय है।"

ॐ अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥८५॥

अखंडमंडलाकारं (अखंडमंडलाकारमें पूर्ण और ब्रह्मांडव्यापी सर्वभूतमें पूर्णतः विराजमान) येन चराचरम् व्याप्तम् (जिनसे चराचर जगत् व्याप्त है अर्थात् जो क्षराक्षररूपमें सब तत्वोंमें विराजमान रहते हुए भी तत्वातीत हैं) तत्पदं (भगवानके उस परम पद और उसकी प्राप्तिके उपायको) येन दर्शितम् (जो दिखा देते हैं) तस्मै श्रीगुरवे नमः (उन श्रीयुक्त गुरुदेवको नमस्कार)।

अर्थात् अपनी अहंता दूरकर मैं उनके शरणापन्न हो गया। यहाँ मंडलाकार शब्दका तात्पर्य यह है :—वृत्त (circle) को मंडलाकार कहते हैं क्योंकि उसके केन्द्र (centre) से परिधि (circumference) तक जितनी सरल रेखाएँ खींची जाँय सब समान होती हैं। हमारे इस चराचर ब्रह्मांडके केन्द्रमें भगवान अवस्थित हैं, वे सब विषयमें पूर्ण हैं, उनसे जो ज्योति चारों तरफ फैली हुई है वह अनन्त प्रसारित है, इसलिए समान है। अतः ब्रह्म एवं उनकी ज्योतिसे जो वस्तु बनेगी वह निश्चय मंडलाकार होगी।

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः॥८६॥

मन्नाथः (मेरे जो नाथ—अर्थात् विधाता और रक्षाकर्त्ता हैं) श्रीजगन्नाथः (वे श्रीजगन्नाथ हैं अर्थात् समस्त जीवोंके विधाता और रक्षाकर्त्ता हैं), मद्गुरुः (मेरे गुरु) श्रीजगद्गुरुः (समस्त जगत्के गुरु—ज्ञान-दाता हैं),

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

ममात्मा (मेरा आत्मा ही) सर्वभूतात्मा (सब भूतोंका आत्मा—अन्तर्यामी चालक—है) तस्मै श्रीगुरवे नमः (उन गुरुदेवको नमस्कार)।

जिन गुरु के विषयमें यह कहा गया है वे प्रत्येक जीवके गुरु हैं, समस्त जगत्के ज्ञानदाता-गुरु हैं। इसलिए मेरे गुरु और जगद्गुरु इन दोनोंमें कोई भेद नहीं। गुरुतत्व अखंड है–यह धारणा सर्वदा करनी होगी। जो सबके भीतर बैठे मुझको और सबको पालनकर रहे हैं, जो सबके द्वारा मुझको और सबको शिक्षा दे रहे हैं, जो मेरे और सबके भीतर एक ही आत्मरूपमें अवस्थित हैं, मैं उन सर्वव्यापी ज्ञानाधार आश्रयदाता गुरुदेवको नमस्कार करता हूँ। वे गुरु विश्वमय होते हुए भी विश्वातीत हैं, कर्मके नियन्ता होते हुए भी उदासीन हैं। वे 'अनासक्त अनुरागी, संसारी संसारत्यागी' हैं। वे क्षरके अतीत हैं एवं अक्षरसे भी उत्तम होनेके कारण पुरुषोत्तम कहलाते हैं। हम उन्हीं पुरुषोत्तमको प्रणाम करते हैं। याद रखना होगा कि जितने विभूतिमत् पदार्थ हैं वे सभी हमारे इष्टकी मूर्ति हैं। जब तक हम समस्त विभूतिमत् पदार्थोंको, यहाँ तक कि समस्त जीवोंको, प्रणाम न कर सकेंगे तब तक हमारा प्रणाम सार्थक नहीं होगा।

❀ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णाय परमात्मने।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे ब्रह्मसाक्षिणे ॥८७॥

सच्चिदानन्दरूपाय (सच्चिदानन्दस्वरूप) कृष्णाय (चित्ताकर्षणकारी) परमात्मने (परमात्मस्वरूप) वेदान्तवेद्याय (वेदान्तवेद्य) ब्रह्मसाक्षिणे (साक्षात् ब्रह्मस्वरूप, जिनको जान लेनेसे हम ब्रह्मका अस्तित्व स्वीकार करनेको बाध्य होते हैं) गुरवे नमः (श्रीगुरुदेवको, ज्ञानदाताको, नमस्कार)।

अर्थात् उनकी विधातारूपमें भक्तिकर उनके विधानानुकूल चलनेको दृढ़-प्रतिज्ञ होऊँगा।

❀ कृष्णं स्मरामि ममैकवल्लभं, कृष्णं भजामि ममैकरक्षकम्।
कृष्णं जपामि ममैकसाधनं, कृष्णं नमामि ममैकजीवनम् ॥
सर्वस्वं मे कृष्णचन्द्रो दयालु, नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥८८॥

(३ बार)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मम एकवल्लभं (मेरे एकमात्र प्रियतम) कृष्णं स्मरामि (श्रीकृष्णको स्मरण करता हूँ) मम एक रक्षकम् (मेरे एकमात्र रक्षक) कृष्णं भजामि (श्रीकृष्णको भजता हूँ) मम एकसाधनं (मेरे एकमात्र साधन) कृष्णं जपामि (श्रीकृष्णका नाम जपता हूँ) मम एकजीवनम् (मेरे जीवनके एकमात्र पाथेय) कृष्णं नमामि (श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूं)। दयालुः कृष्णचन्द्रः (परम दयालु श्रीकृष्णचन्द्र ही) मे सर्वस्वं (मेरे यथासर्वस्व हैं) अन्यं न जाने (श्रीकृष्णके अतिरिक्त मैं और किसीको नहीं जानता) न एव जाने (मुझे और किसीको जाननेकी कोई जरूरत भी नहीं) न जाने (और किसीको जाननेकी शक्ति भी नहीं है।)

वल्लभं—अर्थात् प्रिय। जिनको एक बार देख लेनेसे ही प्रीति किये बिना, आत्मसमर्पण किये बिना, नहीं रहा जा सकता। रक्षकं—जो हमारे लिए समस्त प्रयोजनीय पदार्थोंकी व्यवस्था करते हैं (याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधीच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः)। साधनं—जिनको प्राप्त करनेके लिए उनको स्मरण करनेके अतिरिक्त और किसी साधनकी जरूरत नहीं होती। जीवनं—मेरे जीवनधारणके मेरी चरम सार्थकता लाभके, जो एकमात्र लक्ष्य हैं।

❀ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥८९॥ (३ बार)

[यहाँ हम अपने प्रियतम श्रीभगवान्‌को] कृष्णाय (रूपमें, सौन्दर्यमें, माधुर्यमें, सर्वचित्ताकर्षकको) वासुदेवाय (जो हमारे विशुद्ध चित्तमें आत्मप्रकाश करनेके लिए सचेष्ट हैं उन वासुदेवको) हरये (जो अपने सौन्दर्य और माधुर्यसे हमारा चित्त हरणकर हमको अपने पास ले जानेमें तत्पर हैं उनको) परमात्मने (जो परमात्मरूपमें हमारे हृदयमें अधिष्ठित हुए हमारे देहयन्त्रको चला रहे हैं उनको) प्रणतक्लेशनाशाय (जो आश्रित भक्तोंके समस्त क्लेश दूर करनेके लिए बेचैन हैं उनको) गोविन्दाय (जो हमारी इन्द्रियोंको अपनी शक्तिसे शक्तियुक्तकर, तद्भावसे परिभावितकर, हमारी सर्वेन्द्रिय द्वारा आस्वादित होनेके लिए सचेष्ट हैं उनको) नमः नमः (बार-बार प्रणाम करता हूं)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्णाय—जिनके रूप और गुणसे मुग्ध होकर उनको प्राप्त करनेके लिए हम लुब्ध हो जाते हैं। वासुदेवाय—जिनको प्राप्त करनेके लिए हमें अपने सब तत्त्वोंको विशुद्ध सत्त्वमें परिणत करना आवश्यक है। हरये—जिन्होंने अपने सौन्दर्य-माधुर्यादि गुणोंसे हमारे चित्तको ऐसा हरण किया है कि और कुछ सोचनेकी क्षमता ही नहीं रही। परमात्मने—जो हमारे प्रकृत चालक अन्तर्यामी हैं, जिनको देखने या सुननेके बाद साधककी इन्द्रियादिको और किसी तरफ जानेका सामर्थ्य नहीं रहता। प्रणतक्लेशनाशाय—जिनके नामसे सब दुःख निवृत्त हो जाते हैं। गोविन्दाय—जो हमारी प्रत्येक इन्द्रिय द्वारा आस्वादित हैं।

❀ हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते।
गोपेश गोपिकाकान्त राधाकान्त नमोऽस्तु ते ॥९०॥

हे कृष्ण (हे सर्वचित्ताकर्षक) करुणासिन्धो (हे दयासागर) दीनबन्धो (हे अनाथ-शरण) जगत्पते (हे सम्पूर्ण जगत्के विधाता, पालनकर्त्ता) गोपेश (हे गोपोंके ईश्वर—सब जीवोंके ईश्वर) गोपिकाकान्त (मधुरभावान्न भक्तों-के वरणीय-तत्त्व) राधाकान्त (जो कृष्णसुखैकतात्पर्या कृष्णगतप्राणा श्रीराधिका-के वल्लभ हैं) ते (तुमको) नमः अस्तु (मेरा नमस्कार हो)।

अर्थात् मेरा तन-मन-धन तुम्हारे प्रीति-सम्पादनमें, तुम्हारे प्रियकार्य साधनमें, नियुक्त रहे। **याद रखना होगा कि गोपी अथवा राधातत्व केवल स्त्री-देहमें सीमाबद्ध नहीं हैं।** जो साधक कृष्णसुखैकतात्पर्य है, जो भगवत्-भावका रक्षाकर्त्ता और सहायक है, वही गोपी है। 'गोपायति आत्मानं परमा-त्मानं या सा गोपी'। जिस साधकके भीतर आश्रयतत्वका पूर्ण विकास साधित होता है, जो साधक-जीवनका पूर्ण आदर्श है, वही श्रीराधा है। 'कृष्णमयी कृष्ण जार अन्तरे बाहिरे। जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े ताहाँ कृष्ण स्फुरे'॥ जिनको आश्रयकर श्रीकृष्ण पूर्णतया आत्मप्रकाश करनेमें, लीलारस विस्तार करनेमें, समर्थ हैं—वे ही श्रीराधा हैं (Perfect medium for the manifestation of God)।

❀ श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥९१॥ (३ बार)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

श्रीकृष्ण (तुम सर्वचित्ताकर्षक हो) गोविन्द (तुम इन्द्रियोंके चालक एवं इन्द्रियों द्वारा आस्वाद्य हो) हरे (तुम अपने माधुर्यसे जीवका चित्त हरण करते हो) मुरारे (तुम जीवके शत्रुओंके विनाशकारी हो, भगवत्प्राप्तिकी सब बाधा दूर कर जीवकी भगवत्-प्राप्तिमें सहायक हो) हे नाथ (तुम जीवके यथासर्वस्व हो) हे नारायण (तुम जीवके एकमात्र आश्रय हो) हे वासुदेव (तुम जीवके विशुद्ध चित्तमें आविर्भूत होकर उसका जीवन सार्थक करते हो) [तुमको नमस्कार] ।

पूजाके समय असीम भगवानको अपनी धारणाकी सुविधाके लिये ससीम इष्टमें आवाहनकर, पूजाकर, फिर उनका सीमाबद्ध भाव दूरकर उनको असीम भाव में उपलब्ध करनेकी व्यवस्था की गई है । जिससे कोई भूलसे भगवत्तत्वको अपने इष्टमें सीमाबद्धकर साम्प्रदायिक भावकी सृष्टि न कर बैठे इसलिए सबको अपने इष्टका सर्वव्यापी भाव हृदयंगम करनेकी, सब भूतोंमें उनका दर्शन करनेकी, सब भूतोंमें उनकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा की गई है । इसी कारण सम्भवतः महाप्रभु श्रीगौरांगदेव तीर्थभ्रमणके बहाने सब सम्प्रदायोंके मन्दिरोंमें इष्टदर्शन और इष्टका गुणानुकीर्त्तन करते घूमते थे ।

❀ यस्त्वां पश्यति सर्वत्र सर्वंच त्वयि पश्यति ।
वासुदेवः सर्वमिति यः पश्यति स पश्यति ।।९२।। (३ बार)

यः (जो) त्वां (तुमको) सर्वत्र (सब भूतोंमें) पश्यति (देखता है) सर्वं च (और सब कुछ) त्वयि (तुममें)पश्यति (देखता है), यः (जो) वासुदेवः सर्वं इति (सब कुछ एकमात्र वासुदेव ही हैं—इस प्रकार) पश्यति (देखता है) सः पश्यति (वही प्रकृत रूपमें देखता है अर्थात् उसीका दर्शन सार्थक है) ।

जिस अहं-बुद्धिने अखंड तत्त्वको खंडितरूपमें बोध कराके समस्त अनर्थकी सृष्टि करी थी उस अहं-तत्त्वके सम्पूर्णतः दूर हो जानेके कारण धारक सर्वत्र भगवद्दर्शनकर एक अखण्ड अद्वय तत्त्वमें निमज्जित हो जाता है ।

"इस स्थलमें सर्वत्र आत्मदर्शन एवं तदनन्तर आत्मामें सर्व दर्शन निर्देश किया गया है । सर्वत्र आत्मदर्शन पहले होता है । सब भूतोंमें आत्मदर्शनके साथ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब भूतोंका दर्शन भी होता है। यह सर्व दर्शन ही भेद दर्शन है और आत्मदर्शन अभेद-दर्शन है। बाह्यचक्षुकी सहायतासे घट-वृक्ष-मनुष्य आदिका दर्शन और अन्तर्दृष्टिके द्वारा आत्मदर्शन सिद्ध होता है। बहिर्दृष्टि एवं अन्तर्दृष्टि दोनों खुली होनेसे सब भूतोंमें आत्मदर्शन होता है। बहिर्दृष्टि किंचित् अन्तर्मुखी हुए बिना अन्तर्दृष्टि नहीं खुलती। बहिर्दृष्टि जितनी अन्तर्मुखी होगी अन्तर्दृष्टि उतनी ही जागरित होगी। बहिर्दृष्टि पूर्ण निरुद्ध हो जानेपर पूर्ण आत्मदर्शन—शुद्ध चैतन्यरूपी आत्मका दर्शन—होता है। इस अवस्थामें केवल आत्मदर्शन ही होगा। ये विशुद्ध चैतन्य हैं। बाह्यदर्शन का संस्कार भोग या ज्ञान द्वारा क्षीण हो जानेपर एकमात्र आत्मदर्शन हो रह जाता है। यह निर्विकल्प दर्शन है। इस ज्ञानका भी निरोध हो जानेपर आत्मस्वरूपमें स्थिति लाभ होती हैं, तब आत्म-दर्शन भी नहीं होता। अतएव, सर्वत्र आत्मदर्शनसे शुद्ध आत्मदर्शन उदित होता है और चरमावस्थामें वह भी नहीं रहता। आत्मामें सर्वदर्शन तब किस प्रकार होगी क्योंकि इन्द्रिया तो निरुद्ध हो गईं।

रहस्यविद् इन्द्रियोंका निरोव नहीं करते—निरोध्र करनेकी इच्छा भी नहीं करते। इन्द्रियोंकी मलोनता दूर कर उनको चिच्छक्तिरूपमें परिणत करनेकी चेष्टा करते हैं। इससे इन्द्रियोंका दोष कट जाता है किन्तु उनका वैशिष्ट्य अथवा गुण रह जाता है। शुद्ध इन्द्रियोंकी निवृत्ति कभी नहीं होती। नित्य लीलामें भी शुद्ध इन्द्रियोंका कार्य देखा जाता है। अन्तर्दृष्टि जैसी सत्य है बहिर्दृष्टि भी वैसी ही सत्य हैं, मिथ्या केवल आगन्तुक मलीनता है। अन्तर्दृष्टिमें जो एक हैं वहिर्दृष्टि-में वे ही अनन्त हैं। एक ही अनन्त हैं; अनन्त हो एक हैं, इसमें कोई मिथ्या नहीं। इन्द्रियाँ शुद्ध हों तो वृत्तिहीन नहीं होना पड़ता। शुद्ध वृत्ति चिन्मय है। इस अवस्थामें आत्मामें सर्वभूत दर्शन होता है क्योंकि सर्वभूत आत्माकी ही चिच्छक्तिका खेल है; 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' एवं 'सर्वंच मयि पश्यति'—एक ही अवस्थाकी अनुभूति नही हैं। प्रथम अनुभूतिमें इदं-रूपमें प्रतीति रहती है। यह असंस्कृत इन्द्रियोंके वृत्तिजन्य ज्ञानके साथ उदित होती है। ब्रह्म ज्ञानाभासका निदर्शन है। द्वितीय अनुभूति, आत्मसाक्षात्कारके पश्चात्, विशुद्धचैतन्यरूपमें, विशुद्धचिच्छक्तिरूपमें, अनन्त वैचित्र्यका साक्षात्कार है। यह आत्मा द्वारा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्माका ही साक्षात्कार है। एक अपनेको ही बहुरूपमें देखते हैं, इदं-रूपमें नहीं, आत्म-रूपमें। भगवद्दर्शनके पूर्व जो जगत् दिखाई देता है वह प्राकृत जगत् है। भगवद्दर्शनके पश्चात् जो जगत् दिखाई देता है वह अप्राकृत धामस्थित जगत् है। इसको जगत् नहीं कहा जाता, यह आत्माका घनीभूत अप्राकृत धाम और परिकरतत्व सहित दृश्यतत्व है।''

श्रीराधा कृष्णदर्शनके पश्चात् जो कुछ देखती थीं वह सब कृष्णमय दिखाई देता था—''जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े ताहाँ कृष्ण स्फुरे।'' ''यो मां पश्यति सर्वत्र'' में हम 'नेति नेति' साधनाका प्रभाव, सोनेको तपाकर खोट दूर करनेकी विधि, मूलाधारसे सहस्रारकी ओर ऊपर उठनेकी व्यवस्था देखते हैं। ''सर्वं च मयि पश्यति'' में हम खरे सोनेकी विविध विभूतिकी, परिकर और धामादिकी, अप्राकृत लीला आस्वाद करनेकी योग्यता लाभ करते हैं।

ॐ देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधिषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥९३॥

यः देवः अग्नौ (जो देवता अग्निमें हैं) यः अप्सु (जो जलमें हैं) यः विश्वं भुवनम् आविवेश (जो विश्वभुवनको व्याप्त किये हुए हैं) यः ओषधिषु (जो ओषधिमें हैं) यः वनस्पतिषु (जो वनस्पतिमें हैं) तस्मै देवाय नमः नमः (उन देवताको बार-बार नमस्कार करता हूं)।

अर्थात् जीवजगत्को श्रीभगवानकी मूर्ति जानकर मैं सबके भीतर उनका दर्शन, ध्यान और सेवा करनेकी चेष्टा करता हूं—मैं सबके आगे नत हूं।

ॐ यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो देवस्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥९४॥

यस्मिन् सर्वं (जिनमें सब हैं) यतः सर्वं (जिनसे सब हैं) यः सर्वः (जो सब हैं) सर्वतः च यः (और जो सर्वत्र हैं) यः च सर्वमयः देवः (और जो सर्वमय देवता हैं) तस्मै सर्वात्मने नमः (उन सर्वात्मा श्रीभगवानको नमस्कार)।

अर्थात् जो स्वरूपतः अविभक्त होते हुए भी सब विभक्तियोंमें विभक्त और लीलारत हैं उन लीलामयकी अनन्त लीला द्वारा हम उनके अखंड अद्वय ज्ञान-स्वरूपको आस्वाद करनेकी चेष्टा करते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

खं वायुमग्निं सलीलं महींच
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत् किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥९५॥

खं (आकाश) वायुं (वायु) अग्निं (अग्नि) सलीलं (जल) महीं च (एवं पृथ्वी) ज्योतींषि (सब ज्योतिर्मय पदार्थ) सत्वानि (समस्त प्राणी) दिशः (सब दिशाएँ) द्रुमादिन (वृक्षादि) सरित्-समुद्रान् च (नदी समुद्र आदि) यत् किंच भूतं (और जो कुछ है तत् समुदयको) हरेः शरीरं (श्रीहरिकी विभूति या अंश है) अनन्यः (अन्य कुछ नहीं है— ऐसा मनमें निश्चयकर) प्रणमेत् (विधिपूर्वक प्रणाम करता हूं) अर्थात् जीव-जगत्को परमात्माकी मूर्ति मानकर सबके निकट नत रहना चाहिए ।

अवकाश हो तो श्रीमूर्तिदर्शनके श्लोक जो पीछे दिये गये हैं इस स्थलमें पाठ कर लिये जांय ।

स्तनन्धयानां स्तनदुग्धपाने मधुव्रतानां मकरन्दपाने ।
दाने दयालोरथ भक्तगाने पश्यामिमूर्तिं करुणामयीं ते ॥९६॥

स्तनन्धयानां (दूध पीनेवाले बच्चोंको) स्तनदुग्धपाने (मातृस्तनदुग्ध पीते देखकर) मधुव्रतानां मकरन्दपाने (भ्रमण आदिको पुष्पोंका मकरन्द पान करते देखकर) दयालोः दाने (दयालु व्यक्तिको दान करते देखकर) अथ भक्तगाने (और भगवद्भक्तोंको श्रीभगवानका नाम गान करते देखकर) ते करुणामयीं मूर्ति पश्यामि (तुम्हारी करुणामयी मूर्ति मैं देखता हूं) ।

वनस्पतौ भूभृति निर्झरे वा कूले समुद्रस्य सरित्तटे वा ।
यत्रैव चित्ते समुदेति भक्तिस्तत्रैव पश्यामि तवैव मूर्त्तिम् ॥९७॥

वनस्पतौ भूभृति निर्झरे वा (वनस्पति, पर्वत अथवा झरनेमें) समुद्रस्य कूले (समुद्रके किनारे) सरित्तटे वा (अथवा नदीतटमें) यत्र एव (और जहाँ भी) चित्ते भक्तिः समुदेति (चित्तमें भक्तिका आविर्भाव होता है) तत्र एव (वहाँ ही) तव एव मूर्तिं पश्यामि (तुम्हारी मूर्ति देखता हूँ) ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् भगवान सर्वभूतमें विराजमान हैं; चित्त शुद्ध और शान्त होने से उनका दर्शन लाभ हो जाता है। जगत्की सृष्टि आत्मप्रकाशके लिए है। जगत्का सब सौन्दर्य, माधुर्य और आनन्द उन्हीं परम सुन्दरके विभिन्न गुण और विभिन्न भावके आत्मप्रकाश हैं। इसी प्रकाशके भीतरसे हमें मूल प्रस्रवणकी ओर जाना होगा। मूर्ति अवलम्बन कर हम अमूर्त्तकी तरफ जायेंगे। पृथिवीका सौन्दर्य हमें परम सुन्दरकी ओर ले जायेगा। तभी सृष्टिके भीतर स्रष्टाको जानने का और प्राप्त करने का अधिकार लाभ होगा।

❀ नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्त्ते,
नमस्ते नमस्ते हरेऽचिन्त्यशक्ते।
नमस्ते नमस्तेऽखिलाश्चर्यसिन्धो,
महादेव शम्भो नमस्ते नमस्ते ॥९८॥

विभो विश्वमूर्ते (हे विभो, हे विश्वरूपधारी) ते नमः (तुमको बारंबार नमस्कार) हरे (हे चित्तहरणकारी हरि) अचिन्त्यशक्ते (हे अचिन्तनीय शक्तिमान पुरुष) ते नमः ते नमः (तुमको बारंबार नमस्कार) अखिलाश्चर्यसिन्धो (हे सर्व आश्चर्यके समुद्र) ते नमः ते नमः (तुमको बारंबार नमस्कार महादेव शम्भो (हे महादेव, हे मंगल-विधानकारी) ते नमः ते नमः (तुमको बारंबार नमस्कार)

जो भगवान भुवनमोहन रूपमें हमारे सामने उपस्थित हैं, जिनकी सौन्दर्य-माधुर्यादि शक्तिने हमारे चित्तको सम्पूर्णतः हरण कर लिया है, जिनकी कृपासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है, ऐसे देवादिदेव परम दयालु प्रेममय भगवानके चरणोंमें हमारा नमस्कार।

साधक पहले सर्वभूतमें भगवद्दर्शन लाभ करता है। इसके बाद समाधियोग द्वारा अपने सब तत्वोंमें भगवानके सब तत्त्व अनुभव कर अपने भीतर इष्टको विसर्जन कर, इष्टमय हो जानेपर, भीतर और बाहरका एकत्व स्थापना हो जानेके फलस्वरूप, साधक एक अखण्ड अद्वैत तत्त्वमें प्रतिष्ठित हो जाता है। तत्पश्चात् यह अखंड तत्त्व मानो लीलाके हेतु अप्राकृत धाम-परिकररूपमें प्रकाशित होता है। तब भगवानके भीतर अप्राकृत जीव-जगत्का

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मप्रकाशरूप लीलारस उपलब्ध कर साधक स्वयं भी उस लीलामें योगदान करता है।

इस पूजामें हमें तीन तत्त्व उपलब्ध करनेका सुयोग मिला। प्रथम इष्टका आवाहन, द्वितीय इष्टभावमें स्थिति, तृतीय इष्ट का विसर्जन। असीम तत्त्व अव्यक्त, अचिन्त्य एवं जीवकी धारणाके अतीत हैं; उनको जाननेके लिए, प्राप्त करनेके लिए, हम ससीम इष्टके भीतर, पुरुषोत्तम तत्त्वके भीतर, उनका आवाहन करते हैं। तब असीम तत्त्व अपने सब भाव ससीम देहमें धारणकर, ससीम देहमें, हमारे निकट उपस्थित होते हैं। तदनन्तर उस ससीम देहमें असीमकी पूजादि साधनके फलस्वरूप वे इष्ट अपने ससीम भाव सहित मानो हमारे भीतर विसर्जित हो जाते हैं। इस विसर्जन क्रियाके द्वारा हम इष्टका तादात्म्य-भाव लाभकर इष्टका प्रकृत असीम भाव उपलब्ध करनेका सुयोग पाते हैं। ससीम आते हैं असीमसे असीम भाव लेकर। जब आते हैं तभी हम उनके भीतर ससीमको आस्वाद करनेका सुयोग पाते हैं। इसके बाद ससीमको असीममें मिलाकर हम एक अखंड, अद्वय, अनन्त, असीम भावमें निमज्जित हो जाते हैं।

इष्टको विसर्जन किया जाता है ज्ञान-गंगामें। ससीम पुरुषोत्तमको असीम तत्त्वसे आवाहन करके ले आते हैं। विसर्जनके फलस्वरूप इष्टको अपने भीतरके प्रत्येक तत्त्वमें अनुभवकर, स्वयं इष्टमय होकर, हम भी इष्टके सहित असीम अखंड तत्त्वमें निमज्जित हो जाते हैं। याद रखना होगा कि इष्टका ध्यान करनेका अर्थ ही है इष्टके प्रत्येक तत्वको अपने अनुरूप तत्त्वोंमें चिन्तनकर अपने सब तत्वोंको इष्ट भावसे परिभावित करना। मनुष्य जैसा सोचता है उसमें तन्मयता लाभकर वैसा ही हो जाता है। इष्टका ध्यान करते-करते हमारे भीतरके सब तत्व, लोह-चुम्बक स्पर्शकी भांति, इष्टमय हो जाते हैं। जनश्रुति है कि मृगके बच्चेका चिन्तन करते-करते एक साधक मृगमय हो गया था। हम इष्टका ध्यान करनेसे इष्टमय हो जाते हैं। जैसे कमलाके रोगीको सब पदार्थ पीले दिखाई देते हैं इसी प्रकार इष्टमय साधकको जगत् इष्टमय अनुभव होता है। 'जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े ताहाँ कृष्ण स्फुरे'।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तः प्रसुप्तस्य तवैव तत्त्वमिष्टे समारोप्य प्रपूजितंच।
दृष्ट्वा पूजान्ते वपुषि स्वकीये विसर्जनात् प्राप्तं तादात्म्यरूपम् ॥९९॥

अन्तः प्रसुप्तस्य तव तत्त्वं (भीतर सुप्त भावमें अवस्थित तुम्हारे तत्त्वको) इष्टे समारोप्य (अपनी इष्ट मूर्त्तिमें सर्वतः आरोपकर) प्रपूजितं च एव (ध्यान-धारणाकी सहायतासे वहाँ इष्टका स्वरूप उपलब्धकर—इष्टमय होकर) पूजान्ते (पूजाके अन्तमें) स्वकीये वपुषि दृष्ट्वा (अपनी देहके प्रत्येक तत्वमें उनका रूप और तत्व साक्षात्कारकर) विसर्जनात् (ज्ञानगंगामें विसर्जनके फलस्वरूप) तादात्म्यरूपं प्राप्तं (तादात्म्यरूप प्राप्त किया अर्थात् मैं मानो इष्टमय हो गया) ।

अपने सब तत्वोंमें अवस्थित श्रीभगवानको जाननेके लिए पहले उनको शास्त्र, गुरु एवं विवेककी सहायतासे इष्ट-मूर्त्तिमें आरोप किया गया; तब इष्टमूर्त्ति हमारे देहके भीतर अवस्थित चिन्मय श्रीभगवानकी जीवन्त विग्रह हो गई। इसके बाद उस सम्मुखस्थ इष्टमूर्त्तिमें भगवानके प्रकृत रूप और गुणादिका ध्यान करनेसे मैं ऐसा तन्मय हो गया कि मेरा अस्तित्व अनेकांश लोप हो गया अर्थात् मैं इष्टमय हो गया। इष्ट वस्तुतः समष्टिगत भगवत्-मूर्ति हैं। अपने भीतर उनकी अनुभूतिकी चरमावस्थामें मैं अपना व्यष्टि-भाव परित्यागकर समष्टिगत पूर्ण-सत्तामें डूब गया। चिकित्सा-विद्या प्राप्त करनेके लिए देह-तत्वका ज्ञान अपरिहार्य है। देह-तत्वकी उपलब्धिके लिए पहले एक शुष्क नरकंकालकी सहायता लेनी पड़ती है। उसकी अस्थियोंके ज्ञानसे हम अपनी देहकी अस्थियों-का ज्ञान लाभ करते हैं। फिर उन अस्थियोंमें मांश-पेशी-स्नायु एवं उनके कार्य कलापके चिन्तनसे हम यह आभास लाभ करते हैं कि वे अस्थियाँ जीवित नरमें किस प्रकार होंगी। इस क्रियाका नाम है प्राण-प्रतिष्ठा। प्रतिमामें मिट्टीके प्रलेपादि द्वारा हमारा प्राण प्रतिष्ठाका कार्य अंशतः साधित होता है। तत्-पश्चात् ध्यान द्वारा अनुभव करना चाहिए कि यह मूर्ति आदर्श मानवकी मूर्ति है; आदर्श पुरुषोत्तम इसके भीतर जागरित-बोधित होकर हमारे सामने जीवन्त रूपमें प्रकटित हैं। तभी हमारा बोधन-कार्य साधित होगा। इसके बाद पूजाकी सहायतासे, धारणा-ध्यान-समाधिकी सहायतासे, उस पुरुषोत्तम विग्रहको आत्म-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

निवेदनकर, अपना पृथक् अस्तित्व लोपकर, उसमें तन्मय हो जानेसे अनुभवमें आयेगा कि वे विग्रहस्थ पुरुषोत्तम मानो हमारी इस देहमें प्रकट हो रहे हैं। उनके पूर्ण विकाससे हम सम्पूर्णतः इष्टमय हो जाते हैं। तब बाहरको मूर्तिका ध्यान भी नहीं रहता। इसीका नाम है "विसर्जनात् प्राप्तं तादात्म्यरूपं।"

साधक पहले 'नेति नेति' साधनाके द्वारा वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती आवरण भेदकर आत्मदर्शन लाभ करता है। इसके बाद कुछ समय इस आत्म-भावमें स्थित रहकर, स्वरूपशक्तिके वैभव-रूप आतमाके भीतर अप्राकृत धामतत्व, परिकरतत्त्व, अप्राकृत जीव-जगततत्त्व आस्वाद करनेका सुयोग पाकर भगवानके लीला-सागरमें डूब जाता है।

यहाँ तक विचार करके अपना पृथक् अस्तित्व धीरे-धीरे भूल जानेकी चेष्टा की जाती है। तब भेदभाव दूर होकर एक अभेदभाव प्रस्फुटित होने लगता है। तब समझमें आता है कि इस पार और उस पार सभी पूर्ण स्वरूप है। पूर्णमें जो कुछ अर्पित होता है वह भी पूर्ण है, पूर्णसे जो कुछ पृथक्कृत होता है वह भी पूर्ण है, जो कुछ अवशिष्ट रह जाता है वह भी पूर्ण है, जो कुछ निर्गत होता है वह भी पूर्ण है। पूर्णके राज्यमें योगका फल भी पूर्ण है और वियोगका फल भी पूर्ण है। उसमें आविर्भाव और तिरोभाव, उत्थान और पतन, सुख और दुख, दूर और निकट, अतीत और अनागत सर्वत्र अखंड भावमें पूर्णतया विराजित हैं। इस पूर्ण भावकी स्वाभाविक स्फूर्ति है सर्वत्र अपनी आनन्दधाराको प्रत्यक्ष करना। प्रकृतिके सौन्दर्यमें, वायुके प्रवाहमें, सूर्यकी किरणोंमें, चन्द्रके आलोकमें, मनुष्यके कर्म और भावमें, समस्त व्यापारमें, एक असीम अनन्त महानन्दकी तरंग खेल रही है। इस चिदानन्दमय नित्यलीला-निकेतनमें अपने-आपको प्रतिष्ठित अनुभव करना होगा।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥१००॥

अदः पूर्णम् (जो दूर दिखाई देता है वह पूर्ण है) इदं पूर्णम् (जो समीप उपस्थित है वह भी पूर्ण है) पूर्णात् पूर्णम् आदाय (पूर्ण से पूर्णके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृथक्कृत हो जानेपर) पूर्णम् एव अवशिष्यते (जो बाकी रह जाता है वह भी पूर्ण है) ।

जो पूर्ण है वह कभी देश-काल-पात्र द्वारा खंडित नहीं हो सकता । जब उसके अतिरिक्त और न स्थान है, न काल है, न पात्र है तो उसको कौन खंडित करेगा ? किसके द्वारा वह खंडित होगा ? खंडांशोंके बीचमें अवकाश कहाँसे आयेगा ? अखंड पूर्ण कभी खंडित नहीं हो सकता । हम अज्ञानतावश जब उसको खंडित समझते हैं तो वह खंडन केवल हमारी कल्पनामात्र है, एक छाया अथवा प्रतिबिम्बमात्र है । प्रतिबिम्ब बिम्बकी ही छाया है । बिम्बका पूर्णत्व भी उसमें प्रतिबिम्बाकार रूपमें वर्त्तमान है । अतएव वह (छाया) भी पूर्ण है । प्रतिबिम्ब द्वारा ·बिम्बका कोई अंग ही नहीं होता; सुतरां प्रतिबिम्बित होकर भी बिम्बका पूर्णत्व स्थिर रहता है । इसीलिए शंकरने कहा है "अखंडं खंड्यते कथम् ।" यहाँ छिन्नमस्ता-तत्त्व, अविभक्तका विभक्त तत्त्व, आस्वादनीय है । याद रखना होगा कि स्वरूपतः अविभक्त पूर्णको खंडित नहीं किया जा सकता । हम बुद्धिके दोषसे अथवा संस्कारवशतः जब उसको खंडित समझते हैं तो उसका अस्तित्व हमारे संस्कार और अज्ञानतापर ही निर्भर करता है । वास्तवमें नित्य अखंड तत्त्व सर्वदा अखंडरूपमें ही अवस्थान करता है । इस अवस्थामें साधक जिस अखंड आनन्दसागरमें डूब जाता है वह वाक्य-मनके अगोचर है; उसको भाषामें प्रकाश करनेकी चेष्टा करनेसे ही भाषाका सीमाबद्ध भाव असीमको सीमाबद्ध कर देता है ।

❀ अहो निमग्नस्तवरूपसिन्धौ
पश्यामि नान्तं न च मध्यमादिम् ।
अवाक् च निःस्पन्दतरो विमूढः
कुत्रास्मि कोऽस्मीति न वेद्मि देव ॥१०१॥

अहो (अहा—हा) तव रूपसिन्धौ निमग्नः (तुम्हारे रूपसागरमें डूब गया हूं) न अन्तं न मध्यम् आदिं च पश्यामि (न आदि, न मध्य और न अन्त—कुछ नहीं देखता) । देव (हे देव) निस्पन्दतरः (जड़वत्की भांति) अवाक् विमूढः च (वाक्शून्य और विमूढ़ हो गया हूं) कुत्र अस्मि (मैं कहाँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

हूँ) कः अस्मि इति (मैं कौन हूं इत्यादि कुछ) न वेद्मि (नहीं जान पा रहा हूँ)। अर्थात् मैं तुम्हारे रूपसागरमें निमज्जित होकर आनन्दमें मुग्ध हो गया हूँ।

इस अवस्थामें अखंडरूप समुद्रमें निमग्न हो जानेसे उसका आदि-मध्य-अन्त कुछ नहीं दिखाई देता; अपनी वाक्शक्ति रहित हो जाती है; यह अत्याश्चर्य अपूर्व अवस्था भाषामें वर्णित होने योग्य नहीं। इस अवस्थामें अपना स्वरूप ढूंढ़नेसे नहीं मिलता—मैं कहा हूँ, क्या कर रहा हूँ, इसका भी ज्ञान नहीं रह जाता। एक अपूर्व तन्मयतामें अपना स्वरूप निमग्न हो जाता है।

त्रिशरण

ॐ कृष्णं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि ॥१०२॥

कृष्णं शरणं गच्छामि (कृष्णको आश्रयरूपमें ग्रहण करता हूँ), धर्मं शरणं गच्छामि (धर्मको आश्रयरूपमें ग्रहण करता हूँ), संघं शरणं गच्छामि (संघको आश्रयरूपमें ग्रहण करता हूं)।

मैं पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको अपने आदर्श इष्टरूपमें धारण करता हूं; मैं उनके प्रदर्शित धर्मको अपने आश्रयरूपमें ग्रहण करता हूं; वे जो सब जीवोंको एकता-बंधनमें बाँधकर एक अखंड अद्वय ज्ञानमें आबद्ध करनेके इच्छुक हैं, मैं उसी संघ-के कार्यमें जीवन उत्सर्ग करता हूँ।

इस आनन्दमय महासागरमें अवगाहनकर, स्वयं इस आनन्दसे एकता प्राप्त-कर, भगवानके मंगलमय निर्देशसे, उन्हींकी शक्तिके प्रभावसे, फिर अपनी व्यक्ति-गत-सत्तासहित जाग उठना होता है। इस अवस्थामें एकमात्र भगवदिच्छाका पूरण, जगत्सेवा अर्थात् विश्वका मंगल-साधन ही उद्देश्य रहता है। तब उनको स्मरणकर एवं उनको प्रणामकर स्वाभाविकरूपसे विश्वके मंगल-कार्यमें व्यापृत हो जाना होता है। इस दिव्य जीवनके मूलमें भगवत्-स्वरूप, भगवत्-प्रचारित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म एवं भगवद्भक्त—इन तीनों रत्नोंकी शरणागति विद्यमान है। श्रीकृष्ण स्वयं पुरुषोत्तम हैं, उनको आश्रयकर, उनका धर्म पालनकर, समस्त जीवोंमें एकता स्थापन करनेकी चेष्टा करनेके लिए चित्त दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाता है।

इस समय साधक सब जीवोंको आत्मभावमें एक सूत्रमें गुँथा हुआ देखकर ("सूत्रे मणिगणा इव"—गी० ७।७) सबको संघबद्ध करनेमें—सब एक ही अखंड अद्वय तत्त्वके पूर्ण प्रकाश, विभूति अथवा लीला-स्वीकृत विग्रह हैं, यह स्मरण करते हुए—बहुत्वमें एकत्व स्थापन करनेके लिए बद्धपरिकर होता है। समस्त कल्पित धर्मोंमें गीतोक्त परम भागवत धर्मका गूढ़ रहस्य हृदयंगमकर उस धर्म पालनमें दृढ़प्रतिज्ञ होता है। "यो मां पश्यति सर्वत्र" श्लोकको अनुभूतिके फलस्वरूप बहुमें एकत्वानुभूति साधित होती है। 'सर्वंच मयि पश्यति" भावके द्वारा एकके भीतर बहुत्वकी—लीलार्थ कल्पित बहुत्वकी—उपलब्धि होती है। इन दोनों भावोंके मिलनसे "वासुदेवः सर्वमिति" तत्त्वकी—निर्गुण-सगुणकी—एकत्वानुभूति लाभ होती है।

❀ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
हरिः ॐ तत् सत् ॥१०३॥

❀ ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुश्रोत्रमथो
बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।
ॐ आविरावीर्म एधि ॥१०४॥ (३ बार)

(मेरे सब अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण एवं सब तत्त्व भगवत् शक्तिसे आप्यायित हो जाँय। हे स्वयं प्रकाश ! तुम मेरे भीतर आविर्भूत हो।)

नोट—नित्य पाठमें (❀) चिह्नित श्लोक ही पाठ किये जाते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूजामें तत्त्व-विभाग

श्रद्धेय स्वामीजीने सबकी सुविधाके लिए पूजाके तत्वोंको सात भागोंमें विभक्ति किया है। सोमवार--शुद्धितत्त्व; मंगलवार--धामतत्व; बुधवार—स्वरूप एवं भगवत्तत्त्व; वृहस्पतिवार—न्यासतत्व; शुक्रवार—उपचार समर्पण; शनिवार—प्रार्थना व प्रणाम; रविवार—सर्वभूतमें भगवद्दर्शन। सप्ताहका एक-एक दिन एक-एक तत्त्वकी उपलब्धिके लिये नियत किया गया है। इन सब तत्त्वोंकी पूर्णानुभूतिसे पूजा सर्वांग सम्पूर्ण होती है। जो दिन जिस तत्त्वकी साधनाके लिए नियत किया गया है उस दिन उस तत्त्वके भावोद्दीपक सब श्लोक अर्थ समझकर पाठ करने चाहिए और तदनुकूल संगीतकी व्यवस्था करना भी रुचिकर होगा। श्रीमत् स्वामीजीका विशेष आग्रह था कि पूजाको यंत्रवत् नहीं होने देना चाहिये। इस प्रकारकी व्यवस्था करनी चाहिए कि मन पूजामें रस लेता रहे। विशेष-विशेष रविवारको यदि समय हो तो 'सर्वभूतमें भगवद्दर्शन' के ८१-९० तकके श्लोक केवल न पढ़कर, 'श्रीमूर्त्तिदर्शन' के सब श्लोक पाठकर लिए जाँय। उस दिन 'भगवत-स्वरूप' एवं 'उपचार-समर्पण के सब श्लोक पाठ करना भी लाभदायक होगा।

चित्त शुद्ध हुए बिना भगद्धाममें प्रवेश असम्भव है। इसलिए सप्ताहका पहला दिन सोमवार शुद्धितत्त्वकी उपलब्धिके लिए निर्दिष्ट किया गया है। आगन्तुक पार्थिव भाव दूर हो जानेपर अर्थात् चित्त शुद्ध और शान्त हो जानेपर अपार्थिव ज्योतिर्मय भगवद्धाममें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता है—यह मंगलवारके ध्यानका विषय है। भगवद्धाममें प्रवेश लाभ होनेपर साधकको अपने स्वरूप, भगवानके स्वरूप तथा शक्तितत्त्वकी उपलब्धिका अधिकार मिलता है—यह बुधवारकी साधना है। धामतत्त्व, स्वरूपतत्त्व और उनके अनुकूल भावोंका पोषण करते रहनेसे वृहस्पतिवारको न्यासतत्त्वमें पहुँचना सहज होगा। न्यास-तत्वके अनुध्यानके फलस्वरूप संसारकी आसक्तिका बन्धन कट जाता है और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

'निर्मम-निरहंकार' अवस्था लाभ होती हैं। आसक्तिसे मुक्त होनेपर साधक देखता है कि बहिर्जगतके समस्त विषय 'सर्वं त्वदीयं' (भगवानके) हैं। तब वह भगवानकी वस्तु भगवानको ही निवेदनकर, गंगाजलसे गंगापूजाकी भाँति, उपचार-समर्पण तत्त्व सार्थक करता है—यह शुक्रवारकी साधना है। जब सब भगवानको अर्पण हो गया तब साधककी और क्या अभिलाषा रह सकती है? तथापि वह अपने लिए उनके चरणोंमें अनन्य भक्ति और सब जीवोंके कल्याणके लिए उनके चरणोंमें प्रणाम और प्रार्थना करता है—यह शनिवारका विषय है। इसके बाद आता है 'सर्वभूतमें भगवद्दर्शन अथवा इष्ट दर्शन'—'सर्व भूतस्थमात्मानं सर्व-भूतानि चात्मनि'—(गीता ६।२९)। अनुभव होगा कि भगवानही जीव-जगत रूपमें परिणत या विवर्तित हैं। रविवारको यह अनुभवकर पूजाके शेष स्तरमें पहुँचनेका विधान है। सर्वत्र ब्रह्मानुभूति होनेपर भी साधक जब अपनी व्यक्तिगत सत्तामें प्रत्यावर्तन करता है तब वह विधान पालक पुरुषोत्तमको इष्ट मानकर, उनके निर्देशित पथ एवं उनके अनुगत संगको वरणकर, शान्ति लाभ करता है।

यह पूजा पद्धति किसी सम्प्रदायविशेषमें सीमाबद्ध नहीं है। 'कृष्ण' शब्द तात्विक सर्वचित्ताकर्षक पुरुषोत्तमको लक्ष्यकर व्यवहार किया गया है जो अन्य मतोंमें बुद्ध, ईसा, महावीर, आदि रूपमें ग्रहण योग्य है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमूर्ति-दर्शन

वासन्तचूतमुकुलेष्वलिझङ्कृतेषु
कुंजेषु मंजुकलकोकिलकूजितेषु।
सम्पूर्णशारदसुधाकरमण्डलेषु
सौंदर्यसागर हरे तव मूर्तिमीक्षे ॥१॥

हे अनन्तसौन्दर्यरत्नाकर! हे मन प्राणहरणकारी हरि! भ्रमरगुञ्जनसे नन्दित नव वसन्तके आम्र वृक्षोंकी मंजरीमें, कलकोकिल-कूजित मनोहर कुंजोंमें, परिपूर्ण शरच्चन्द्रमंडलमें, मैं तुम्हारे अलौकिक रूपको देखता हूँ ॥१॥

प्रफुल्लपद्मेषु सरोवरेषु, ताराविचित्रेषु नभःस्थलेषु।
मातुः स्तने कारुणिकस्य चित्ते, गोविन्द पश्यामि तवैव मूर्तिम् ॥२॥

विकसित कमलोंसे सुशोभित सरोवरमें, दीप्त तारकावलिखचित नभःस्थलमें, (प्रेम-करुणाके अपूर्व निर्झर) मातृस्तनमें, कारुणिकके पवित्र हृदयमें, हे गोविन्द! मैं तुम्हारी ही मूर्ति देखता हूँ ॥२॥

विचित्रपुष्पासु वनस्थलीषु, सुगन्धमन्दानिलवीजितासु।
विहंगसंगीतनिनादितासु, गोविन्द पश्यामि तवैव मूर्त्तिम् ॥३॥

सुगन्ध मन्द वायुसे बीजित, विचित्र पुष्पोंसे परिपूर्ण, पक्षियोंके मधुर कलनादसे शब्दायमान वनस्थलियोंमें, हे गोविन्द! मैं तुम्हारी ही मूर्ति देखता हूँ ॥३॥

शिखण्डिकेका नवमेघशब्दे, भेकालिकण्ठाश्च नवाम्बुपाते।
झिल्लीरवाः सुप्तजने निशीथे, उद्बोधयन्त्यंग तवैव मूर्त्तिम् ॥४॥

नवमेघ शब्दके श्रवणसे उन्मत्त मयूरोंकी केकाध्वनि, प्रथम धारापातसे उत्फुल्ल मेंढ़कोंका कोलाहल, निद्रासे स्तब्ध रात्रिका झिल्लीरव, हे अंग (हे समस्त रूपोंके एकमात्र आकर)! यह मेरे मनमें तुम्हारे रूपका उद्बोधन करते हैं ॥४॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

माणिक्यखण्डैरिव दीप्यमानैः, खद्योतपुंजैर्निचितानगण्यैः ।
बहुद्रुमान् वीक्ष्य घनान्धकारे, स्मरामि ते रूपमपूर्वरूपम् ॥५॥

घने अन्धकारमें मणि-माणिक्योंकी भाँति प्रकाशमान अगणित खद्योतोंसे समालंकृत वृक्षोंको देखकर, हे अपूर्वरूप ! मैं तुम्हारी रूपमाधुरीको स्मरण करता हूँ ॥५॥

प्रत्यग्रसिन्दूररसैरिवार्द्रे, बालातपैर्विच्छुरितेऽन्तरिक्षे ।
पश्यामि सन्ध्याम्बुदविभ्रमेषु, प्रेमाभिरामां तव कृष्णमूर्तिम् ॥६॥

अम्लान सुन्दर सिन्दूररससे अभिषिक्त नवोदित-अरुणच्छटासे विच्छुरित आकाशमें, सन्ध्याकी मेघमालाके अपूर्व विलास दर्शनमें, हे कृष्ण ! तुम्हारी प्रेमसुन्दर मूर्ति मैं देखता हूँ ॥६॥

उद्भिन्नगारुत्मतसुप्रकाशैः, क्षेत्रेषु कीर्णेषु नवीनशस्यैः ।
स्निग्धेषु पश्यामि च पल्लवेषु, विश्वाभिरामं तव कृष्णरूपम् ॥७॥

मरकत-मणिकी भांति सुशोभित उद्गतशीर्ष नवीन शस्यसे परिपूर्ण क्षेत्रोंमें और स्निग्ध-श्याम पल्लवोंमें मैं तुम्हारी विश्वविमोहन कृष्णमूर्त्ति देखता हूँ ॥७॥

कंकालमालाबहुलेऽतिरौद्रे, श्मशानदेशे शवधूमधूम्रे ।
प्रचण्डवातक्षुभितेऽर्णवे च, प्रेक्षे महारुद्र तवैव मूर्त्तिम् ॥८॥

अनेक कंकाल मालाओंसे परिवेष्टित, भयावह शव-धूमसे धूमित श्मशान देशमें; प्रचंड वायुसे विक्षोभित सागरमें, हे महारुद्र ! मैं तुम्हारी ही रुद्रमूर्त्ति देखता हूँ ॥८॥

गाढान्धकारासु कुहुक्षपासु, दिग्व्यापिघोराभ्रघटासु चैव ।
दम्भोलिभीमध्वनितेषु वीक्षे, महाविराजस्य तवैव मूर्तिम् ॥९॥

अमावस्याकी घोर अन्धेरी रातमें जब सब ओर घनघोर घटा छाई हो और बिजलीकी भीषण वज्रध्वनि बारंबार हो रही हो, हे सर्वत्र विराजमान महादेव ! उस भीषणतामें भी मैं तुम्हारी ही मूर्ति देखता हूँ ॥९॥

शशांकताराप्रतिबिम्बगर्भान्, तोयाशयान् स्वच्छजलान् समीक्ष्य ।
उदेति चित्ते तव कापि मूर्त्तिरनन्तवैचित्रमयी मुकुन्द ॥१०॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

हे मुकुन्द (भुक्ति-मुक्ति-प्रेमदातृ) ! निर्मल जलसे परिपूर्ण सरसी और उसमें चन्द्र-तारोंके प्रतिबिम्ब देखकर तुम्हारी वैचित्र्यमयी मूर्ति मेरे अन्तःकरणमें भासमान हो जाती है ॥१०॥

पुण्यानि तीर्थानि तपोवनानि, दृष्ट्वा सरित्सागरसंगमांश्च।
नामावशेषांश्च पुराणदेशान्, पुरातनं त्वं पुरुषं स्मरामि ॥११॥

समस्त पुण्य तीर्थ, पवित्र तपोवन, सरित्-सागर-संगम, पुराणानामावशेष प्रसिद्ध देश दर्शन करके, हे चिर-पुरातन ! मैं तुमको स्मरण करता हूँ ॥११॥

लीलाः शिशूनां गृहचत्वरेषु, गवां प्रचारेषु च वत्सलीलाः।
जले च पश्यन् जलपक्षिलीलाः स्मरामि लीलामयविग्रहं त्वाम् ॥१२॥

गृह-आँगनमें शिशुओंकी क्रीड़ा, गोष्ठोंमें गो-वत्स-लीला, जलमें जल-पक्षियों-का विहार, ये सब देखकर तुम्हारी लीलामय विग्रह मेरे स्मृति-पथमें उदित हो जाती है ॥१२॥

स्तनन्धयानां स्तनदुग्धपाने, मधुव्रतानां मकरन्दपाने।
दाने दयालोरथ भक्तगाने, पश्यामि मूर्तिं करुणामयीं ते ॥१३॥

स्तनपायी शिशुओंको मातृस्तन पान करते देखकर, मधुकरोंको मकरन्द पान करते देखकर, परदुःख-कातर दयालुको आर्त्तकी व्यथा विमोचन करते देखकर, प्रेमिक भक्तोंको समस्त मन-प्राणसे भगवद् भजन करते देखकर, हे भगवन् ! मैं तुम्हारी ही करुणामयी मूर्ति उसमें देखता हूँ ॥१३॥

सतीषु नारीषु च सर्वभूत-प्रकामसन्तर्पणदीक्षितासु।
पूर्णान्नपूर्णास्विव लक्षयेऽहं, मूर्ति हरे सत्त्वमयीं तवैव ॥१४॥

सती नारी, सब भूतोंका तृप्तिविधान जिसके जीवनका व्रत है और अन्नपूर्णाकी भाँति जो अन्नदानमें मुक्तहस्ता है ऐसी नारियोंके भीतर मैं तुम्हारी ही सत्वमयी मूर्ति देखता हूँ ॥१४॥

वनस्पतौ भूभृति निर्झरे वा, कूले समुद्रस्य सरित्तटे वा।
यत्रैव चित्ते समुदेति भक्तिस्तत्रैव पश्यामि तवैव मूर्तिम् ॥१५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वनस्पति, पर्वत, निर्झर, समुद्रतट, नदीतीर और जहाँ-जहाँ भी मेरे चित्तमें भक्तिरस उदय होता है, वहीं मैं तुम्हारी परम मूर्ति देखता हूँ ॥१५॥

कीटे पतंगे च सरीसृपे च, मीने पशौ पक्षिणि मानवे च।
स्थूले च सूक्ष्मे च जले स्थले खे, पश्यामि ते रूपमनन्तरूप ॥१६॥

कीटमें, पतंगमें, सरीसृपमें, मीनमें, पशुमें, पक्षीमें, मानवमें, स्थूलमें, सूक्ष्म-में, जलमें, स्थलमें, आकाशमें, मैं सर्वज्ञ ही तुम्हारा अनन्तरूप देखता हूँ ॥१६॥

भूतेषु सर्वेषु चराचरेषु, दूरे समीपे च पुरश्च पश्चात्।
विलोकयाम्यूर्ध्वमधश्च तिर्यक्, हे कृष्ण ते रूपमनन्तरूप ॥१७॥

सर्वभूतमें, चराचरमें, दूर और निकट, सामने एवं पीछे, ऊपर और नीचे अथवा पार्श्वमें, हे कृष्ण ! मैं तुम्हारा आनन्दरूप ही देखता हूँ ॥१७॥

अहो निमग्नस्तव रूपसिन्धौ, पश्यामि नान्तं न च मध्यमादिम्।
अवाक् च निःस्पन्दतरो विमूढः, कुत्रास्मि कोऽस्मीति न वेद्मि देव ॥१८॥

अहा-हा ! मैं तुम्हारे रूपसागरमें डूब गया हूँ; आदि-मध्य-अन्त कुछ नहीं देखता; वाक्यहीन, निःस्पन्द, विमूढ़ हो गया हूं; मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मुझे कुछ स्मरण नहीं होता ॥१८॥

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्त्ते, नमस्ते नमस्ते हरेऽचिन्त्यशक्ते।
नमस्ते नमस्तेऽखिलाश्चर्यसिन्धो, महादेव शम्भो नमस्ते नमस्ते ॥१९॥

प्रणाम, प्रणाम, हे विश्वमूर्त्ति ! हे विभो ! तुमको प्रणाम; हे अचिन्त्यशक्ते हरि ! तुमको प्रणाम; हे अखिल-विस्मयके सागर ! तुमको प्रणाम; हे महादेव ! हे शम्भो ! तुमको प्रणाम प्रणाम ॥१९॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिशिष्ट

भगवत्-तत्त्व

आजकल बहुत लोगोंके मुखसे सुना जाता है कि 'हम भगवानको नहीं मानते ।' यदि पूछा जाय कि भगवान किसको कहते हैं और प्राचीन ऋषि-मुनि भगवानके सम्बन्धमें क्या कह गये हैं तब वे उत्तर देते हैं कि 'हमें नहीं मालूम ।' 'जिसको जानते नहीं उसको मानते नहीं'—इस प्रकारकी उक्तिको बुद्धिमानका कार्य नहीं कहा जा सकता । अवश्य हमारे समाजमें साधारण लोगोंके लिए भगवानकी जिस प्रकार वर्णना की गई है उसका अनुमोदन हम भी नहीं करते । संस्कार-के वश, बुद्धिके दोषसे और स्वार्थके प्रभावसे हमने 'भगवान' शब्दको बहुत विकृत कर दिया है । परन्तु इस कारण हम प्रकृत भगवानको अस्वीकार नहीं कर सकते । यदि कोई अच्छी वस्तु कालके प्रभावसे विकृत हो गई है तो उसकी विकृतिको दूरकर उसको प्रकृत स्वरूपमें प्रतिष्ठित करना हमारा कर्त्तव्य है । मन्दिरमें यदि मल जमा हो जाय तो मन्दिरको ध्वंस न कर मलको परिष्कार करना और मन्दिरकी पवित्रताकी रक्षा करना ही उचित है । हम संस्कार पसन्द करते हैं, ध्वंसके पक्षपाती नहीं हैं । इसीलिए भगवानके सम्बन्धमें ऋषि-मुनियोंकी अनुभूतिको ठीक भावमें ग्रहण करना ही कल्याणप्रद समझमें आता है ।

ऋषियोंने चित्तको शून्यकर अर्थात् पूर्णरूपसे संस्कार वर्जित होकर, परम तत्त्वको जाननेकी योग्यता लाभ की । शून्य चित्तमें एक शान्त भाव (state of perfect equilibrium) उपलब्धिमें आया । वहाँ समाहित होनेपर क्रमशः एक शक्तिका खेल अनुभूतिमें आने लगा । इस शक्तिका स्वरूप जाननेकी चेष्टामें शक्तिका सच्चिदानन्द भाव आविष्कृत हुआ । तब उन्होंने शक्तिको माँ कहकर सम्बोधन किया । फिर अनुभवमें आया कि शक्तिमें शक्तिमानको प्रकाश करनेका सामर्थ्य है । शक्तिमान स्वरूपतः आनन्दस्वरूप हैं, वे शक्तिके खेलके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भीतरसे प्रकाशित होते हैं। इस शक्तियुक्त अवस्थाको सगुण ब्रह्म, परमात्मा, भगवान, इत्यादि नाम दिये गये। शक्तियुक्त ब्रह्म सृष्टि-स्थिति-लयकर्त्ता, अन्तर्यामी विधाता, दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करनेमें तत्पर हैं। "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"—ये ही सगुण ब्रह्म हैं। तत्पश्चात् शक्तिके भीतरसे शक्तिमानने अपने स्वरूपको अनेकांश पूर्णरूपमें प्रकट किया। इसके अनन्तर शक्ति शक्तिमान्में लीन हो जानेपर, एक अखण्ड, अद्वय, समरस ब्रह्म तत्त्व रह गया।

परमात्मतत्त्व एवं भगवत्तत्वमें भी इन तीनों भावोंका सन्धान पाया जाता है किन्तु भक्तगण भगवानको केवल आनन्दमय भावमें पर्यवसित करनेकी वृथा चेष्टा करते हैं। इसके परिणामस्वरूप वृन्दावनके कृष्ण, मथुराके कृष्ण और द्वारकाके कृष्ण इन तीन कृष्णोंका उल्लेख देखनेमें आता है। एक ही कृष्ण प्रयोजनानुसार युद्ध क्षेत्रमें सारथी, विचार क्षेत्रमें अद्वितीय पण्डित एवं रनिवासमें आदर्श प्रेमिक हो सकते हैं यह बात हम भूल जाते हैं। याद रखना होगा कि सत्ता एवं चैतन्यकी पूर्ण परिणति लाभ करनेके पूर्व आनन्दका पूर्ण विकास होना असम्भव है। हम ज्ञान द्वारा उनको जानें, प्रेम द्वारा उनसे मनोनीत होकर उनसे तन्मयता लाभ करें एवं कर्म द्वारा उनकी मङ्गलमयी इच्छाको पूर्ण सफल करें—यही हमारी साधनका लक्ष्य होना चाहिए। "ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते"—यह श्लोक एक ही परम एवं चरम तत्वका त्रिविध भाव दृष्ट करता है। इसके द्वारा कोई भेदभाव पैदा होता है यह हम विश्वास करनेमें असमर्थ हैं।

सृष्टिके प्रारम्भमें—ऊपरसे नीचे उतरते समय, अवरोहणके समय—ब्रह्मसे जगद्भिमुखी गतिके भीतर पहले आनन्दका, फिर चित् शक्तिका और अन्तमें सत्-शक्तिका विकास लक्ष्यमें आता है। किन्तु साधनाके भीतर—ऊर्ध्वगति लाभ करते समय, आरोहणके समय अर्थात् जगत्से जगन्नाथके निकट जाते समय—हमारी साधना पहले सत्, फिर चित् और तत्पश्चात् आनन्द-शक्तिके अवलम्बन द्वारा आरम्भ होती है। साधककी साधना आनन्दमें पर्यवसित हो जानेपर भी वह आनन्द कर्म एवं ज्ञान द्वारा सफलता लाभ करता है। हिन्दू ऋषिगण समाधि-आनन्द-रसमें डूबे रहनेको सर्वश्रेष्ठ अवस्था नहीं मानते थे। वे आनन्दको

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
ज्ञान और कार्य द्वारा ग्रहणकर कर्ममय जगत्में सफलीकृत करना ही श्रेष्ठ अवस्था समझते थे। हम श्री रामचन्द्र श्रीकृष्णादिके जीवनकी प्रथमावस्थामें आनन्दका विकास देखकर मुग्ध हो जाते हैं किन्तु प्रकृत योगी देखता है कि पर-जीवनमें उन्होंने ज्ञान और कर्म द्वारा पूर्ण सफलता लाभकर अपना पुरुषोत्तमत्व किस प्रकार सप्रमाण किया। जो आनन्द कर्म और ज्ञान द्वारा पूर्णत्व लाभ नहीं करता, वह आनन्द अनेक समय विकृतरूप धारणकर देशका प्रभूत अकल्याण कर बैठता है इससे सन्देह नहीं। इसीलिए हम पुरुषोत्तमको केवल आनन्दमें पर्यवसित न कर उनमें सत्ता, चैतन्य और आनन्दकी पूर्ण परिणति तथा अपूर्व समन्वय देखना पसन्द करते हैं।

उपनिषदादि ग्रन्थोंमें परम तत्वके निर्गुण और सगुण दोनों भावोंका उल्लेख पाया जाता है। वे परम तत्व (ब्रह्म) शक्तिकी सहायतासे जहाँतक हमारी—विशेषतः ऋषिमुनियोंका—अनुभूतिमें आते हैं उसी अवधि तक उनका सगुण भाव है और उसके ऊपर वाक्य-मनके अगोचर उनके अज्ञात भावको लक्ष्यकर निर्गुण तत्त्वका आभास देनेकी चेष्टा की गई है। दुःखकी बात यह है कि इस निर्गुण-सगुण भावको लेकर दार्शनिक पण्डितोंने साधन-राज्यमें अनेक अनर्थोंकी सृष्टि कर दी है। केवल यही विचार होता है कि प्रतिष्ठा-मोह रहते हुए प्रकृत तत्व हृदयङ्गम करना कठिन है और प्रतिष्ठा-मोह पूर्णतया दूर हो जानेपर सम्प्रदाय स्थापन करना सम्भव नहीं। प्राचीन ऋषि साम्प्रदायिक भावके ऊपर रहते थे—वे प्रतिष्ठात्यागी तत्वदर्शी थे, इसीलिए उनके आर्षग्रन्थ भगवानका स्वरूप निर्धारण करनेमें एकमात्र सहायक हैं। पहले कहा गया है कि चरमतत्व शक्ति-युक्त होकर सगुण रूप धारण करनेपर ही हमारे अवलम्बनीय अर्थात् उपास्य तत्वमें परिणत होने योग्य होते हैं। शक्तिकी सहायताके अतिरिक्त उस चरम-तत्वको उपलब्ध करनेका और कोई उपाय नहीं। वह शक्ति, माँके समान प्यार-कर, हमको चरमतत्वके निकट पहुंचा देनेके लिए तथा पुरुषोत्तमकी परिणति प्रदान करनेके लिए सचेष्ट है—यही विचारकर हम माँ आद्याशक्तिकी इतनी भक्ति करते हैं। हम शक्तिपूजाका माहात्म्य स्वीकार करनेको बाध्य हैं। यहाँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विचारने योग्य हैं कि वृन्दावनकी गोपियाँ पुरुषोत्तमको लाभ करनेके लिए किस प्रकार कात्यायिनी देवीके शरणापन्न हुई थीं; हमारे महाप्रभु राधा-भावमें कैसे विभोर रहते थे और 'राधा' 'राधा' रटते-रटते समाहित हो जाते थे। अधीर मनसे माँ आद्याशक्तिके शरणापन्न होनेसे ही माँ दया करके सगुणब्रह्म तत्त्व—पुरुषोत्तम तत्त्व—का पूर्ण विकास हमारे सम्मुख उपस्थित करेंगी और हमें 'होना' और 'पाना' तत्त्वकी पूर्ण सार्थकता प्रदान करेंगी।

सगुणब्रह्मको समझनेके लिए शक्तितत्त्वको अच्छी तरह जानना आवश्यक है। विद्युत्-शक्ति-केन्द्र (electric power house) के रहस्यसे इस विषयको समझनेमें सहायता मिलती है। केन्द्रके साथ जब तक योग रहे तबतक बल्ब जलता है; पंखा घूमता है, मशीन चलती है। ठीक इसी प्रकार हमारी इन्द्रियाँ जबतक प्राणशक्तिके साथ युक्त हैं तबतक आँखे देखती हैं, कान सुनते हैं, मन चिन्तन करता है—तभी तक हम जीवित हैं—और यह योग छिन्न हो जानेसे ही हमारा अस्तित्व लोप हो जाता है। इसीलिए सगुण ब्रह्मको "श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनः यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः" कहा गया है। समस्त साधन-भजनका मूल उद्देश्य है इस शक्तिको जानना और अपने भीतर अबाधित भावसे इसको प्रस्फुटित करना। शक्तिका पूर्ण विकास साधित हुए बिना शक्तिमानको भली प्रकार जाननेकी सम्भावना नहीं। जिनके भीतर यह शक्ति पूर्ण विकसित है वे ही हमारे उपास्य पुरुषोत्तम हैं।

कहना अनावश्यक होगा कि प्रकृत भक्त शास्त्रके तर्क-वितर्कमें जाना पसन्द नहीं करते। उनके भगवान एक ऐसी वस्तु हैं जिनके बिना उनका काम चल ही नहीं सकता और जिनको प्राप्त किये बिना वे जीवित नहीं रह सकते। 'मैं भगवानको देख नहीं पाता', यह कहनेका मेरा साहस नहीं होता; ख्याल होता है कि यह कहना मिथ्या होगा। क्योंकि किसीको भी देखनेका अर्थ ही है उसके भीतर से आंशिक रूपमें भगवानको देखना। उसको देखना जब पूर्णरूपमें परिणत होगा तब वह देखना भगवद्दर्शनमें परिणत होकर चरम सार्थकता लाभ करेगा। हम जो कुछ विचारते हैं या प्राप्त करते हैं उसके द्वारा आंशिक सीमा-बद्धभावमें भगवानको विचारना या प्राप्त करना साधित हो जाता है। इस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावसे भगवानको देखना या प्राप्त करना हम साधारणतः भगवानको देखना या प्राप्त करना नहीं मानते क्योंकि भगवान पूर्णस्वरूप हैं और किसी वस्तुको पूर्णतया देखना या प्राप्त करना ही भगवानको देखना या प्राप्त करना माना जाता है। किन्तु वास्तवमें पहलेका देखना या प्राप्त करना भी भगवानको ही देखना या प्राप्त करना है यद्यपि पूर्णरूपमें नहीं। मेरा स्वयं खाना या किसी दूसरेको खिलाना पूर्णरूपमें साधितकर भगवानको खिलानेमें परिणत करना ही मेरी समस्त साधना और चेष्टा है। हमारे सब कार्य पूर्णताको प्राप्त होनेपर भगवत्-कार्य—भगवत् उपासना—में पर्यवसित हो जाते हैं। भगवान ही हमारे सब कुछ हैं। हमारे हाथके उपकरण भगवानकी सत्तासे आये हैं, भगवत्-शक्ति द्वारा गठित हैं और हाथके सब कार्य भगवत्-शक्ति द्वारा साधित होते हैं। अपने हाथको पूर्णपरिणति दानकर अर्थात् पूर्णरूपसे इसका सद्व्यवहारकर सकनेपर ही हमारे हाथ द्वारा भगवान पूर्णतया कार्य करनेका सुयोग पायेंगे। तब हमारे हाथका कार्य भगवानका कार्य होगा। अपने सब दृश्योंको भगवद्-विग्रहमें, सब कार्योंको भगवत्-कार्यमें, सब भावनाओंको भगवद्ध्यानमें परिणतकर, भगवन्मय होकर—सबको भगवत्भावसे परिभावित रूपमें अनुभव करना ही साधन-भजनका प्रधान उद्देश्य है। कहना अनावश्यक होगा न्यासतत्त्व पूर्णरूपसे अनुभवमें आये बिना भगवद्दर्शन, भगवल्लीलानुभूति, सम्भवपर नहीं होती।

साधकगण केवल मुखसे भगवानका अस्तित्व स्वीकारकर और भाव तथा व्यवहारमें उनको वर्जनकर, भगवत्-शून्य भावमें, भगवद्विहीन देशमें, वास करनेमें असमर्थ हैं। वे जानते हैं कि भगवानके बिना उनका काम नहीं चलता, न चल सकता है और न कभी चलेगा। इसीलिए वे कहते हैं—'हे भगवान, पंडितगण तुमको अव्यक्त-अचिन्त्य-निर्गुण-निष्क्रिय-निराकार कहकर, वाक्य-मनसे अगोचर समझकर, ध्यान-धारणाके अतीत जानकर निश्चिन्त रहें इसमें हमें कुछ कहने या चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं किन्तु हम तुम्हारे बिना नहीं रह सकते। तुम अनन्त हो इसमें भी हमारी कोई हानि नहीं। तुमको जानना, ध्याना, भावना, देखना और उपलब्ध करना कभी समाप्त नहीं हो सकता, ये हम भी जानते हैं। किन्तु इससे क्या हम यह समझें कि जो कुछ हम देखते हैं उसके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भीतर तुम तनिक भी नहीं हो अथवा जो कुछ हम प्राप्त करते हैं उसके द्वारा तुम्हारी प्राप्ति जरा भी नहीं होती अथवा हम जो कुछ आनन्द करते हैं वह सब तुमसे पृथक् है। कौन वीर पुरुष, ज्ञानी अथवा प्रेमिक मातृस्नेह अथवा दाम्पत्य-प्रेमका मान कर सकता है? तुमको जानना, ध्याना और उपलब्ध करना शेष नहीं हो सकता इसीलिए तो तुम इतने मधुर हो। तुम अनन्त होकर हो तो इतने लोभनीय, इतने स्पृहनीय, इतने वरणीय हो। इसीसे तो तुम अनन्तकालसे अनन्त ज्ञानियोंको, अनन्त प्रेमसे मोहित कर, अपनी अनन्त लीलाके सहायभूत किये हुए हो। हे अरूप! हे अमूर्त्त! तुम ही तो जगद्व्यापी विश्वमूर्ति हो। यह जगत् तुम्हारी ही प्रकटित अथवा व्यक्त अवस्था है। तुम ही तो "विश्वरूप, विश्वनाथ, विश्वजीव-विग्रह" हो। तुम अरूप होकर भी अनन्त रूप ग्रहणकर, अनन्त वेष धारणकर, अनन्त भावसे अनन्तलीला-रस विस्तार किये हुए हो। तुम जो सर्वव्यापी हो इसीलिए तो सबके भीतर तुम्हारी सेवा करना हमारी प्रधान साधना है। हे ठाकुर, तुम ही तो सृष्टि-स्थिति-लय-कर्त्ता हो—हम आए हैं तुम्हारे पाससे, जीवित हैं तुम्हारे द्वारा और अन्तमें उस चरम दिन तुम हीमें मिलकर हमारा लय होगा। तुम ही तो "श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचम् स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुः" हो। तुम हमारी आँखोंके भीतर हो इसीलिए तो हमारी आँखें देख सकती हैं, कानोंके भीतर हो इसीलिए तो हमारे कान सुन सकते हैं, मनके भीतर हो इसलिए तो हमारा मन चिन्ता कर सकता है, तुम ही को लेकर तो हम "हेले-दुले-हेसे-खेले बेड़ातेछि कुतूहले" (हँसते-खेलते-कुतूहल करते हैं)। तुमको वर्जन करके तो हमारा कुछ भी नहीं रह सकता, यहाँ तक कि हम भी नहीं रह सकते। जिनको छोड़कर हमारा व्यापार नहीं चलता, जिनको छोड़कर हम जीवित नहीं रहते, जिनको छोड़कर हमारे कान नहीं सुनते, आँखें नहीं देखतीं, मन चिन्तन नहीं करता, उनको क्या वर्जन किया जा सकता है। हे ठाकुर! तुम्हारा अभाव हमारे लिए कैसा अभाव है, तुमको उपलब्ध न कर सकनेमें हमारी क्या हानि है—यह न समझनेके तुल्य और अधिक अभाव हमारे लिए नहीं। तुम ही हमारे सर्वापेक्षा प्रिय हो; पुत्रसे, वित्तसे और जो कुछ हमारा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

है सबसे प्रिय हो—यहाँ तक कि आत्मासे भी प्रिय हो, इसीलिए तो परमात्मा हो। "प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मात् यदेषः अन्तरतम आत्मा।"

जिनको प्राप्त करके और कुछ प्राप्त करनेको बाकी नहीं रहता, जिनको जान लेनेसे और कुछ जाननेको बाकी नहीं रहता, उन ईप्सिततम् प्रेमाधार, प्राणारामको वर्जनकर जो जीवनमें चलते हैं या चलना चाहते हैं वे महा अन्ध हैं। जो 'प्रकृति' 'प्रकृति' (Nature), 'विज्ञान' 'विज्ञान' (Science) कहकर भगवनानको वर्जन करना चाहते हैं वे एक बार भी विचारकर नहीं देखते कि प्रकृतिका अन्तरात्मा कौन है। सबकी सत्ता सुप्रतिष्ठित रखनेके लिए, सबकी पूर्ण-परिणति लाभके लिए, सबकी ज्ञान-वृद्धिके लिए और सबको आनन्दमें विभोर रखनेके लिए वे कैसे सचेष्ट हैं, प्रकृति देवी अपने प्राणाराम अन्तरात्माके लिए, अपने परम पतिकी चरम तृप्तिके लिए, उनके पूर्ण विकासके लिए, कितनी व्यस्त हैं—वे एक बार भी इस विषयपर विचार नहीं करते। पुरुषचैतन्यके सान्निध्यके बिना, पुरुषचैतन्यको वर्जनकर, प्रकृतिका अस्तित्व तक नहीं रहता। और पुरुषचैतन्यके सहित ही जो प्रकृति आनन्दमयी, चैतन्यमयी है उसको अचैतन्य कहनेमें ये लोग कुछ भी संकोच नहीं करते। जिस प्रकृतिके विषयमें ये लोग आलोचना करते हैं, वह वास्तवमें प्रकृति-पुरुषकी युगल मूर्त्ति है—यह भी सोचने-समझनेका इनको अवकाश नहीं।

हे सत्-स्वरूप! आकाशकी शोभा, समुद्रका गाम्भीर्य, पक्षियोंका संगीत, कुसुमोंका सौन्दर्य, बालकोंकी हँसी, माताका वात्सल्य, स्त्रीका प्रेम—जो सर्वदा हमारा मन हरणकर हमको उल्लसित रखता है वह तुम्हारी ही सत्ताका क्षणिक तथा आंशिक विकास है। हे ज्ञानस्वरूप! राम, वशिष्ठ, बुद्ध, शंकर, सौक्रेटीज, नियूटन, कैन्ट, हीगल, आदिका ज्ञान तुम्हारी चिद्विभूतिका केवल कणमात्र है। हे आन्दस्वरूप! ईसा, मुहम्मद, चैतन्य, नानकादिका प्रेम तुम्हारे ही आनन्दकी सामान्य विलास-विभूति है। जब तुम्हारे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं और न कुछ रह सकता है तो क्या तुमको वर्जन किया जा सकता है। हे "भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्", हे "गतिः प्रणिनां पावनं पावनानाम्", हे पालक, हे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

रक्षक, हे विभु, हे प्रभु, हे भूतभर्ता, हे ग्रसिष्णु, हे प्रभविष्णु, हे नित्य, हे सर्वगत हे, स्थाणु, हे अचल, हे सनातन, हे "सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितं', हे "विभक्तेषु अविभक्तं", हे सर्वव्यापी, हे चरम पति, हे परम गति, हे अजर, हे अमर, हे "शुद्धमपापविद्धम्", हे कवि, हे मनीषि, हे परिभू, हे स्वयम्भू, हे "याथातथ्यतोऽर्थं" के विधानकारी, हे "सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम्", हे शरण्यम्, हे वरेण्यम्, हे "शान्तं शिवं सुन्दरम्, हे आनन्दरूपममृतं", हे हमारे यथा-सर्वस्व ! कृपा करके अपने गुणसे हमारे निकट प्रकट हो। तुम्हारे सत्य, ज्ञान और आनन्दकी विभूति हमको सर्वदा उल्लसितकर आनन्दमें विभोर रखे।

पुरुषोत्तम

"महाशक्तिकी उपासनाके फलस्वरूप पुरुषोत्तमका आदर्श हृदयमें जागरित होता है। महाशक्ति विश्वजननी हैं। वे पुरुषकी अथवा जीवकी जननी हैं और पुरुषोत्तमकी अथवा ईश्वरकी भी जननी हैं—केवल यही नहीं, एक हिसाबसे देखा जाय तो वे महाकालकी भी जननी हैं। पुरुषोत्तम एवं कालपुरुष एक ही महाशक्तिसे आविर्भूत हुए हैं किन्तु दोनोंका क्रियाक्षेत्र और कार्यकलाप भिन्न है। सृष्टिके पूर्वकालमें जब पुरुषोत्ताम अर्थात् सत्यपुरुषका आविर्भाव होता है उसी समय कालपुरुषका भी आविर्भाव होता है। अखंड सत्ता खंडितवत् होते समय सत्पुरुष और कालपुरुष इन दो भागों में आत्मप्रकाश करती है। सत् एवं असत्, ज्योतिः एवं तमः, अमृत एवं मृत्यु, एक शब्दमें—समस्त द्वन्द्व इन्हीं आपात-प्रतीयमान विरुद्ध तत्त्वोंके विभिन्न प्रकाश हैं। खंडितवत् होते समय आत्मभिन्न जो अनात्म सत्ता अथवा जड़ सत्ता है उसका पहले स्फुरण होता है; इसको मूल अविद्याका आविर्भाव भी कह सकते हैं—इसीका नाम महाशून्य है। इस महाशून्यको आश्रयकर कालपुरुष ब्रह्मांडरूपी अपनी पुरी निर्माण करते हैं। पिंड और ब्रह्मांड, व्यष्टि व समष्टि रूपमें, कालपुरुषके राज्यके ही अन्तर्गत हैं क्योंकि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्हींके भीतर कालका विचित्र खेल प्रकाशित होता है। मन, माया, पंचभूत और समस्त प्राकृत उपादान इसी कालपुरुषके राज्यमें विद्यमान हैं। किन्तु सत्यपुरुष महाशून्यके अतीत हैं, इनके निर्मल चिदानन्दमय धाममें कालका प्रवेश नहीं, गुणकी क्रिया नहीं; भूतोंका संचार नहीं और किसी प्रकारका मल या पाप वहाँ दृष्ट नहीं होता। पुरुषोत्तम जैसे चिदानन्दमय हैं वैसे ही उनके धाम और परिकरादि भी अनन्त वैचित्र्यपूर्ण और चिदानन्दमय हैं। जीव अणु रूपमें नित्य होते हुए भी इन्हीं पुरुषोत्तमका अंश हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें, जीवकी अनादि सुषुप्ति भंग हो जानेके पश्चात्, जीव जब महाशक्तिकी प्रेरणासे उद्बुद्ध होता है तब वह अपने स्वरूप और अपने परम उत्सको भूलकर, बहिर्मुख होकर, आत्मशोधनके लिए कालके अथवा महामायाके राज्यमें निक्षिप्त होता है। यह परमपुरुषका ही मंगलमय विधान है। जीव बाह्यतः परमपुरुषसे विच्छिन्न हो जानेपर भी वस्तुतः उनसे अलग नहीं होता। यद्यपि कालके राज्यमें वह स्थूल, सूक्ष्म व कारण देहमें आबद्ध है तो भी उसके हृदयके गुप्त अन्तस्थलमें पुरुषोत्तमका आभास सूक्ष्म बीजरूपमें निहित रहता है। यही अन्तर्स्थित चिदानन्दमय सत्ता, कालके पूर्ण हो जानेपर, जीवको पूर्ण पुरुषोत्तमकी अनुभूतिमें समर्थ करती है। वस्तुतः पूर्ण पुरुषोत्तम जीवके आत्मोत्कर्षका चरम आदर्श हैं। कालके राज्यमें त्रिगुणोंके अधीन होकर जीव अपनेको जैसा समझने लगता है वस्तुतः वैसा नहीं है क्योंकि माया और अज्ञानका आवरण दूर हो जानेपर जीव अपने अन्तर्स्थित चिदानन्दमय स्वरूपको उपलब्ध कर लेता है। बाह्य जगत् यद्यपि कालके राज्यमें होनेके कारण अविद्यासे प्रभावित प्रतीत होता है तथापि यह सत्य है कि कालके राज्यमें भी पुरुषोत्तमका निर्मल स्वरूप विद्यमान है। सुतरां जीव अपनी चेष्टा द्वारा एवं महाशक्तिकी कृपासे निर्मल दृष्टि लाभ करनेपर पुरुषोत्तमका अपरोक्ष दर्शन भीतर और बाहर लाभकर चरितार्थ हो जाता है। पुरुषोत्तम निराकार परम तत्त्वातीत परमसत्यके भी साकार विग्रह हैं। सृष्टिके आदिकालमें एक तरफ जैसे आत्म-संकोचसे 'अणु भाव' उदय होता है दूसरी तरफ उसका परिपूरक 'महान्' भाव भी उदय होता है। दोनोंका आविर्भाव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक ही समय होता है। जीव स्वयं 'अणु' है, उसके आराध्य परम प्रीतिके निदान पुरुषोत्तम 'महान्' हैं। दोनों ही चिद्रूप हैं। जीव अल्पज्ञ है, उसके उपास्य पुरुषोतम सर्वज्ञ हैं। जीव देश और काल द्वारा परिछिन्न है किन्तु उसके प्रेमास्पद पुरुषोत्तम साकार होते हुए भी देश और काल द्वारा अपरिच्छिन्न हैं। जीव जन्मसे ही कामना-वासनासे जर्जर और चिर अतृप्त है किन्तु उसके आराध्य पुरुषोत्तम आप्तकाम, आत्माराम और नित्य-तृप्त हैं। जीव गुण और दोषका आधार है, उसके गुण भी दोष से मिश्रित हैं किन्तु पुरुषोत्तम अनन्त-कल्याण गुणके आधार हैं, उनमें दोष लेशमात्र भी नहीं एवं उनके अनन्त गुणों-में प्रत्येक गुण विशुद्ध और कल्याणप्रद है। जीव संसारमें आकर पंचभूत एवं अनन्त प्रकारके भौतिक विषयोंकी आराधनाकर किंचित् आनन्द लाभ करनेकी चेष्टा करता है किन्तु ठीक सफल-मनोरथ नहीं होता। क्योंकि विषयोंके संस्पर्शसे जो आनन्द लाभ होता है वह मलिन, अस्थायी एवं दुःखमें समाप्त होनेवाला है। नेत्र रूपके लिए लालायित हैं किन्तु चतुर्दश भुवनमें भी ऐसा रूप नहीं जिसका दर्शनकर उसकी रूप-तृष्णा शान्त हो सके। इसी प्रकार जीवकी प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने रसास्वादनके लिए विषयकी तरफ दौड़ती है किन्तु विषयके भीतर उसे ऐसा रस नहीं मिलता जिसको प्राप्तकर उसकी इन्द्रियोंकी रस-तृष्णा चिरकालके लिए शान्त हो जाय। ऐसी स्थितिमें ही पुरुषोत्तमकी आराधनाकी सार्थकता सम्यक् रूपसे समझमें आती है। पहले ही बताया गया है कि पुरुषोत्तम निराकारके साकार विग्रह हैं। उनके रूपके एक कणकी भी तुलना अनन्त विश्वमें किसीके साथ नहीं की जा सकती। उनके रूपका एक कण प्राप्त हो जानेसे कोटि कन्दर्प मोहित हो जाते हैं। उनके रूपका दर्शन लाभ करनेके लिए अपनी इन्द्रियोंकी सब मलिनता शुद्ध करनी होती है और अपनेको भक्ति और प्रेमके अंजनसे अनुरंजित करना होता है। तब उस दिव्य सामान्यतः अदृश्य रूपकी अनन्त माधुरीकी एक छटा आविर्भूत होती है। चकोर जैसे चन्द्र-किरण पान करता है उसी प्रकार जीवके नेत्र उस रूप-रसको पानकर अपनी सत्ताकी सफलता अनुभव करते हैं। चक्षु रूप दर्शनके लिए रचे गये हैं यह सत्य है किन्तु जागतिक खंडित और मलिन रूप दर्शनके लिए नहीं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जैसे मधुका अभाव हो तो गुड़से निर्वाह कर लिया जाता है वैसे ही अप्राकृत परम-रूपकी आस्वादन शक्तिके अभावसे जीव जागतिक प्राकृत रूपसे ही अपना काम चलाता है। लेकिन रूप-दर्शनकी प्यास इससे नहीं मिटती। इसी तरह अन्य इन्द्रियोंकी स्वाभाविक आकांक्षाके सम्बन्धमें भी समझ लेना चाहिए। एकमात्र पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेके अनन्तर ही जीवकी प्रत्येक इन्द्रिय चिरकाल-के लिए तृप्ति लाभ करती है। यह अप्राकृत रूप-रस आस्वादनका सौभाग्य लाभ हो जानेपर प्राकृत रूप-रस फिर उसको आकर्षित नहीं कर सकता। साधना-के प्रभावसे ऐसी भी अवस्था आ जाती है जबकि प्राकृत रूप-रस जीवकी राग-रंजित दृष्टिके सम्मुख अप्राकृत रूप-रसमें परिणत हो जाता है। यही आप्तकाम अवस्था है।

अवश्य यह इन्द्रियोंके सम्बन्धमें कहा गया। इसी प्रकार जो गुण हमारे चित्तको आकर्षित करते हैं--जैसे शील, औदार्य, गाम्भीर्य, प्रेम, दयालुता, क्षमा, वात्सल्य, आनुगत्य, प्रीति, सौहार्द, वीर्य, ओजः, प्रकाश—ये सब पुरुषो-त्तमके स्वरूपमें पूर्णतया चिर देदीप्यमान हैं। ये उनके स्वभावसिद्ध गुण हैं—ये कल्पना द्वारा उनमें आरोप किये जाते हैं। साधकमें इन गुणोंका किंचित् प्रकाश हो जानेसे ही वह धन्य हो जाता है। किन्तु वस्तुतः साधकका लक्ष्य परिच्छिन्न आदर्श नहीं है—परम पुरुषका विराट् आदर्श है। इसलिए वह अल्प प्राप्तिसे सन्तुष्ट नहीं होता। वह भूमन्को अपना कर लेना चाहता है। पुरुषोत्तम ही भूमन्-पुरुष हैं। जबतक मनुष्य उनको प्राप्त न कर ले तबतक उसके हृदयकी शून्यता चिरकालके लिए विदूर नहीं होती। मनुष्य स्वयं जिनका अंश है उनके स्वरूपको क्रमशः आत्मविकास द्वारा पूर्णतया अनुभव किये बिना कैसे तृप्त हो सकता है।

यह अनुभव सामान्यतः तीन प्रकारका होते हुए भी विशेषतः दो प्रकारका माना गया है। यह पहले ही बताया गया कि पुरुषोत्तम निराकार ब्रह्मके साकार प्रकाश हैं। इसलिए साधकको भी निराकार ब्रह्मानुभूतिकी भित्तिपर इस साकार पुरुषोत्तमकी अनुभूतिको प्रतिष्ठित करना होगा। ऐसा न कर सकने-से पुरुषोत्तमका अनुभव केवल मायाका खेल प्रतीत होगा। ऊपर जो दो प्रकारका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष अनुभव बताया गया है उनमें एक आन्तर है और दूसरा बाह्य। अपने-अपने हृदयाकाशके अन्तस्तलमें पुरुषोत्तमकी जो चिदानन्द ज्योतिर्मय रूपमें अनुभूति है वह आन्तरिक है क्योंकि वह एकाग्रीकृत और भक्तिरागरंजित अन्तर्मुख मनके द्वारा सम्पन्न होती है। इसलिए इसको एकेन्द्रियवेद्य कहा गया है। इस अवस्थामें उनका रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गंध सभी अनुभव किये जा सकते हैं और स्पष्टतया आस्वादन भी किये जा सकते हैं किन्तु मनके द्वारा हृदयके भीतर। उनका अपूर्व रूप दर्शनमें आता है किन्तु बाह्य चक्षुसे नहीं केवल अन्तर्मुख मनके द्वारा। उनकी अपूर्व वाणी सुनी जाती है किन्तु बाह्य श्रोत्रेन्द्रियसे नहीं अन्तर्मुख मनके द्वारा। उनका रूप-रसादि प्रत्येक गुण आस्वादन होता है किन्तु अन्तर्मुख मनके द्वारा, बहिर्मुख इन्द्रियोंसे नहीं। यहां तक कि वार्त्तालाप भी किया जा सकता है और प्रत्युत्तरमें उनकी स्नेह-वाणी भी सुनी जा सकती है किन्तु यह भी एकमात्र मनके द्वारा ही सम्पन्न होती है क्योंकि यह सब भीतरका व्यापार है। परमात्म-साधनकी योगस्थ अवस्थामें यह अनुभूति लाभ होती है। यह ब्रह्मानुभूतिसे विलक्षण है।

इसके पश्चात् एक और विशेष अनुभूति है जो इससे श्रेष्ठ है। यह अनुभूति सब इन्द्रियोंकी सहायतासे होती है। इस अनुभूतिमें पुरुषोत्तमका स्वरूप-दर्शन भीतर ही नहीं प्रत्युत बाहर भी होता है। नेत्र उनका रूप देखते हैं, कान उनका शब्द सुनते हैं, नासिका उनके अङ्गकी दिव्य गन्ध अनुभव करती है, रसेन्द्रिय उनका अमृत-रस आस्वादन करती है और सब अङ्ग उनका स्पर्श अनुभवकर पुलकित हो जाते हैं। इस अवस्थामें वे सब इन्द्रियोंके गोचर होकर बाहर प्रकाशित होते हैं और सब इन्द्रियोंकी चिरतृप्ति विधान करते हैं। अनादि कालसे जीवके चक्षु इसी रूपके दर्शनके लिए तृष्णातुर थे। इसी रूपके दर्शनसे अनादि तृष्णा चिर तृप्तिमें विश्राम करती है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए। ज्ञानके पथमें ब्रह्मानुभूतिसे आत्माकी तृप्ति होती है, योगके पथमें परमात्मानुभूतिसे अन्तःकरणकी तृप्ति होती है और भक्तिके पथमें भगवदनुभूतिसे बाह्येन्द्रियोंकी तृप्ति होती है और साथ-साथ देह शुद्ध होकर भावदेह रूपमें परिणति लाभ करती है। इसका कारण यह है कि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरुषोत्तमका स्फुरण बाहर होनेसे उसके अनुभवकर्त्ता साधकका भी तदनुरूप स्फुरण हो जाता है। अर्थात् भावदेहमें अधिष्ठित हो जानेसे ही साधक भावके ठाकुर अपने इष्टदेवको भक्ति-संस्कृत इन्द्रियों द्वारा बाहर आस्वाद कर लेता है।

योगके पथमें अन्तरके अन्तस्तलमें पुरुषोत्तमका ज्योतिर्मय स्वरूप दर्शन होता है। तब योगी-साधक अपने मनोमय देहमें यह अनुभूति लाभकर लेता है। कारण, कायाके अनुरूप-भावमें भीतर अथवा बाहर पुरुषोत्तमका दर्शन सिद्ध होता है।

प्राकृत एवं अप्राकृत दोनों कायाके अभिमानसे मुक्तावस्था लाभ करनेपर स्वयंप्रकाश ब्रह्मकी अनुभूति होती है। यही पुरुषोत्तमानुभूतिकी भित्ति स्वरूप है।

पहले बताया गया है कि जीव अनादिकालसे कालके राज्यमें विचरण कर रहा है। जब तक पुरुषोत्तमका पूर्णरूपमें साक्षात्कार न हो तबतक कालसे सम्बन्ध अनिवार्य है। पुरुषोत्तमका साक्षात्कार यदि पूर्णतया न होकर आंशिक हो तो कालसे अव्याहति भी आंशिक ही होगी। कालका राज्य जैसा है ठीक वैसा ही रहता है। साधक अपने पुरुषोत्तमके दर्शनसे उनके धाममें प्रवेश करनेका सामर्थ्य लाभ करता है। जब प्रत्येक जीव साधक अवस्था प्राप्त कर इस प्रकार अपने अन्तर्निहित पुरुषोत्तम भावको प्रस्फुटित कर सकेगा तभी यह कालका राज्य पूर्ण ब्रह्म-राज्यमें परिणत होगा, इससे पहले नहीं। इसलिए पुरुषोत्तम भावके साधककी आन्तरिक गम्भीर प्रार्थना एकमात्र इसी मंगलमय महालक्ष्यके लिए उठती है। परम पुरुष जैसे स्वयं स्वभावतः आप्तकाम होते हुए भी सब जगत्के कल्याणके लिए कर्म करते हैं वैसे ही परम पुरुषके भक्त-साधक, उन्हींका आदर्श सामने रखकर, स्वयं आप्तकाम होकर, स्वयं पुरुषोत्तमको प्राप्त करके भी सब जीव जिससे उनको प्राप्त कर सकें इस विषयमें चेष्टा करते हैं। यही महाकरुणा है। अपने आप परमानन्द लाभकर जिससे तद्रूप परमानन्द सब लाभ कर सकें इस विषय समग्र विश्वके मङ्गलके लिए वे व्यापृत रहते हैं।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवान, इष्ट और गुरु

"भगवान, इष्ट और गुरुके सम्बन्धमें साधक-सम्प्रदायोंमें विभिन्न मत प्रचलित हैं। इसी मतभेदानुसार साधकोंके भावोंमें भी भेद पाया जाता है। जिससे इस विषयमें सबके मनमें एक स्पष्ट धारणा हो जाय इसलिए यहाँ इन तीन तत्त्वोंके सम्बन्धमें दो-एक बातें बताई जाती हैं।

'भगवान' चैतन्यमय आनन्दमय महासत्ता स्वरूप हैं। देश, काल अथवा निमित्त द्वारा सीमाबद्ध नहीं हैं। विश्वव्यापी एवं विश्वातीत हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार शक्तिका कार्य है। जीव उन्हींका अंश है एवं उन्हींसे उद्भूत होकर मायाके आवरणसे आवृत होनेके कारण अपनेको उनसे पृथक् समझता है। मायाका आवरण अपसारित हो जानेसे ही यह भेदभाव दूर हो जाता है और जीव भगवानके साथ अपना एकत्व अनुभव करनेमें समर्थ होता है। माया भी वस्तुतः कोई पृथक् वस्तु नहीं है। यह भी श्रीभगवानके आत्मस्वरूपकी आवरण-कारिणी और जगत्की सृष्टि-स्थिति-संहार-विधायिनी शक्ति है।

'इष्ट' अथवा इष्टदेवता नित्यसिद्ध सर्वव्यापी भगवत्सत्ताके ही आंशिक प्रकाश हैं। आंशिक प्रकाश होनेपर भी इष्टकी सत्ता भगवत्सत्तासे सम्पूर्णतः अभिन्न है। साधक-जीवका मायावरण जिस परिणाममें विदूरत होता है ठीक उसी परिमाणमें इष्टको भगवत्-स्वरूप भावमें ग्रहण करनेका सामर्थ्य लाभ होता है। जो इच्छा अथवा अभिलाषाका विषयीभूत है उसीका नाम है इष्ट। मनुष्य आनन्द भिन्न और किसी वस्तुकी साक्षात् रूपमें कामना नहीं करता। दुःख-जर्जरित, अनन्त प्रकारकी तीव्र व्यथाओं और वेदनाओंसे क्लिष्ट तथा विविध लांछनाओं से लांछित मानव-हृदय स्वभावतः ही आनन्दके लिए लालायित होता है। वह जिस अवस्थामें है वह दुःख-बहुल अनिष्ट संसार-मरुभूमि है। इस अनिष्ट-में जो करुणा-परवश होकर इष्ट प्रदर्शन अथवा इष्ट-प्राप्तिका संधान दान करते हैं उन्हींका नाम 'गुरु' है।

पहले बताया गया कि इष्ट आनन्दका ही नामान्तर है। यह आनन्द स्वरूपतः भगवानके आनन्दसे पृथक् न होते हुए भी दुःखविलष्ट साधकके भावा-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

नुसार नाना प्रकारका होता है। इसी कारण आनन्द एक होते हुए भी उसकी प्रकाशमय मूर्ति अनेक रूप धारण करती है। सुनिपुण चिकित्सक जैसे प्रत्येक रोगीके लिए उसके रोगानुसार योग्य औषधिकी व्यवस्था करता है ठीक उसी प्रकार गुरु तापक्लिष्ट जीवको उसकी रुचि, प्रकृति तथा संस्कारानुसार अनुरूप इष्ट प्रदान करते हैं। यद्यपि इष्ट मूलमें एक ही हैं एवं सब ही इष्ट उन्हीं परम-इष्ट श्रीभगवान अथवा परमात्माके अंशस्वरूप हैं तथापि भावके वैचित्र्यानुसार इस प्रकारकी व्यवस्था करनी पड़ती है। इष्टका साधनकर अर्थात् अपनी प्रकृत्यानुसार व्यक्तिगत आदर्शका अनुसरणकर सिद्धिलाभके पश्चात्, साधक अभावसे अथवा प्राकृतिक दुःख-क्लेशसे मुक्ति लाभ करता है। तब साधक इष्टबलसे बलिष्ठ होकर भगवानका पूर्णस्वरूप धारण करनेके लिए साधन पथपर अग्रसर होता है। जब तक इष्टसिद्धि प्राप्त न हो तब तक साधक दुर्बल एवं हीन-वीर्य रहता है किन्तु इष्टलाभके पश्चात् साधककी शक्ति और आनन्द पूर्ण विकास प्राप्त करते हैं। उस समय भगवानको पूर्णतया धारण करनेकी योग्यता उत्पन्न होती है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि इष्ट अंशस्वरूप हैं और भगवान अंशि-स्वरूप हैं किन्तु वस्तुतः भगवत्-स्वरूप गुरुका ही तात्विक रूप है क्योंकि गुरु श्रीभगवानसे अभिन्न हैं। भगवान जैसे आनन्द अथवा इष्टरूपमें उसके निकट आविर्भूत होते हैं साधक भी आनन्द प्राप्तकर जिस मूलप्रस्रवणसे वह आनन्द निःसृत हुआ है उन्हीं गुरुरूपी भगवत्स्वरूपको धारण करनेकी चेष्टा करता है। आनन्दलाभके पूर्व इन महाचैतन्यरूपी गुरुका संधान पाना दुर्घट है। कारण पहले गुरुका जो स्वरूप देखनेमें आता है वह आनन्दसे संश्लिष्ट होता है किन्तु आनन्द प्राप्तिके पश्चात् गुरुका परम रूप जो आनन्दके भी अतीत है साधकको दृष्टिगोचर होता है। गुरुका गुरुभाव तभी उसको हृदयंगम होता है और तभी वह अपने आपको लघु समझ पाता है। उसका समस्त अहंकार चूर्ण हो जाता है और विशुद्ध आनन्द भोग करनेकी वासना भी चिरकालके लिए उन्मूलित हो जाती है। यही उसके आत्मसमर्पणकी अवस्था है। साधक-शिष्य इस प्रकार गुरु-को महान् एवं अपनेको अणु बोधकर जब श्रीगुरुके चरणोंमें अपने आपको अकातर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावसे अर्पण करता है और स्वयं सम्पूर्णतः रिक्त हो जाता है तब वे 'महतो महीयान्' गुरु भी अपनेको साधकके निकट निःशेषतः अर्पण करते हैं जिसके फलस्वरूप वह रिक्तस्थान पूर्ण होकर प्रस्फुटित हो उठता है। एक तरफ साधक-शिष्यके एवं दूसरी तरफ गुरु के आत्मसमर्पणके फलस्वरूप एक अखंड स्वयंप्रकाश आत्मा स्वतः उज्ज्वल रूपमें जाग उठती है। उस समय गुरु-शिष्य का भेद नहीं रह जाता। तब एकमात्र आत्मा ही अपनी महिमामें विराज करती है। तभी समझमें आता है कि जो भगवान हैं, वे ही इष्ट हैं, वे ही गुरु हैं और वही अपनी आत्मा है। परोक्ष ज्ञानकी अवस्थामें भगवान समझकर जिनको बहुत दूर स्थापन किया था आत्मदर्शनके पश्चात् उनको निकटसे भी निकटतर रूपमें, अपने आत्मस्वरूपमें, उपलब्ध कर लिया। यही साधककी साधना-की परिसमाप्ति है।

पहले, गुरु साधक को इष्ट दानकर दुःखके भीतर उसको नित्यानन्दका सन्धान प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् शिष्यकी योग्यताकी वृद्धिके फलस्वरूप गुरुके परम अनुग्रहसे भगवत्-स्वरूपका साक्षात्कार होता है। वास्तवमें यही गुरुका साक्षात्कार है। इसके अनन्तर एक ओर गुरुभाव अथवा भगद्भाव कट जाता है और दूसरी ओर जीवभाव भी जाता रहता है। उस समय एकमात्र अद्वैत परमा-त्मतत्त्वकी ही स्फूर्त्ति रह जाती है। तब भक्त-जीव, आराध्य-भगवान, मध्यवर्ती इष्ट एवं पथ-प्रदर्शक गुरु सभी अखण्ड ऐक्यसूत्रमें ग्रथित दिखाई देते हैं। इस अवस्थामें कर्त्तव्य रूपमें कुछ नहीं रह जाता। तब जो कुछ स्फुरित होता है उसको स्वाभावकी लीला समझना चाहिए।"

गुरुतत्त्व

'गिरति अज्ञानं इति गुरुः'—जो अज्ञानरूपी अन्धकार दूर करते हैं वे गुरु हैं। कोई-कोई कहते हैं 'गु' शब्दका अर्थ है अन्धकार, 'रु' का अर्थ है आलोक। जो अन्धकारसे आलोकमें ले जाते हैं, जो अन्धको दिव्य दृष्टि दानकर—स्वरूप-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विस्मृतको आत्मस्वरूप दिखाकर—उसको स्वरूपमें स्थिति लाभ करनेकी योग्यता दान करते हैं, जो स्वभावके पथपर प्रवृत्त कर देते हैं, जो साधकके भीतरका स्रोत उसको धारण करा देते हैं अर्थात् जो साधकको स्रोतापन्न कर देते हैं, जो अवान्तर धाराको परित्यागकर स्वाभाविक धारामें प्रतिष्ठित कर देते हैं, जो प्रज्ञानेत्र खोल देते हैं—वे ही गुरु हैं। इस प्रसङ्गमें यह श्लोक तुलनीय है :—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु शिष्यके चित्तको शुद्ध और शान्तकर उसको विशुद्ध तत्त्वमें प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न करते हैं। शिष्य सत्-शक्ति प्रधान है, गुरु चित् शक्ति प्रधान हैं, इष्ट आनन्द-शक्ति प्रधान हैं; भगवानमें सत्ता, चैतन्य और आनन्दका अपूर्व समवन्य है। गुरुका प्रकृत स्वरूप तत्त्वातीत है। गुरु भगवानकी चित्-विभूति हैं। मुख्य गुरु चैतन्यमय ईश्वर हैं। ईश्वरकी अनन्त शक्तियोंमें अनुग्रहशक्ति ही गुरु है। अतः गुरु कृपाशक्तियुक्त श्रीभगवान् हैं। गुरु वे हैं जो नीचे उतरकर बद्धजीवके ग्रहणयोग्य होते हैं, उसको आकर्षित करते हैं, धाममें ले जाते हैं, उसकी पूर्वस्मृति जगाकर उसको स्वरूप-प्रतिष्ठित करते हैं। गुरुका मुख्य कार्य है पतितका उद्धार अर्थात् शिष्यको ज्ञान दानकर, घरके लड़केको अपने घर वापस पहुँचा देना।

जहाँ कहा गया है 'मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः', उसका तात्पर्य यह है कि जगत्में जो भी प्रकृत ज्ञान प्रचारकर गये हैं वे सभी गुरु हैं। सब सम्प्रदाय गुरुकी आवश्यकता स्वीकार करते हैं।

साक्षात् परमेश्वर ही सदगुरु हैं अथवा उनके अनुग्रह प्राप्त तत्स्वधर्मापन्न जीवन्मुक्त अधिकारी पुरुष गुरु हैं। भगवान् ही आचार्यकी देहमें अधिष्ठित हुए सब बन्धन छिन्नकर मोक्षदान करते हैं। वे एकाधारमें ज्ञानी और योगी हैं। वे जीवका पशुत्व दूरकर उसको सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व और शिवत्व तक दानकर सकते हैं। गुरुमें शिष्यको उद्धार करनेका सामर्थ्य होना चाहिए। इसीलिए कहा है :—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इष्टदेव-स्वरूपो यः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
शुद्धो बुद्धः प्रमुक्तश्च गुरुरादर्शमानवः ॥

शक्ति नामकी भगवदिच्छाकी प्रेरणासे सद्‌गुरु लाभ करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। सद्‌गुरुकी प्राप्तिका मूल कारण है भगवदिच्छा। शिष्यका स्वभाव ही भगवत्-कृपा आकर्षण कर लेता है—"शिष्यप्रज्ञैव बोधस्य कारणम् ।"

मन्त्रदान—साधकका काम है भगवत्-इच्छाके आगे आत्मसमर्पण करना। गुरु ऐसा पुरुष होना चाहिए जो जानता हो कि हमारे जीवनमें भगवदिच्छा क्या है। शिष्यका काम है गुरुकी इच्छाके आगे आत्मसमर्पण करना। गुरुका काम है शिष्यके जन्मजन्मान्तरीय संस्कार, माता-पिताका सम्पूर्ण इतिहास और शिष्यके पूर्वजन्मके समस्त परिचयसे अवगत होकर शिष्यका कर्मपथ निर्णय कर देना और जिससे उसके जीवनमें भगवदिच्छा पूर्ण सफलता लाभ कर सके उस विषय चेष्टा करना। गुरुदत्त (मन्त्र) बीजमें ये सब तत्त्व निहित रहते हैं। शिष्यका काम है उस बीजसे एक पूर्ण परिणत वृक्ष उत्पन्न करना। गुरुको शिष्यका सब भार लेना होता है। दीक्षाका अभिप्राय है भगवत्-कृपा लाभकी प्रणाली दिखा देना। जिससे प्रसुप्त चैतन्य जागरित हों उसीका नाम दीक्षा है। गुरु शिष्यको दिव्यदेह—सिद्धदेह—दान करते हैं; गुरु इष्टलाभमें सहायक होते हैं; इष्ट-देवता उन्हींके स्फुरण हैं। इष्टतत्त्वकी अपेक्षा भी गुरुतत्त्वकी प्रधानता है। इष्ट केवल चिन्मय हैं किन्तु गुरु चिन्मय और क्रियामय दोनों हैं। गुरु ही स्वरूपप्रतिष्ठ करके शिष्यकी इष्टप्राप्तिमें सहायक होते हैं।

हमारी साधना—हमको भगवान् जैसे चलाना चाहते हैं, हमारे भीतर भगवदिच्छा जिस प्रकार पूर्ण सफलता लाभ करे, जिससे हम भगवान्‌से तन्मयता लाभकर उनकी इच्छाकी पूर्णतामें केवल निमित्त कारण हो सकें यही हमारी साधना है। मैं भगवदिच्छा नहीं जानता किन्तु जो उसको जानते हैं और मुझको समझाकर भगवदिच्छा पूरण करनेका इच्छुक और समर्थ कर सकते हैं वे ही मेरे गुरु हैं। अतएव गुरुको आत्मसमर्पणका अर्थ है भगवान्‌को आत्मसमर्पण करना। गुरु ऐसा होना चाहिए जो अपने स्वार्थके लिए भगवदिच्छाको विकृत न करें।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्त्र शास्त्रमें चार गुरुओंका उल्लेख पाया जाता है :—(१) गुरु (उपदेष्टृगण), (२) परमगुरु (मन्त्रद्रष्टा ऋषि), (३) मन्त्र-शक्ति (जिससे मन्त्र अभिव्यक्त होता है), (४) अनादिनाथ महाकाल (गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु, परात्पर-गुरु)। स्मरण रहे कि सद्गुरु पृथ्वीपर दुर्लभ हैं। अनधिकारी, व्यवसायी, कपटी, स्वार्थपर गुरुओंके कारण ही भारतवर्ष आज इस दुर्दशामें पहुँच गया है। इसलिए सर्वसाधारणको प्रकृत गुरुका स्वरूप समझा देना होगा। गुरु होना चाहिए इष्ट पुरुषोत्तमकी मूर्ति—संयत, शुद्ध, निर्लोभी, आत्मदर्शी, ज्ञानी तथा आदर्श नेता। इष्ट होना चाहिए पुरुषोत्तम (Perfect in every Perfection)—ससीम देहमें असीमका पूर्ण प्रकाश (Purer than Purity itself)। भगवान्के सम्बन्धमें समस्त विकृत धारणा दूरकर उनका प्रकृत स्वरूप यथासम्भव सुन्दर रूपमें संसारके सामने रखना होगा।

इष्टतत्व

जो इच्छाका विषय है, जिसको प्राप्त करनेकी मनुष्य इच्छा करता है उसीका नाम इष्ट है। इष्टकी प्राप्ति साधन-भजनका ही नहीं, प्रत्युत जीवनका भी लक्ष्य है। जिसके द्वारा साक्षात् अथवा परोक्ष रूपसे इष्टकी प्राप्तिमें बाधा पड़े—जिसको मनुष्य परिहार करनेकी चेष्टा करता है, उसीको अनिष्ट कहते हैं। अतएव 'इष्ट' का अर्थ है अभिलषित अथवा प्रार्थित विषय। इष्ट वरणीय, लोभनीय और स्पृहनीय वस्तु है। आत्माका स्वरूप आनन्द है, आत्माके लिए ही आनन्द है, मेरे लिए ही तो सब है, मैं न होऊँ तो आनन्द कौन करेगा? "आत्मार्थं सर्वं प्रियं भवति"। आत्मा सच्चिदानन्द है, इसलिए हम जीवित रहना चाहते हैं, जानना चाहते हैं, आनन्द करना चाहते हैं।

यद्दृष्ट्वा नापरं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः।
यज्ज्ञात्वा नापरं ज्ञेयं तदिष्टमवधारय॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

(जिसको देखकर और कुछ देखनेको बाकी नहीं रहता, जो हो जानेपर और कुछ होना बाकी नहीं रहता, जिसको जानकर और कुछ जानना बाकी नहीं रहता ऐसे इष्टकी निश्चय करके धारणा करनी चाहिए।)

परमात्मा ही परम इष्ट वस्तु हैं। वे गम्भीरतामें भी परम हैं (परम in intensity) एवं व्यापकतामें भी परम (परम in extensity) हैं। अर्थात् वे अनन्त हैं उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ सार वस्तु कोई नहीं है और वे ब्रह्म—सर्वव्यापी—हैं। ऋषियोंने गहरी डुबकी लगाकर 'नेति नेति' साधन द्वारा उनकी गम्भीरता उपलब्ध की और उनको सर्वव्यापी कहकर घोषण किया। ये परमात्मा ही हमारे परम इष्ट वस्तु हैं। वे एक अखंड अद्वय तत्त्व हैं। जीव-जगत् उनकी उपाधि है। वे जीव-जगत् वेषसे आवृत हैं। इसी आवरणके कारण हम अखंडको खंडित समझते हैं। अज्ञानकी आवरण शक्तिने उनको ढक रहा है और विक्षेप शक्तिने उनको अनन्त देहादिरूपमें कल्पनाकर, जीवको देहादिमें आवद्धकर, देहात्म-वुद्धि दान कर दी है।

सच्चिदानन्द वस्तुतः एक वस्तु होते हुए भी हम सत्ता, चैतन्य और आनन्दको त्रिधा विभक्त भावमें अनुभव करनेके लिए बाध्य हो गये हैं। सदंशप्रधान भावमें वे विशुद्ध सत्ता हैं, चिदंशप्रधान भावमें वे स्रष्टा और भोक्ता हैं और आनन्दांशप्रधान भावमें वे भोग्य, दृश्य, इष्टरूप बने बैठे हैं। शिष्य सत्-प्रधान, गुरु चित्-प्रधान, इष्ट आनन्द-प्रधान हैं और भगवान सत्ता-चैतन्य-आनन्दके अपूर्व समन्वय हैं।

शिष्य एक देहावच्छिन्न जीव है, उसके भीतर भगवत्-कृपासे देहादिकी आसक्ति कम होकर प्रकृत 'मैं' के संधानकी प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई है। तब गुरु उसके कामना, वासना, अहंकार, निजसुखस्पृहादि दूरकर उसको प्रकृत द्रष्टास्वरूप-में ले जानेकी चेष्टा करते हैं। उसके भीतरकी आगन्तुक मलिनता दूरकर, उसके चित्तको शून्यमें परिणतकर, उसको विशुद्ध सत्ता स्वरूपमें स्थित करनेका प्रयत्न करते हैं और जिससे उसके भीतर आत्मतत्त्वका स्फुरण आरम्भ हो इस विषय सचेष्ट रहते हैं। उसके ज्ञाननेत्र खोलकर उसको प्रकृत द्रष्टा बना देते हैं। तब शिष्य अपने देहमें आत्माको प्राप्तकर आत्मभावमें ऐसा विभोर हो जाता है कि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

'ध्रुव की भाँति इस भयसे कि कहीं यह भाव जाता न रहे' उसकी आँख खोलनेकी इच्छा नहीं होती। किन्तु जो वस्तु सर्वगत है उसको केवल अपने भीतर प्राप्त करनेसे पूर्ण रूपमें प्राप्त करना नहीं होता—उसका सर्वदर्शन करना होगा, सर्वत्र उपलब्ध करना होगा। इतने दिन जो शरीरसे प्रीति करता था उसका हेतु न जाननेके कारण देहादिमें आसक्त हो गया था। सद्गुरुकी कृपासे अब उसे मालूम हो गया कि उसकी देहके भीतर उसका प्रियतम आत्मा है। इसीलिए अज्ञातरूपसे वह उसको देहकी प्रीति रूपमें अनुभव होता था। और आत्माका स्वरूप सर्वव्यापी होनेके कारण जिसके भीतर वह अपने आत्माको जितना अधिक अनुभव करता था, उतना ही वह व्यक्ति उसको अधिक आत्मीय मालूम होता था अर्थात् उतनी ही वह उससे अधिक प्रीति करता था। अब गुरुने आत्माके संधानका कौशल उसको बता दिया। फलतः 'यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम्' होने लगा। अब धीरे-धीरे सब पदार्थ उसको प्रिय मालूम होने लगे—सब पदार्थ उसके प्रिय इष्टरूपमें प्रतीयमान हो गये। कालान्तरमें जब सब पदार्थ आत्माकी विभूतिरूपमें अनुभव होने लगे तब उसके भीतर इष्टतत्त्वका स्फुरण आरम्भ हुआ जिसने क्रमशः आकृति लाभ की। वह मूर्ति चंडीके 'अशेषदेवगण-समूह—मूर्ति, एकैकस्था नारीमूर्ति'के समान हो गई। वह मूर्ति एकाधारमें उसकी समस्त रूपोंकी चरम परिणति हो गई। तब सब रूपोंकी चरम परिणति आरम्भ हुई और सब रूपोंमें उनका दर्शन होने लगा। "कृष्णमयी कृष्ण जार अन्तरे बाहिरे, जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े ताहाँ कृष्ण स्फुरे।" 'जित देखौं तित श्याममयी है।' समस्त इन्द्रियाँ तथा आत्मा उनके सौन्दर्य-माधुर्यके सागरमें डूब गये।

इस अवस्थामें भूतकी ओर दृष्टि की तो भूत, चित्तकी कल्पनासे मुक्त होनेके कारण, शुद्धसत्त्वमें परिणत दिखाई दिया। चित्तकी ओर देखा तो चित्त, भूतकी कामना-वासनासे मुक्त हो जानेके कारण, शुद्ध चित्स्वरूपमें परिणत प्रतीत हुआ। सभी पदार्थ स्वरूप-प्रतिष्ठ, ब्रह्मभावापन्न, प्रतीत होने लगे।

सद्गुरु जब साधकका दिव्य दर्शन खोल देते हैं तब वह सब दृश्योंमें आत्मा तक देखने लगता है। अतएव जिनको उसने इष्टरूपमें भीतर देखा था उनका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वत्र दर्शनकर साधक स्वयं इष्टमय हो जाता है। इष्टका यह सर्वव्यापी भाव ही भगवद्-भाव है ।

ऊपरसे नीचे उतरते समय—अवरोहणके समय (सृष्टिके समय)—पहले भगवान, पीछे इष्ट और अन्तमें गुरु रहते हैं। परन्तु ऊपर जाते समय—आरोहणके समय (लयके समय)—पहले गुरु, पीछे इष्ट और सर्वशेषमें भगवान रहते हैं। अतः साधनराज्यका आश्रय गुरु हैं किन्तु यह गुरु सद्गुरु होना चाहिये।

इष्ट एक ऐसी वस्तु होनी चाहिए कि जिसके द्वारा हमारी समस्त इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा आत्मा तककी पूर्ण तृप्ति साधित हो सके—जिनको जानकर और कुछ जानना बाकी न रहे, जिनको प्राप्तकर और कुछ प्राप्त करनेको बाकी न रहे और जिनके अनुकूल हो जानेपर और कुछ होनेको भी बाकी न रहे। पुरुषोत्तम ही ये इष्ट हैं—ऋषिगण पुरुषोत्तमकी इसी प्रकार वर्णना कर गये हैं। इस इष्टका दर्शन हो जानेपर और कुछ भी देखनेकी इच्छा नहीं रहती यद्यपि इस देखनेकी पूर्णता समय और साधनापर निर्भर करती है। जितना ही मिले उतनी ही प्राप्तिकी इच्छा बढ़ती है और प्रतिदिन नवीन मालूम होता है। परम विरहकी अवस्थामें भी इष्टके अतिरिक्त और कोई अभिलाषा नहीं होती। उनके विरहमें मृत्युको भी उल्लासपूर्वक आलिंगन किया जा सकता है। चातक क्या मेघ-जलके अतिरिक्त अन्य जल पान कर सकता है।

इष्ट ऐसे रूप और गुणसे विभूषित होकर आते हैं कि साधककी बाह्येन्द्रिय, अन्तरिन्द्रिय तथा आत्मप्रकृति तक पूर्ण तृप्ति लाभकर लेती है। उनके प्रत्येक अंगमें समस्त अंगोंके सब तत्त्व पूर्णतया विराजित रहते हैं। उनका दर्शन मिलनेपर किसी इन्द्रियको पूर्ण तृप्ति लाभ करनेके लिए अन्य किसी वस्तुके निकट जानेकी आवश्यकता नहीं होती। ये इष्ट अपने अलौकिक गुण और महिमा द्वारा साधकके चित्तको पूर्णतया आकर्षितकर, पूर्ण तृप्ति दान करनेमें समर्थ हैं। ये इष्ट हैं परमात्मभावापन्न पुरुषोत्तम। समस्त वस्तुओंके भीतर जो भाव गम्भीरता और व्यापकतामें परम है अर्थात् जो चरम सारतत्त्व पूर्णानन्दस्वरूप हैं, उसको व्यापकता में परमकर, सब भूतोंमें अनुभवकर, सब भूतोंके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

समष्टिगत सारतत्त्व द्वारा इस इष्ट मूर्तिको गठन करना होगा। स्मरण रहे कि इष्ट-गठनका अभिप्राय है इष्टकी धारणा करना। सब इन्द्रियोंको पूर्ण परिणति दान करना ही साधन-भजनका उद्देश्य है अर्थात् पूर्णत्वकी यथासम्भव धारणा करना और उसकी उपलब्धिके लिए समस्त इन्द्रियोंको विशुद्ध तथा पूर्ण परिणत करना। इस हेतु साधककी अन्तःप्रकृति एवं बाह्य प्रकृति इस प्रकार सृष्ट हुई है कि उनमें इष्ट वस्तुको पूर्णतया प्राप्त करनेकी—आस्वाद करनेकी—योग्यता निहित है। समस्त इन्द्रियोंकी पूर्ण परिणत लाभ होनेके फलस्वरूप साधक-की सब इन्द्रियोंके भीतर दूरदर्शन, सूक्ष्मदर्शन, दिव्यदर्शन, आदिकी शक्ति आविर्भूत होती है। तभी साधक इष्ट तत्त्वको पूर्णतया प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। सब इन्द्रियोंको इस प्रकार पूर्ण परिणति लाभ करता ही समस्त साधन-भजन-का उद्देश्य है।

उपर्युक्त कथनसे ज्ञात होगा कि इष्टका गठन अर्थात् इष्ट को आकृति दान करना एवं इष्टोपलब्धिकी योग्यता लाभ करना ही साधनभजनका प्रकृत उद्देश्य है। इष्ट जब हमारे निकट जीव-जगत् रूपमें उपस्थित है तब जीव-जगत्के भीतरसे ही हमें इष्टके निकट जाना होगा अर्थात् जीव-जगत्को अवलम्बन करके इष्टको ग्रहण करना होगा। साधक जिससे इष्टकी धारणा कर सके इसीलिए इष्टदेव अनन्त रूप धारण किये हैं। उनके रूप और गुण तथा उनकी सत्ता, चैतन्य और आनन्द जगत् के अनन्त स्तरों में विन्यस्त हैं। इष्टको पूर्णतया गठन करनेके लिए आवश्यकता है विस्तृत भावोंको एकैकस्थ करनेकी, व्यष्टिकी समष्टिमें मिला देनेकी अर्थात् अंशकी पूर्णता दान करनेकी। इस प्रसंगमें चण्डीका शक्तिचयन तत्त्व चिन्तनीय है। इसी अवस्थामें शंकरने कहा है, "यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम्"। जिस-जिस वस्तुकी ओर मन जाय उसी वस्तुको पूर्णता दानकर उसीके भीतर ब्रह्मानुभव करनेकी चेष्टा करनी चाहिए; वह वस्तु किसका अवतार है, किसको प्रकाश कर रही है—यह अनुभवकर उसको पूर्णतया प्रस्फुटितकर ब्रह्मरूप में दर्शन करना चाहिए। वैष्णवोंका भी यही कथन है—"जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े वाहाँ कृष्ण स्फुरे" 'जित देखौं तित श्याममयी है'। समस्त जीवजगत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्णका विकास, कृष्णकी ही विभूति है। साधन द्वारा ग्रहण योग्यता लाभकर अप्राकृत इन्द्रियोंकी सहयातासे सब भूतोंमें कृष्णदर्शन लाभ करना होगा। सब वस्तुओंको भगवत्-विभूतिरूपमें उपलब्धकर, सबको पूर्णतया विकसितकर, सर्वत्र पूर्णस्वरूपमें सत्ता, चैतन्य और आनन्द आस्वाद करनेके फलस्वरूप श्रीभगवानका समष्टिगत भगवद्भाव उपलब्व कर जो समष्टिगत चिन्मयरूप प्रस्तुत होगा वही इष्टविग्रह है। "एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा"।

भगवान्

इष्टतत्त्वके विवेचनमें बताया गया कि इष्टतत्त्व (पुरुषोत्तम) असीमका ससीम भाव हैं अर्थात् सीमाबद्ध देहमें असीमकी घनीभूत मूर्त्ति हैं। साधनाके परिणामस्वरूप जब यह इष्टतत्त्व सर्वभूतमें उपलब्ध होकर असीमत्वमें पुनः प्रतिष्ठा लाभ करता है तब साधकको भगवत्तत्त्व आस्वादनकी योग्यता प्राप्त होती हैं। तभी इष्टतत्त्व भगवत्तत्त्वमें पर्यवसित होता है।

मान लीजिए कि चरम सारतत्त्व लीलाके निमित्त एक मायाकी चादर ओढ़कर, अपने स्वरूपको ढककर, जीव-जगत् रूपमें परिणत अथवा बिवर्तित हो गया। फलतः हम केवल जीव-जगत् ही देख पाते हैं। तो भी जीव-जगत्के भीतर छिपे हुए जगन्नाथकी आनन्द विभूति थोड़ी-थोड़ी प्रकाश होती हैं। हम इसी खण्डित आनन्दमें आसक्त हो जाते हैं और आनन्द खोजते-खोजते मर जाते हैं। आनन्दकी खोजमें जब किसी ऐसे पुरुष का सन्धान मिलता है जिसका मायावरण स्वच्छ हो जानेके कारण भीतरके छिपे हुए सच्चिदानन्दकी ज्योति बाहर कुछ प्रकाशित होती है तब हम उसकी तरफ आकृष्ट होते हैं। ये ही 'सद्गुरु' हैं। तत्पश्चात् उनके प्रदर्शित पथपर चलते-चलते जब गुरुतत्त्वका स्वच्छ आवरण भी दूर हो जाता है तब वे ही 'इष्ट' हो जाते हैं। इष्ट सीमाबद्ध आवरण-मुक्त ससीम देहमें असीमका प्रकाश है। इसके अनन्तर, साधनाके प्रभावसे एवं भगवत्कृपासे जब हमारा आवरण बिलकुल दूर हो जाता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
है तब उसी चरमतत्त्वको आवरणमुक्त भावमें उपलब्ध कर लेते हैं। तभी समझमें आता है कि वास्तवमें वे आवृत नहीं होते, हम ही मायावरणसे आवृत थे—मायाकी विक्षेप शक्तिके प्रभावसे विभ्रान्त थे। भगवान् सर्वव्यापी हैं—वे सब जीवोंमें हैं। गुरुमें उनके सात्त्विक आवरणके भीतरका प्रकाश था, इष्टतत्त्वमें वे आवरणमुक्त होकर किन्तु ससीम भावमें प्रकाशित हुए और भगवत्-तत्त्वमें पहुँचकर उनके असीम सर्वव्यापी भावको उपलब्ध कर लिया। अर्थात् गुरुके भीतर उनको स्वच्छावरणसे आवृत रूपमें उपलब्ध किया, इष्टके भीतर उनके आवरणमुक्त ससीम प्रकाशको प्राप्त किया और भगवानमें उनके आवरणमुक्त असीम स्वरूपको अनुभव किया।

भगवत्-कृपासे शिष्यका चित्त शुद्ध हो जानेके फलस्वरूप वह सत्-शक्ति-प्रधान हो गया। उसके भीतर गुरुकी चित्-शक्ति आविर्भूत हो जानेके पश्चात् उसके ज्ञान-नेत्र खुल गये और वह गुरुके समान चित्-शक्ति-प्रधान हो गया। इसके बाद अपने भीतर भगवान्की आनन्द-शक्तिका स्फुरण उपलब्ध करनेके फलस्वरूप उसने इष्ट-की आनन्द-शक्ति उपलब्ध करनेकी योग्यता लाभ की। अन्तमें साधनोत्कर्षके परि-णामस्वरूप वह इष्टमें असीम भाव त्यागकर, असीमके स्फुरणके फलस्वरूप सर्वत्र इष्ट दर्शनकर, समस्त जीव-जगत्को इष्टमय उपलब्ध कर लेनेके कारण इष्टतत्त्वके द्वारा भगवत्तत्त्व में पर्यवसित हो गया।

ऋषि-छन्द-देवता-विनियोग

'ऋषि'—(ऋष् = अपरोक्षदर्शन) जिनका अपरोक्ष दर्शन खुल गया हैं वे ऋषि हैं। भगवान् अनन्त हैं और उनके सृष्ट पदार्थ भी अनन्त हैं। जीव असंख्य हैं, जीवके जीवनके लक्ष्य भी असंख्य हैं और उस लक्ष्य सिद्धिके उपाय भी असंख्य हैं। भिन्न-भिन्न उद्देश्य-सिद्धिकी साधन-प्रणाली विभिन्न हैं। जिस साधकने जिस उद्देश्यसे जिस साधन-प्रणाली द्वारा सिद्धि लाभ की है वह उस

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

निर्दिष्ट तत्त्वका, उस निर्दिष्ट साधन-प्रणालीका, ऋषि है। "ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः स्मारका न तु कारकाः"।

वेद नित्य अपौरुषेय हैं। वेद भगवान्‌की चिद्विभूति हैं। ऋषिगण उनके स्रष्टा नहीं हैं। उन्होंने साधनाके प्रभावसे चित्त शुद्धकर प्रकृतिके कलेवरमें भगवानके हाथसे लिखे वेद दर्शन किये। वे मन्त्रके सृष्टिकर्त्ता नहीं हैं—द्रष्टा अथवा स्मारक मात्र हैं।

तत्व नित्य है, प्रकृतिका विधान भी नित्य है। जिस विधान द्वारा जो तत्व साक्षात्कार होता है वह प्रणाली भी नित्य है। ऋषियोंने साधन-बल द्वारा मन्त्रकी साधन-प्रणाली केवल आविष्कार की—वे मन्त्रके सृष्टिकर्त्ता नहीं हैं।

'छन्द'—जिस प्रणाली द्वारा जिस छन्दसे जिस भावका कम्पन उत्पन्नकर उद्देश्य सिद्ध होता है, वह छन्द उस निर्दिष्ट साधन-प्रणालीका छन्द है।

'देवता'—देवता शब्द द्योतनार्थक व क्रीड़ार्थक 'दिव्' धातुसे साधित होता है। प्रकृतके विभिन्न तत्त्वोंमें, विभिन्न स्तरोंमें, चैतन्य-परमात्मा किस प्रकार प्रकाशित और लीलारत हैं, यह देवता-तत्त्वके अन्तर्गत है। भगवत्-चैतन्यके विभिन्न प्रतिबिम्ब अथवा विभूति—विभिन्न भावके लीलाभाव—का नाम देवता तत्त्व है।

'विनियोग'—कौन साधना किस भावसे अनुष्ठित हुई और उससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ, यह विनियोग-तत्त्वके अन्तर्गत है।

पहले ठीक करना होगा कि हम क्या चाहते हैं—हमारा लक्ष्य क्या है। इसके बाद पता लगाना होगा कि यह लक्ष्य किसीके जीवनमें सिद्ध हुआ है या नहीं। जिन्होंने इस लक्ष्यमें सिद्धि लाभ की है वे ही इस लक्ष्य-सिद्धिके, इस मन्त्रके, ऋषि होंगे। जिस उपायसे सिद्धि लाभ की है वह होगा उस मन्त्रका छन्द। जिस स्नायुकेन्द्रमें वह शक्ति निहित है, उस स्नायुकेन्द्रमें प्राणवायु और मनन शक्तिको एकाग्रकर, वहाँकी सुप्त शक्तिको जगाकर, उस केन्द्रमें उस शक्तिके प्रकाश तथा कार्यप्रणालीको उपलब्ध करना कहलायेगा उस साधनप्रणालीका देवतातत्त्व। तत्पश्चात् उस जाग्रत् शक्तिको उद्देश्य साधनमें नियुक्त करके उद्देश्य सफल करना विनियोग तत्त्व है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पहले यह निश्चित करना होगा कि मैं यथार्थ रूपसे क्या चाहता हूँ। इसके बाद उस पथके हेतु आदर्श सिद्ध गुरुके उपदेश, कृपा और सहायताकी आवश्यकता होगी। तत्पश्चात् गुरुकी आदिष्ट प्रणालीको अवलम्बन कर साधन करना होगा, फलतः उद्देश्य सिद्धि अथवा उस देवताका दर्शन लाभ होगा।

ऋषि—तत्त्वदर्शी गुरु; **छन्द**—साधन-प्रणाली; **देवता**—अपूर्व सुप्त आराध्य शक्ति **विनियोग**—उस शक्तिको साधन बलसे जागरितकर, निर्दिष्ट रूपसे चलाकर, कार्यक्षेत्रमें पूर्ण सिद्धिलाभ करना अर्थात् उद्देश्यकी सफलता (Application of the method).

यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र रहस्य

'यन्त्र' शब्द 'यम्' धातुसे निष्पन्न होता है। 'यम् धातु' का साधारण अर्थ है 'संयम करना, नियन्त्रण करना, विस्तृत शक्तिको केन्द्रीभूत करना'। सूर्यकी किरणें जगत्में व्याप्त हैं। इन विस्तीर्ण किरणोंको केन्द्रीभूत करनेपर प्रभूत शक्ति संचारित होती है जिससे अलौकिक कार्य किये जा सकते हैं—इसके अनेकों दृष्टान्त जगत्में मिलते हैं। इस शक्तिको एकत्रितकर और विधानानुसार विकीरणकर इसके द्वारा भीषण परिणाम भी साधित हो सकता है यह हमें पिछले युद्धके आणविक बम्ब (Atomic Bomb) के कार्यकलापसे ज्ञात होता है।

भगवानके सृष्टि-रहस्यका चिन्तन करते समय सबसे पहले हमारा ध्यान एक बीजकी तरफ जाता है जिसके भीतर एक पूर्ण परिणत वृक्षको उत्पन्न करनेकी शक्ति निहित है। इसीके साथ 'सर्वं सर्वात्मकं' उक्ति स्मरण होती है। प्रत्येक परमाणुके भीतर भगवानने अनन्त शक्ति निहित रखी है और इस सुप्त शक्तिको जागरित, विकसित तथा कार्यक्षम करना ही समस्त साधनभजनका उद्देश्य है। जहाँ यह शक्ति, बीजाकार रूपमें निहित है और जहांसे यह बीजशक्ति पूर्णतया प्रकटित होती है, उस आधारका नाम 'यन्त्र' है। हमारे स्थूल

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शरीरके—विशेषतः मेरुदंडके—अन्तःस्थित केन्द्र एक-एक यन्त्र हैं। विविध केन्द्रोंमें मन स्थिरकर साधकगण अलौकिक शक्ति लाभ कर सकते हैं, यह बात हम किसी तरह अस्वीकार नहीं कर सकते। हम दर्शन-यन्त्रके केन्द्र (optic centre) में मन स्थिरकर दूरदर्शन, सूक्ष्मदर्शन, दिव्यदर्शन, लाभ कर सकते हैं, प्रकृत साधन यह स्वीकार करनेको बाध्य है। भगवानका दर्शन करनेके लिए यही दिव्यदर्शन करने वाले ज्ञानचक्षुकी आवश्यकता है। उनका वचन सुननेके लिए दिव्यश्रवणकी जरूरत है। अर्थात् एक-एक अनुभूति लाभ करनेके लिए, तत्तत् केन्द्रोंमें मन स्थिरकर, वहाँकी गुप्त शक्तिको जागरित करनेकी व्यवस्था देखी जाती है। सब यन्त्र पूर्णतया विकसित हुए बिना पूर्णस्वरूपको पूर्णरूपमें आस्वाद करना असम्भव है। साधकगण विश्वास करते हैं कि पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके सब यंत्र पूर्णतया विकसित थे; उनकी प्रत्येक इन्द्रियमें समस्त इन्द्रियोंकी शक्तियाँ विकसित थीं। 'अंगानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति', यह श्लोक इसी रहस्यको प्रकाश करता है। अणुवीक्षण और दूरवीक्षणादि यंत्रोंकी सहायतासे हम जैसे सूक्ष्म और दूरस्थ पदार्थ देखते हैं, इसी प्रकार योगीगण एक-एक स्नायु-केन्द्रमें प्राणशक्तिको चालितकर और वहाँ मन स्थिरकर अनेक अतीन्द्रिय तत्त्व प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। प्राणशक्तिको चालित करनेकी प्रणाली 'तंत्र तत्त्व' का विषय है और मननशक्तिको केन्द्रीभूत करनेकी प्रणाली 'मंत्रशास्त्र' का विषय है। निर्दिष्ट स्नायुकेन्द्र खराब हो जानेसे हम दर्शन-श्रवणादि शक्तिसे वंचित हो जाते हैं यह बात विज्ञानसम्मत है। साधनराज्यमें ये विभिन्न स्नायुकेन्द्र ही यंत्रविशेष हैं। विभिन्न मन्त्रसाधनाके लिए—विभिन्न विषयोंमें सिद्धि लाभ करनेके लिए—पृथक्-पृथक् केन्द्र निर्दिष्ट हैं।

मेरुदंडस्थ चक्रादि योगियोंके प्रधान अवलम्बन हैं। ये साधनराज्यके यंत्र-विशेष हैं। इन सब यंत्रोंमें प्राणशक्तिको चालितकर एवं मनको स्थिरकर अनेक अलौकिक कार्य साधित हो सकते हैं। हमारे देहस्थ विविध केन्द्र (विशेषतः स्नायुकेन्द्र nerve centres) विभिन्न यन्त्रोंमें परिणत हो सकते हैं। चक्षु जैसे देखनेका यंत्र है उसी प्रकार कान सुननेका निर्दिष्ट यंत्र है। इन पाँच विषयोंकी भाँति सूक्ष्म विषय अनुभव करनेके लिए अनेक सूक्ष्म यंत्र भी हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
दूरवीक्षणके व्यवहारमें तीन तत्व लक्ष्यमें आते हैं। प्रथम दूरवीक्षण यंत्र, द्वितीय उसको केन्द्रगत (focus) करनेकी प्रणाली, तृतीय उसमें मन स्थिर करके देखना। इसमें पहला यंत्र है, दूसरा तंत्र और तीसरा मंत्र। प्राचीन ऋषियोंने पहले देहस्थ प्रधान-प्रधान केन्द्रों (यंत्रों) का अविष्कार किया। इसके बाद उन यंत्रोंमें प्राणशक्तिको चालितकर वहाँकी गुप्त शक्तिको किस प्रकार जागरित किया जा सकता है, तंत्र तत्वके भीतर ये सब रहस्य विवृत किये। तत्पश्चात्, उन सब केन्द्रोंमें मन स्थिरकर भगवानकी अलौकिक शक्ति किस प्रकार प्रत्यक्ष की जा सकती है एवं भगवल्लीला दर्शन करनेकी योग्यता लाभ की जा सकती है इसकी अति सुन्दररूपसे व्याख्या की। कुण्डलिनी जागरण और षट्चक्रभेदादि प्रक्रिया द्वारा ये सब तत्व सुन्दररूपसे समझानेकी चेष्टा की। पुराणोंके विविध भगवत्-धाम इन्हीं यंत्रोंकी महिमा प्रकाश करते हैं।

कालीपूजा और दुर्गापूजाके समय जो रंग-बिरंगे चित्र बनाये जाते है ये सब चित्र हमारे भीतरके विभिन्न यंत्रोंके प्रतीक हैं। यंत्र निहित शक्तिको जागरित करनेके लिए प्राणप्रतिष्ठा-बोधनादि अनुष्ठानकी व्यवस्था है। हमारी पूजाके सब अवयव यंत्र-तंत्र-मंत्रकी महिमा प्रचार करते हैं। बाहरके इन यंत्रादि प्रतीकोंके द्वारा भीतरके तत्वोंमें प्रवेश करनेकी व्यवस्था थी। अब हम भीतरके तात्विक भावों और योगप्रणालीको भूलकर केवल प्रतीकमें सीमाबद्ध हो गये हैं एवं अनेक समय प्रकृत तत्वको विकृत कर देते हैं और कहते हैं कि कलियुगमें देवदर्शन, इष्टदर्शनादि असम्भव हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे मालूम हुआ कि यंत्र हमारे देहस्थ--विशेषतः मेरुदंडस्थ—विभिन्न चक्रविशेष हैं। प्रत्येक चक्रमें बीजाकाररूपमें साधनराज्यके अनेक तत्व छिपे हुए हैं। तंत्र वह प्रणाली है जिसके अवलम्बन द्वारा हम यंत्रोंके भीतरका गुप्त शक्तिको प्रकटकर नाना प्रकारकी अलौकिक शक्तिकी सहायतासे सृष्टिरहस्यके—भगवल्लीलारहस्यके—ज्ञान-विज्ञानसम्मत अनेक गूढ़ रहस्योंको जान सकते हैं। यंत्र और तंत्र तत्वके स्वरूपको न जाननेके कारण हम साधनराज्यके अनेक तत्वोंसे वंचित रहते हैं किन्तु मंत्र तत्वका प्रकृत स्वरूप जाने बिना तो साधन-राज्यमें प्रवेश करना ही असम्भव है। इसलिए हम मंत्रतत्वके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्बन्धमें कुछ विस्तारपूर्वक आलोचना करना चाहते हैं। मंत्रतत्वका प्रकृत साधक नाम और नामीका अभेद-रहस्य जानकर नामके साथ नामीको प्रत्यक्ष करनेकी योग्यता लाभ करता है। यशोदाके तुल्य मातृस्नेहसे परिभावित हो जानेपर गोपाल कहकर पुकारनेसे ही गोपाल प्रकट होनेको बाध्य हैं, यह बात मंत्रसाधक अस्वीकार नहीं कर सकता।

मंत्र—मन घातुके उत्तर ड् प्रत्ययान्त त्रै घातु जोड़नेसे मंत्र शब्द साधित होता है (मन् + त्रै + ड् = मन्त्र)। "मननात् त्रायते यस्मात् तस्मात् मंत्र उदाहृतः"--जिसके मनन द्वारा, चिन्तन द्वारा, ध्यान द्वारा संसार-सागरसे उत्तीर्ण होकर, दुःख-कष्टसे मुक्त होकर, परमानन्दकी प्राप्ति होती है उसीका नाम मंत्र है। प्रत्येक मत्रमें तीन तत्त्व निहित रहते हैं—(१) प्रणव अथवा व्याहृति—परमतत्वके निकट जाना (२) बीज—परमतत्त्वका दर्शन करना, परमतत्वको उपलब्ध करना (३) देवता--लौटते समय अपने सब तत्वोंको तद्भावसे परिभावित करना। एकाक्षर मंत्रमें भी ये तीनों तत्व पाये जाते हैं।

'प्रणव'--यह सर्वव्यापी भगवत्तत्त्वको प्रकाश करता है। प्रणवमें शक्तिमान और शक्तितत्वके सब रहस्य वर्त्तमान हैं। प्रणव (ॐ) के अकार-उकार-मकार शक्तितत्वके, काली-आदि तत्वके द्योतक हैं। अर्द्धमात्रा "शान्तं शिवं अद्वैतम्" की महिमा प्रकाश करती है। "अर्द्धेन एकांशेन मीन्यते परिच्छिद्यन्ते अनया इति अर्द्धमात्रा"—जिसके अर्द्धमें (एकांशमें) जीवजगत् सीमाबद्ध, परिणत अथवा विवर्तित है (एकांशेन स्थितं जगत् इति)। यही पूर्ण अखंड अद्वय तत्व अर्द्धमात्रा शब्दका लक्ष्य है। जगत्के सब रहस्य एवं जगत्के अतीत रहस्य, भगवानके विश्वमय एवं विश्वातीत तत्व, प्रणवके भीतर निहित हैं। प्रणवके अकार, उकार और मकारके द्वारा हम स्थूल, सूक्ष्म और कारण तत्व भेदकर गुणातीत अखंड अद्वय तत्पदार्थके निकट जानेका सुयोग पाते हैं।

'बीज'--एक वटके बीजके भीतर जैसे एक पूर्ण-परिणत फल-फूलसे सुशोभित वट वृक्षमें परिणत होनेकी शक्ति निहित है, ठीक उसी प्रकार मंत्रके बीजके भीतर भी व्यक्तिविशेषके अतीत जीवनकी कथा, माँ-बापका इतिहास एवं उसके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भविष्य जीवनके पूर्ण परिणति लाभ करनेकी सम्भावना निहित देखनेमें आती है।

'देवतातत्त्व' में किस प्रकार हमारे भीतरकी अन्तरेन्द्रिय, बहिरिन्द्रिय एवं देहादिके सब तत्वोंके द्वारा भगवत्-चैतन्यको पूर्णतया परिणतकर उस विशिष्ट जीवको पुरुषोत्तममें परिणत किया जा सकता है, इसका रहस्य और इसकी सम्भावना निहित रहती है। भगवत्-चैतन्य प्रकृतिके सब स्तरोंमें प्रतिबिम्बित होकर किस प्रकार प्रकाशित होते हैं, किस प्रकार लीला करते हैं, इस विषयका समावेश देवता-तत्वमें है। देवताको साक्षात् करनेका अर्थ है इन सब तत्वोंमें, व्यष्टि-समष्टि भावमें, भगवत्-चैतन्यको अबाधितरूपसे प्रस्फुटित करना और उपलब्ध करना, एक शब्दमें साधकका देवमय हो जाना।

प्रणवके भीतर भगवानका विश्वमय और विश्वातीत रहस्य निहित है। बीज तत्वसे मालूम होता है कि हमारा प्रकृत स्वरूप क्या है, हमारा भगवानके साथ क्या सम्बन्ध है, भगवानने किस उद्देश्यसे हमको सृष्ट किया है और हमारे भीतर कौन शक्ति अव्यक्तरूपमें निहित हुई व्यक्तित्व लाभ करनेकी चेष्टा कर रही हैं। देवतातत्त्वसे हम जान सकते हैं कि किस उपायसे हमारे द्वारा भगवानकी इच्छा पूर्ण सफलता लाभ करनेमें समर्थ होगी।

मन्त्रतत्वके साथ शब्दविज्ञान रहस्य, मन्त्रमें निहित शक्तितत्व एवं उस शक्तिको जागरित करनेका रहस्य विचारणीय है। यहाँ विज्ञानानुसार भगवत्-विधानको जानकर और उसको पालनकर भगवद्विधानपर जय प्राप्त करनेकी व्यवस्था देखनेमें आती है—Study the law of Nature, follow it and you will be Master of it. चण्डीका यह श्लोक यहाँ चिन्तनीय है—"यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति। यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति"। शब्दविज्ञान रहस्यमें शब्दब्रह्मका तत्त्व अर्थात् शब्दकी परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भावके भीतर कारण, सूक्ष्म, स्थूल और जगत्‌रूपमें आत्मप्रकाशका तत्व, निहित है। शब्दके भीतर अचिन्त्य शक्ति निहित रहती है—यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सपेरोंके उच्चारित मन्त्र द्वारा किस प्रकार विष उतर जाता है, यह यहाँ विचारने योग्य है। यह भी मन्त्रनिहित

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्तिको महिमा प्रचार करता है। मन्त्रनिहित शक्ति स्वाभाविक प्रणाली द्वारा आत्मप्रकाश करनेकी चेष्टा करती है यह हम माननेको बाध्य हैं; निमित्त कारण तो केवल शक्तिके प्रकाशमें बाधा दूर कर देता है। मन्त्रके केवल उच्चारणसे भी कुछ लाभ हो जाता है यह स्वीकार करके ही सम्भवतः प्रचलित विश्वास है कि अश्रद्धया उच्चारित मन्त्र भी कुछ काम करता है। अजामिलके नारायण-स्मरण-की कथा इसकी साक्षी है। अनजानमें विष खा लेनेसे भी शरीरान्त हो सकता है, गङ्गाकी महिमामें विश्वास न करते हुए भी गङ्गास्नानसे लाभ हो सकता है, यह हम माननेको बाध्य हैं। किन्तु मन्त्र वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा ठीक साधित हो जानेपर अत्यन्त फलदायक होता है इसमें सन्देह नहीं। गुरुदेव किस प्रकार मन्त्रमें शक्ति सञ्चारकर शिष्यमें शक्तिपात कर देते हैं यह रहस्य भी चिन्तनीय है। मन्त्रकी अपनी अन्तर्निहित शक्ति, मन्त्रदाता गुरुकी सञ्चारित शक्ति एवं मन्त्र-ग्रहीता साधककी साधन शक्ति, यह प्रधानतः तीनों शक्तियाँ सम्मिलित होकर मन्त्र-सिद्धिकी पूर्णता सम्पादन करती हैं। मन्त्रशक्ति एवं गुरु-शक्ति अनुकूल होनेपर भी साधनके बिना सम्यक् फल लाभ नहीं होता। साधक रामप्रसादका यह पद "एमन गुरु-आराधित मन्त्र ताओ हारालाम साधन बिने" इस प्रसङ्गमें उल्लेखनीय है। सिद्ध महात्माओंके उच्चारित शब्दमें, सिद्ध पुरुषों-के प्रदत्त मन्त्रमें, प्रभूत शक्ति निहित रहती है—यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इसके उपरान्त मन्त्रके पुरश्चरण और मन्त्र-चैतन्यका प्रसङ्ग सुननेमें आता है। मन्त्रके अर्थ और भावको देहपुरीके सब तत्वोंमें सञ्चालितकर देहको परि-भावित करनेका नाम है 'मन्त्रका पुरश्चरण।' मन्त्र, मन्त्रका अर्थ और उसके देवता (अनुभूति) का एकीकरण 'मन्त्र-चैतन्य' कहलाता है। मन्त्रका पुरश्च-रण और चैतन्य साधित हुए बिना सिद्धिलाभ नहीं हो सकती यह बात शास्त्र-सङ्गत है।

"मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यो न जानाति साधकः।
शतलक्षप्रजप्तोऽसि तस्य मन्त्रो न सिध्यति" ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रचैतन्यके फलस्वरूप माँ शब्दके उच्चारणमात्रसे ही मातृस्नेह साधकको अभिषिक्त कर देता है। साधक तब मातृसान्निध्य अनुभवकर, माँ-मय होकर, मातृमन्त्रकी चैतन्य-सम्पादन क्रिया प्रत्यक्ष करता है। भूतके भयसे भूतका दर्शन, भूतग्रस्त हो जाना एवं भूतकी भाँति बातें करना या काम करना—इस प्रकारके मन्त्र-चैतन्यके दृष्टान्त सुननेमें आते हैं। श्रीमन्महाप्रभु नाम और नामीको एक करके मन्त्र उच्चारण करनेका उपदेश करते थे। मन्त्र इस प्रकार उच्चारण होना चाहिए जिसके फलस्वरूप मन्त्रके देवता स्वयं आनेको बाध्य हों। श्रीकृष्ण जब यशोदाको माँ कहकर पुकारते थे तब यशोदाका इतना सामर्थ्य नहीं रहता था कि बिना आये स्थिर रह सकें। यशोदाके मुखसे गोपाल शब्द ऐसे भावापन्न-रूपसे निकलता था कि उनके हृदयगोपाल तत्क्षण आकर उपस्थित होते थे। अवश्य विरह-भावकी पुष्टिसाधनके लिए लक्ष्य पदार्थकी प्राप्तिमें बिलम्ब होना अलग बात है। हमारा विश्वास है कि मन्त्र यदि शुद्धरूपसे उच्चारण किया जाय तो मन्त्र जाग्रत् होकर अपने लक्ष्य पदार्थको खींचकर ला सकता है। शब्द सुप्र-युक्त होनेपर अर्थात् शब्दके वैखरीभावमें यदि उसके सब तत्व, पराभाव पर्यन्त, निहित हों तो शब्द अमोघ शक्ति लाभ करता है। हृदयसे निकली हुई टेर हृदयगत हुए बिना नहीं रुकती। शब्द जिस स्तरसे उच्चारित होता है उसी स्तर तक पहुँचनेमें समर्थ होता है। देवताका स्वाभाविक नाम ही है मन्त्र; अर्थात् जिस नामसे बुलानेसे देवता अनन्तसत्ताके गर्भसे आविर्भूत होकर भक्तकी अभिलाषा पूर्ण कर देते हैं—यही देवताका आविर्भाव तत्व है। साधकभक्त विश्वास करते हैं कि माँने स्वयं कन्यारूपमें आविर्भूत होकर रामप्रसादका बाड़ा घेरनेके काममें सहायता की थी। मन्त्र चिच्छक्तिका विशिष्ट प्रकाश है। मन्त्र चैतन्यकी घनीभूत मूर्त्ति अथवा देवताका आत्मप्रकाश है। मन्त्र और देवता अभिन्न हैं। बीज ही मूलमन्त्र है—बीजमें सब शक्ति निहित है।

यदि एक अणुमें निहित सुप्त शक्तिको जागरितकर अनेक महत् कार्य किये जा सकते हैं, (तुलनीय—आणविक बम्ब—Atomic Bomb) तो देहस्थ यन्त्रोंमें निहित गूढ़ शक्तिको उपयुक्त साधन-प्रणाली द्वारा प्रकट करके कौन सा महत् कार्य नहीं किया जा सकता, यह अस्वीकार करना केवल मूर्खता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मालूम पड़ती है। परन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अशिक्षित और स्वार्थपर लोगोंके हाथमें पड़कर, अपप्रयोगके कारण, स्वार्थसिद्धिके हेतु अतिरञ्जित होकर, साधन-रहस्यने समाज और देशमें अनेक अनर्थ पैदा कर दिये हैं। अप-प्रयोगके लिए संस्कारकी आवश्यकता है, विनाश की नहीं। मन्दिरका अपव्यवहार होते देखकर यदि उसका शोधन न करके ध्वंसकी व्यवस्था की जाय तो हम वञ्चित हो जायेंगे। मन्त्रसे शक्ति सञ्चार की जा सकती हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक ही शब्द विभिन्न व्यक्ति द्वारा विभिन्न भावसे उच्चारित हुआ विभिन्न समयमें विभिन्न फल उत्पन्न करता है।

सिद्ध महापुरुषोंके मुखसे उच्चारित शब्दोंमें विशेष शक्ति निहित रहती है, इसमें सन्देह नहीं। उच्चारण-प्रणालीके ऊपर भाव-प्रकाश करनेकी शक्ति अनुभूति जाग्रत् करनेकी शक्ति, निर्भर करती है, यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मन्त्र-साधन-प्रणालीका एक चुम्बक रूपी साङ्केतिक चिह्न है। कृष्णादि मन्त्र जपनेके फलस्वरूप साधक कृष्णमय हो जाता है इसमें सन्देह नहीं।

जो स्त्रियोंको दीक्षा देते समय मन्त्रसे ॐकार वर्जनकर दीक्षा प्रदान करते हैं वे अनेक समय भूल जाते हैं कि मैत्री, गार्गी, वाचक्नवी, प्रभृति वैदिक ऋषि-गण भी स्त्रियाँ थीं। दुर्गा, काली, सरस्वती, लक्ष्मी, प्रभृति स्त्री-देवता हैं। कोई-कोई कहते हैं कि स्त्री-जातिको दबाकर रखनेके लिए बहुपत्नीत्व प्रचलनके समय यह प्रथा आविष्कृत हुई थी।

अधिकारी-विचार

'एक' जब बहु हुए तो जगत्में नानात्वकी सृष्टि हुई। जगत्में कोई दो पदार्थ या दो जीव ऐसे नहीं जो सर्वप्रकार एक भावापन्न हों (No two individuals are exactly alike)। प्रत्येक मानो अपना निर्दिष्ट कार्य करनेके लिए आया है। एकका कार्य दूसरेके द्वारा सम्पन्न होना सहज नहीं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
पूर्वजन्मगत, उत्तराधिकारीरूपमें प्राप्त अथवा भगवद्दत्त शक्ति अनुसार मनुष्यका गुण निर्धारित होता है एवं शिक्षा-दीक्षा द्वारा भी हम किसी निर्दिष्ट कार्य करनेकी योग्यता लाभ कर सकते हैं। जो काम हम आज करनेमें असमर्थ हैं कालान्तरमें सम्भवतः वह कार्य करनेकी क्षमता लाभकर लेंगे, जैसे निम्न श्रेणीका छात्र उच्च श्रेणीमें जानेकी योग्यता लाभकर लेता है। निम्नश्रेणीका छात्र यदि उच्चश्रेणीके ग्रन्थोंमें विव्रत रहे तो न वह उच्चश्रेणीका पाठ समझ पायगा और न अपनी श्रेणीकी शिक्षा लाभकर उन्नति कर सकेगा। साधनराज्यमें भी सब लोग सब कार्य करनेमें समर्थ नहीं होते। इसीलिए साधनराज्यमें भी नानाविध श्रेणी विभाग देखनेमें आता है। आज हमारे लिए जो करना या समझना असम्भव है, कुछ समय पश्चात् हम कदाचित् वह कार्य करनेकी योग्यता लाभ कर लें। ऐसी अवस्थामें भी उन्नतिलाभके साथ-साथ साधन-प्रणालीके किसी-किसी विषयमें परिवर्त्तनकी आवश्यकता हो जाती है।

सब कार्यमें एक नित्य और एक नैमित्तिक भाव देखनेमें आता है। नैमित्तिक भाव देश-काल-पात्र भेदानुसार परिवर्त्तन लाभ करता है। नित्य भाव प्रायः एक समान ही रहता है। गुणकर्मके विचारको त्यागकर एवं क्रमोन्नतिके पथको भूलकर हम अपने जीवनको अनेक समय नीरस कर देते हैं। अधिकारी विचार यथार्थरूपमें अनुष्ठित होनेसे और जातिभेद एवं कर्मविभाग केवल वंशगत न मानकर गुणकर्मगत समझनेसे हमारा उन्नतिलाभ अनेकांश स्वाभाविक हो जाता है और जीवन इतना नीरस बोध नहीं होता। वैष्णवमतके विधिमार्ग और रागमार्ग, तंत्रमतके पश्वाचार और वीराचार तथा प्राचीन जातिभेद प्रथा अधिकारी-विचारके प्रधान दृष्टान्त हैं।

प्रायः सभी सम्प्रदायके साधकोंमें अधिकारी-विचारका भाव देखा जाता है। सब सम्प्रदायोंके साधकगण अधिकारी-विचारकी ओर प्रधान लक्ष्य रखते थे। हमने अधिकारी-विचारके लक्ष्यको भूलकर और अपनेको सब कार्यका अधिकारी मानकर साधनराज्यमें एक महान् उपद्रव पैदा कर दिया है। किसी विद्यालयके सब छात्र यदि अपने-आपको एम० ए० क्लासमें भरती होनेके उपयुक्त समझकर, छल-बल-कौशल द्वारा उस क्लासमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तो विद्यालयमें जैसी अराजकता हो जाएगी, साधनराज्यकी अराजकता इसकी अपेक्षा और भी भयावह है। तांत्रिकोंके चालक यदि पश्वाचारकी तरफ अधिक दृष्टि रखते तो 'तांत्रिक' शब्दको 'मद्यप', 'व्यभिचारी' आदि नाम पानेकी सम्भावना न होती। सहजिया साधकगण यदि 'प्रवर्त्तक', 'साधक', 'सिद्धादि' भेदकी तरफ विशेष दृष्टि रखते तो सहज साधनको कठिन, घृणित और पतन-का कारण अनुमान करनेका किसीको सुयोग न मिलता। दुःखका विषय है कि यह भी विश्वास नहीं किया जा सकता कि शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदायके साधकगण अधिकारीतत्त्वकी मर्यादाकी यथार्थरूपसे रक्षा करते हैं।

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बाह्यपूजाधमाधमः॥

तंत्रशास्त्रके इस श्लोकमें एक उत्तम रहस्य छिपा हुआ है। साधनराज्यमें बाह्य पूजाको निम्नस्तरमें स्थापित करनेपर भी उन्नतस्तरमें जानेमें यह सहायक है यह बात अस्वीकार नहीं की जाती। किन्तु दुखकी बात यह है कि हमारे सामाजिक गुरुगण बिलकुल भूल गये हैं कि साधनराज्यमें भी एक क्रमोन्नति (Promotion) का पथ है। प्राचीनकालमें गुरुगण अन्ततः वर्षमें एक बार शिष्यके घर जाकर और साधनराज्यमें वह कितना अग्रसर हुआ है इसका विचार-कर उसको साधनके उच्चस्तरमें ले जानेकी चेष्टा करते थे। किन्तु शोक है कि आजकलके गुरुदेवोंका शिष्यके घर जाना केवल वार्षिक प्राप्य वसूल करनेमें पर्यवसित हो गया है। प्रत्येक साधकके लिए सर्वोच्चभूमि प्राप्त करनेका द्वार उन्मुक्त रहना चाहिए यह बात हम बिलकुल भूल गये हैं। मूर्तिपूजामें सुदक्ष साधकको भगवानके स्तव-स्तुति और जपादि द्वारा धीरे-धीरे ध्यान-राज्यमें ले जाकर, सर्वशेषमें उसको भगवतभावसे परिभावितकर, सब जीवोंके भीतर भग-वद्ध्यान, भगवद्दर्शन और भगवत्-सेवाकी योग्यता दान करनी चाहिए—यह बात हमारे आधुनिक गुरुदेव बिलकुल भूल गये हैं। फलतः अनेक लोग कहते हैं कि आजकल गुरुआई एक बड़ा व्यवसाय हो गया है। यह व्यवसाय आजकल समाजका विशेष अनिष्ट कर रहा है। भागवत-पाठसे ज्ञात होता है कि भगवान

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
अपने मुखसे बार-बार कह गये हैं कि जो लोग सब जीवोंमें अधिष्ठित मुझको अनादरकर, सब जीवोंका सम्मान और सेवा करना भूल गए हैं और केवल मूर्तिपूजामें व्यस्त हैं, वह मूर्तिपूजा भस्ममें घी डालनेके समान निरर्थक है। अब भी यदि हम अधिकारी-विचारकी तरफ दृष्टि न देंगे तो साधनराज्य और भी विकृत हो जाएगा। अनधिकार गुरुको दीक्षा देनेसे वंचित करना अत्यावश्यक है। तंत्रशास्त्रका भूमिलाभ इस स्थलमें स्मरणीय है। पूर्व साधना द्वारा जिसने जो भूमिलाभ की है उसको उस भूमिसे ऊपर उठनेकी चेष्टा करनी होगी। जो जिस स्टेशनपर पहुँचकर विश्राम कर रहा है उसको उसी स्टेशनसे रवाना होना होगा।

गुरुवाद और दीक्षा

सभी कामोंमें गुरु—उपयुक्त शिक्षक—की आवश्यकता होती है। जिसने जिस विषयमें सिद्धिलाभ की है वह उस विषयका सुदक्ष शिक्षक है—वह उस कार्यका प्रकृत कुलगुरु है। विज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए जगदीश बोसके समान वैज्ञानिककी सहायता लेना श्रेष्ठ है यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। साधनराज्यमें भी जो मुझको देखकर मेरी अवस्थाको समझ सकते हैं, मेरे प्रति स्नेहशील हैं एवं मेरे द्वारा अपना स्वार्थसिद्ध करनेकी चेष्टा न कर मेरी उन्नति और शान्तिविधानमें समधिक सचेष्ट हैं और जिन्होंने मेरे गन्तव्य पथमें स्वयं अग्रसर होकर सिद्धिलाभ की है वे संयत, शुद्ध, दक्ष, प्रेमिक, ज्ञानी, तत्त्वदर्शी पुरुष मेरे गुरु—मेरे चालक—होनेके उपयुक्त पात्र हैं। अनुपयुक्त लोगोंका गुरुका आसन ग्रहण करनेके फलस्वरूप देशका बहुत अनिष्ट हो गया है।

सभी विषयोंमें सिद्धि लाभ करनेके लिए दीक्षा प्राप्त करनेकी आवश्यकता होती है। कार्यमें व्रती, दीक्षित, तीव्र संकल्पयुक्त हुए बिना सिद्धिलाभ अनिश्चित है। प्राचीन कालमें त्रिजाति बालक गुरुके आश्रममें जाकर गायत्री मंत्रकी दीक्षा प्राप्त करते थे। गुरु उनके जीवनका लक्ष्य तथा उनकी साधनप्रणाली निर्धारण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर देते थे और उनकी उन्नति एवं शान्ति-लाभमें सहायक होते थे। जो करनेके लिए आये हैं उसको उत्तमरूपसे सम्पन्न करनेकी सहज, सुन्दर और स्वाभाविक प्रणाली हम दीक्षा द्वारा लाभ करते हैं।

हमारा प्रकृत वासस्थान भगवत्-धाम था; वहाँ हम अपने-अपने अधिकारानुसार भगवत्-सेवामें विभोर रहते थे। यहाँ आकर हम अपने प्रकृत स्वरूपको, भगवानके स्वरूपको, उनके साथ अपने सम्बन्धको तथा अपने जीवनके कर्त्तव्यको भूल गये। सद्गुरु हमको इस भूलसे चेतनकर हमारा प्रकृत स्वरूप और कर्त्तव्य निर्धारण कर देते थे। दीक्षालाभके फलस्वरूप हम भगवानके हो जाते थे। हमारा सब कार्य हो जाता था परकीय अर्थात् परमात्मा सम्बन्धी; संसार हो जाता था भगवत्-धाम; जीव मालूम पड़ता था वेषधारण किया हुआ शिव; कर्म हो जाता था यज्ञ; सर्वत्र ब्रह्मदर्शन, ब्रह्मानुभूति, ब्रह्मसेवा हो जाता था हमारे जीवनका लक्ष्य। स्वयं उन्नति और शान्ति लाभकर सबको उन्नत करनेकी और शान्तिके पथपर ले जानेकी चेष्टा हो जाती थी हमारा स्वाभाविक कर्म। दीक्षासे हम भगवानके हो जाते थे; आत्मीयस्वजन हो जाते थे भगवद्विभूति और स्वार्थभावकी जगह एक प्रेमका भाव आ जाता था। हमारे समस्त सम्बन्ध और समस्त कार्य शान्त, पवित्र, मधुर और अति सुन्दर हो जाते थे।

षट्चक्रभेद

षट्चक्रभेदका अर्थ है—हमारे देहके मेरुमार्ग-मध्यस्थ छः यंत्रोंके भीतरके स्रोतका अस्वाभाविक वक्रभाव दूर कर उनके भीतर सरल अबाधित मन और प्राणकी गति लाभ करना। तंत्र और योगशास्त्रके अनुसार सुषुम्ना मार्गमें छः केन्द्र हैं जहाँ जीव संस्कारवश चक्कर खाता रहता है और नानाविध भोग और आकर्षणमें फँस जाता है। भारतके प्राचीन ऋषि केवल अपनी उन्नति, अपनी मुक्तिके लिए ही विव्रत नहीं रहते थे। साधन-भजनके फलस्वरूप उन्होंने परमात्मदर्शन लाभ कर लिया था। उनका आत्मतत्त्वका ज्ञान गम्भीरता तथा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
व्यापकताकी परम अवस्थामें पहुँच गया था। आत्मा सारतत्त्व है एवं सर्वव्यापी है—इस उपलब्धिके परिणामस्वरूप वे अपने-आपको एक सामान्य ससीम देहमें सीमाबद्ध रखनेमें तृप्ति बोध नहीं करते थे। किस प्रकार सर्वव्यापीको सर्वभूतके भीतरसे विकसित करें, सबके भीतर उनका दर्शन करें—इस ओर उनका प्रधान लक्ष्य था। अन्तर्दृष्टि शुद्ध होनेके कारण उन्होंने समझ लिया था कि साधना द्वारा दूरदर्शन, सूक्ष्मदर्शन, दिव्यदर्शन लाभ किया जा सकता है एवं दिव्यदर्शन लाभ किये बिना इस चक्षुसे भगवानका विश्वरूप नहीं देखा जा सकता और न दिव्यश्रवण लाभ किये बिना उनकी वाणी सुनी जा सकती है। जिससे सब दिव्यदर्शन, दिव्यश्रवणादि लाभ कर सकें इस विषयमें वे सचेष्ट रहते थे। उन्होंने आविष्कार किया "सर्वं सर्वात्मकं" अर्थात् सब स्थानमें, प्रत्येक परमाणुमें, सब तत्त्व नित्य वर्तमान हैं। (What is true of the whole universe is also true of every atom of the universe). एक ऋषिने मुक्तकंठसे घोषणा की "एके विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति"। बहुत्वमें एकत्वानुभूति उनकी ब्रह्मानुभूतिमें सहायक हो गई थी। तब उन्होंने विचार किया कि देहतत्त्वका पूर्णज्ञान लाभ कर लेनेसे जगत्-तत्त्वका पूर्णज्ञान लाभ करना सहज हो जायगा। समस्त जगत्में जितने तत्त्व वर्तमान हैं वे सब प्रत्येक जीवदेहमें प्रत्येक परमाणुमें भी वर्तमान हैं। तब वे देहतत्वके अनुसंधानमें व्यस्त हो गये। फलतः दिव्यदर्शनके प्रभावसे आविष्कृत हुआ कि देहका समस्त सारतत्त्व मेरुदण्ड और मस्तिष्कके मध्यस्थित केन्द्रों (यंत्रों) में है, अन्य जो कुछ है इसका सहकारीमात्र है। उन्होंने देखा कि सब सारतत्त्व सुषुम्नामें अवस्थित हैं।

ऋषिगण सुषुम्नास्थ एक-एक केन्द्रमें मन समाहितकर विविध अद्भुत तत्त्व आविष्कार करने लगे। सर्वशेषमें समझ गये कि जो कुछ जानने, करने या प्राप्त करनेका विषय है वह सब सुषुम्नाके अन्तःस्थित यंत्रोंमें है। इसके फलस्वरूप अनेक योगी-साधकोंने साधनराज्यके अनेक तत्त्वोंको षट्चक्रके अन्तर्गत विचार करना आरम्भ किया। सुना जाता है कि पाश्चात्य विज्ञानकी दृष्टि भी इस तरफ आकृष्ट होने लगी है। प्राचीन बौद्ध योगचारी साधकगण इसी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुषुम्नाके भीतरका स्रोत आविष्कारकर साधकगणको स्रोतापन्न करनेकी चेष्टा करते थे। यही सुषुम्ना शाक्तोंकी गङ्गा नदी, वैष्णवोंकी यमुना नदी कहलाती है। प्रायः सब साधक सम्प्रदायोंने सुषुम्नाके माहात्म्यको स्वीकार किया हैं। तंत्रशास्त्र और योगशास्त्र तो सुषुम्नाके अन्तर्गत केन्द्रों (चक्रों) में विभोर हैं। अनेक सम्प्रदाय सुषुम्नास्रोतके अनुकूल मंत्र-जप साधन करनेका उपदेश करते हैं। सुषुम्ना मार्गके चित्रको देखनेसे मालूम होगा कि मूलाधारसे सहस्रार तकका विस्तृत पथ ही साधनराज्यका एक प्रधान अवलम्बन है—भगवद् धाम जानेकी प्रधान व एकमात्र सीढ़ी है। यहाँ तक कि ज्ञानभूमिके सप्तस्तर (अर्थात् शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्तापत्ति, असंसक्ति, पदार्थभाविनी एवं तूर्यगा) सुषुम्ना के अन्तर्गत चक्रोंमें विन्यस्त हैं। अनेक सम्प्रदायोंके साधकगण मूलाधारमें मन स्थिरकर मेरुमध्यस्थ स्रोतको साक्षात करनेकी चेष्टा करते हैं एवं इस स्रोतके चढ़ने-उतरनेकी तरफ लक्ष्य रखकर, जपादि कार्य निष्पन्न करनेका प्रयत्न करते हैं।

सुषुम्ना मार्ग साधारणतः छः केन्द्रोंमें विभक्त है और इसके प्रत्येक केन्द्रमें एक-एक चक्र निर्दिष्ट किया गया है। इसी पथके भीतर विविध देहके, पंच तत्वके, पंचकोशके, सप्तलोकके तथा ज्ञानराज्यकी सप्तभूमिके स्थान भी निर्धारित हैं। इसके एक-एक केन्द्रमें चित्त समाहित करनेसे उस केन्द्रस्थ तत्त्वके सब रहस्य स्वतः प्रकट होने लगते हैं। यहाँ तक कि चित्तमें यदि कोई विशेष भाव लाना हो, तो उस भावके निर्धारित केन्द्रमें मन स्थिर करनेसे उस भावके समस्त तत्त्व अपने आप स्फुरित होने लगते हैं। प्रत्येक चक्र मानो एक यंत्र है जिसके केन्द्रमें भगवान अथवा उनके प्रतिनिधि और उसके चारों तरफ उसके परिकरादि अवस्थित हैं। सर्वोच्चकेन्द्र (सहस्रार) में एवं सब सम्प्रदायोंके निर्धारित भगवान (पुरुषोत्तम) विराजमान हैं एवं निम्नस्तरोंमें विविध सम्प्रदायानुकूल विभूति-कायव्यूह (प्रतिनिधि) गण स्थित हैं—इस प्रकार चिन्तन करना होता है। प्रकृत भगवद्धाम चक्र नहीं है—सहस्रार चक्रातीत है। वहाँ कर्मभोग नहीं है, वक्रगति भी नहीं है—केवल लीलारस आस्वादन है। वह कालातीत है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाद बिन्दुसे निकलकर प्रत्यावर्त्तनके समय फिर बिन्दुमें विलीन हो जाता है। यह बिन्दु ही स्थितिस्थान अथवा धाम है। नाद ऊर्ध्व और अधः बिन्दुद्वय-का योजक है। नादकी धारा ऊपरकी तरफ एवं नीचेकी तरफ प्रसारित है। अधोबिन्दु मूलाधारस्थ त्रिकोणका मध्यबिन्दु है एवं ऊर्ध्व बिन्दु सहस्रारस्थ त्रिकोणका मध्यबिन्दु है। बौद्धतंत्रका यह श्लोक इस प्रसंगमें तुलनीय है—"एकाराकृति यद्दिव्यं मध्ये वंकारभूषितम्। आलयः सर्वसौख्यानां बुद्धरत्न-करडकम् ॥" (एकार = त्रिकोण = नाद; वंकार = बिन्दु) ऊर्ध्वधारामें धामका एवं अधोधारामें जगत्का प्रकाश है। नादस्रोत मूलाधारसे सहस्रार तक प्रवाहित है। मूलाधारसे ऊपरके पाँच चक्रोंके केन्द्र ही पाँच बिन्दु हैं। साधकगण अपने-अपने अधिकारानुसार सब बिन्दु भेदकर ऊर्ध्व गमन करते हैं अथवा किसी बिन्दुमें आबद्ध होकर रुद्धगति हो जाते हैं। आज्ञानचक्रस्थित बिन्दु ही मुख्य बिन्दु है—यहाँ नीचेके पाँचों चक्रोंका समन्वय है।

चक्रोत्पत्ति—ब्रह्मकी शक्ति जब अव्यक्त अप्रकटित अननुभूत होती है तो उस अवस्थाको 'निर्गुण' कहते हैं एवं वही शक्ति जब प्रकाशकी तरफ, सृष्टिकी तरफ, धावित होती है अर्थात् शक्ति जब लीलारत होती है तब वह अवस्था 'सगुण' कहलाती है। शक्ति जब सृष्टि, परिणति अथवा विवर्तनकी ओर धावित होती है तो शक्तिमानका स्मरण और आकर्षण अनुभव करनेके कारण बीच-बीचमें शक्तिमानकी ओर लौटना चाहती है—इसलिए शक्तिके भीतर केन्द्रा-तिग और केन्द्रानुग, ये द्विविध गति लक्षित होती है। इसके फलस्वरूप शक्तिकी गति अल्प समयके लिए किंचित् वृत्ताकार (चक्राकार) धारण करती है। यही चक्राकार अवस्था योगशास्त्रका चक्रतत्व है। परमाणुका उत्पत्ति रहस्य यहाँ विचारणीय है—'Matter is the concentrated from energy.' शक्तिकी स्वाभाविक प्रवणता सरल गतिकी ओर होती है। किन्तु क्रमशः विरुद्ध शक्तिकी क्रियाके फलस्वरूप गति कुछ वक्र हो जाती है। कहना अनावश्यक होगा कि यह विरुद्ध शक्ति भी मूलस्थानसे ही प्रकट होती है। हम जिसको मनुष्यका मन कहते हैं वह भी तब वक्रभावापन्न हो जाता है और नाना प्रकार की कामना-वासनासे आच्छन्न हो जाता है। मनकी वक्रताके कारण जिस आधार-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

को आश्रयकर मन क्रिया करता है वह आधार भी वक्रभावापन्न हो जाता है। बहिर्मुखीगति (प्रवृत्ति) प्रबल होते–होते जिस स्थानपर पराकाष्ठा प्राप्त करती है उसी स्थानसे फिर अन्तर्मुखीगति (निवृत्ति) आरम्भ होती है। सब चक्र आज्ञाचक्रसे लेकर मूलाधार तक, शक्तिके परिणाम और विवर्तन पथमें, स्थूल देहमें विस्तृत है। ये मानो रास्तेकी विश्राम भूमि (halting stations) हैं। प्रकृति अथवा बहिर्मुखीगतिके अवसानपर जब निवृत्ति-अभिमुखी अथवा अन्तर्मुखी गति आरम्भ होती है तब आध्यात्मिक जीवनका सूत्रपात होता है। साधक तब क्रमशः एक-एक भूमि अतिक्रमकर ऊर्ध्वकी ओर अग्रसर होता है। पहले जिन चक्रोंका विवेचन किया गया है उन्हीं चक्रोंको भेदकर साधकको जाना होता है। किस चक्रमें कितने समय रुकना पड़ेगा यह यात्रीकी (साधक-की) आसक्ति और भोगस्पृहापर निर्भर करता है।

चक्रोंका अवस्थान—सब चक्र समवेदक स्नायुमंडलमें स्थित हैं। ये विभिन्न स्नायुविशेष हैं। मेरुदंडके बहिर्भागमें बायीं ओर चन्द्र तुल्य ईड़ा, दक्षिण ओर सूर्यतुल्य पिंगला एवं मध्यमें चन्द्र-सूर्य-वह्नि-रूपा सुषुम्नाका मार्ग है। सुषुम्ना मेरुदंडके ऊर्ध्वस्थ सहस्रारसे सर्वनिम्नस्थ मूलाधार तक विस्तृत है।

(१) सर्वनिम्नमें गुह्य और लिंगके मध्यमें 'मूलाधार' चक्र है। योग-शास्त्रानुसार यह चक्र रक्त वर्ण चतुर्दल है। यह डाकिनी शक्ति एवं शक्तिमान सद्योजात (ब्रह्मा) की अधिष्ठानभूमि है। इस चक्रमें पृथ्वीतत्व प्रधान है। यहाँ सार्ध-त्रिवलय-वेष्ठित कुंडलिनी प्रकृति देवीका अधिष्ठान है। यहाँके चार दल जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिके द्योतक हैं। यहाँ शक्ति निद्रित रहती है।

(२) इसके ऊपर लिंग-मूलमें षड्दल 'स्वाधिष्ठान' चक्र है। इसके षड्दल छः रिपुओंके द्योतक हैं। यहांके देवता चतुर्भुज नारायण और शक्ति राकिनी हैं। यह काम अथवा प्रेमकी लीलाभूमि नामसे विख्यात है। ऊर्ध्वगतिके समय जो 'काम' है ऊपरसे शुद्ध होकर नीचे उतरते समय उसीका नाम 'प्रेम' है। यहां साधारण जीवका मन जीवात्मारूपमें अधिक समय अधिष्ठित रहता है इसीलिए इसका नाम 'स्वाधिष्ठान' है। इस चक्रमें अप् (जल) तत्व प्रधान है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३) इसके ऊपर नाभिस्थलमें दशदल 'मणिपुर' चक्र है। इसकी ज्योति मणिप्रभाको भी परास्त करती है इसीसे इसका नाम मणिपुर है। यहांके देवता रुद्र एवं शक्ति लाकिनी हैं। यह चक्र तेजः (अग्नि) तत्व प्रधान है।

(४) इसके ऊपर हृदयमें द्वादशदल 'अनाहत' चक्र है। यहांके देवता ईशान और शक्ति काकिनी हैं। यह मरुत् (वायु) तत्व प्रधान है। यहां अनाहत ध्वनि सुनी जाती है इसीलिए इसका नाम अनाहत (हृदयाकाश) है। यह स्थान ईश्वरकी लीलाभूमि है। यहाँ चित्त स्थिर होनेसे यह अनुभूति लाभ होती है कि ईश्वर किस प्रकार जीवको चला रहे हैं अर्थात् देहस्थ सब यंत्र किस भाँति परिचालित होते हैं। इस चक्रको जीवात्माका स्थितिस्थान भी वर्णन किया गया है।

(५) इसके ऊपर कंठदेशमें षोड़श दल 'विशुद्धाख्य' चक्र है। यहांके देवता सदाशिव एवं शक्ति शाकिनी हैं। यहाँ व्योम (आकाश) तत्व प्रधान है।

(६) इसके ऊपर भ्रूमध्यमें द्विदल 'आज्ञाचक्र' है। यह शिव और हाकिनी शक्तिकी अधिष्ठानभूमि है। यहाँ श्रीभगवान अधिष्ठानरूपमें लीलारत हैं। यहाँ अहं और इदं, द्रष्टा और दृश्य, भोक्ता और भोग्य तत्त्वका प्रभेद पहले पहल लक्षित होता है। एक अखण्ड-अद्वय-तत्त्व लीलारस आस्वाद करनेके लिए युगलरूपमें प्रतीयमान होकर मिलन और विरह द्वारा भ्राम्यमाण हो रहा है—इसीलिए इसे भी चक्र कहा गया है। कहना आवश्यक होगा कि विभिन्न चक्राधिष्ठित शक्ति योंके नाम विभिन्न सम्प्रदायोंने निभिन्न रूपमें दिये हैं।

(७) सर्वोपरि शिरोदेशमें सहस्रदल-विशिष्ट 'सहस्रार' कमल अवस्थित है। सहस्रार अधोमुख है। नीचेके चक्र जाग्रत् हो जानेपर ऊर्ध्वमुखरूपमें परिलक्षित होते हैं। सूर्योदयसे जैसे कमल प्रस्फुटित होता है तद्रूप ज्ञानसूर्योदय-से निम्नस्थित चक्रोंके कमल ज्ञानालोकसे प्रस्फुटित होकर ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं। सहस्रारके मध्य बिन्दुसे निरन्तर अमृतस्राव होता रहता है किन्तु साधा-रण जीवके निम्नवर्ती कमल सुप्त होनेके कारण इसको धारण करके पुष्टि लाभ करनेमें असमर्थ हैं। फलतः यह अमृत कालाग्नि कुण्डमें निरन्तर गिरता रहता है और इसके कारण जीव देहमें जरा-विकार-मलिनता-मृत्यु आदि आविर्भाव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

होते हैं। किन्तु कुण्डलिनी जागरण एवं तदुत्तर योगक्रियाके प्रभावसे निम्नवर्त्ती कमल क्रमशः जागरित होकर ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं और क्षरित अमृत धारण करनेमें एवं पुष्टिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं। जीवके ऊपर अनुकम्पावशतः ही सहस्रारकमल अधोवदन है। यह तुरीय स्थान है—पुरुषोत्तमकी अधिष्ठान भूमि है। यह चक्रातीत है। कोई-कोई इन चक्रों को Ganglion Coccygeal, Pelvic Plexus, Solar Plexus, Cardiac Plexus, Cervical Plexus, इत्यादि नाम से निर्देश करते हैं। कोई-कोई मूलाधारादि भूमियों को शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्तापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभाविनी, तुरीय नामसे निर्देश करते हैं।

मूलाधारसे स्वाधिष्ठान तक 'अन्नमय', स्वाधिष्ठानसे मणिपुर तक 'प्राणमय', मणिपुर से अनाहत तक 'मनोमय', अनाहतसे विशुद्धाख्य तक 'विज्ञानमय' और विशुद्धाख्यसे आज्ञाचक्र तक 'आनन्दमय' कोषका स्थान है। उसके ऊपरकी भूमिको 'कोशातीत' कहा जाता है। अन्नमय कोष तमः प्रधान स्थूलदेहकी, प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय कोष रजःप्रधान सूक्ष्मदेहकी, आनन्दमय कोष सत्त्व-प्रधान कारणदेहकी अवस्था और आज्ञाचक्रके ऊपर तथा सहस्रार (निर्गुण अवस्था) के नीचे तक विशुद्ध सत्त्वमय अवस्था कही जा सकती है। मूलाधारसे सहस्रार तक एवं सहस्रारसे मूलाधार तक एक विद्युत्स्रोत यातायात करता रहता है। इस स्रोतकी गतिको अनुभव करना अर्थात् इस स्रोतमें पतित होनेका नाम ही है 'स्रोतापन्न' होना। सहस्रारको चक्र नहीं कहा जाता क्योंकि यहाँ जीव स्व-स्वरूपमें निमज्जित, सामरस्यमें विभोर रहता है—यह अद्वैत भूमि है। सृष्टिकालमें इस स्रोतकी गति सहस्रारसे मूलाधारकी तरफ होती है और लयके समय यही गति मूलाधारसे सहस्रारकी तरफ लक्षित होती है। (तुलनीय शङ्कर—"नद्याः प्रतिस्रोतगमनमिव")। अगले पृष्ठपर मेरुदण्डस्थ चक्रोंका चित्र देखिए।

ऋषिगण सुषुम्नास्थ एक-एक चक्र (यंत्र) में मन स्थिरकर और वहाँ प्राण-वायु को संचालितकर जो फल लाभ होता है, प्रत्यक्ष कर गये हैं। जगत्से जगन्नाथ-के निकट जानेके रास्तेमें जिन-जिन शक्तियोंका और ज्ञानका स्फुरण होता है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहस्रार (कोशातीत)

Cerebrum

		सहस्त्रदल, गुणातीत, तुरीय ।
		आज्ञाचक्र (भ्रूमध्यमें), द्विदल, Cerebellum शिव + हाकिनी शक्ति ।
सत्त्वगुणप्रधान कारण देह	आनंदमय कोश	
		विशुद्धाख्य (कण्ठ देशमें), Cervical Plexus, षोड़षदल, सदाशिव + हाकिनी शक्ति ।
रजोगुणप्रधान सूक्ष्म देह	विज्ञानमय कोश	
		अनाहत (हृदयमें), Cardiac Plexus, द्वादशदल, ईश्वर + काकिनी शक्ति ।
	मनोमय कोश	
		मणिपुर (नाभिदेशमें) Solar Plexus, दशदल, रुद्र + लाकिनी शक्ति ।
	प्राणमय कोश	
		स्वाधिष्ठान (लिङ्गमूलमें), Pelvic Plexus, षड्दल, विष्णु + राकिनी शक्ति ।
तमोगुणप्रधान स्थूल देह	अन्नमय कोश	
		मूलाधार (गुह्यदेशमें), Ganglion Coccygeal, चतुर्दल, ब्रह्मा + डाकिनी शक्ति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा जो-जो अभिज्ञताएँ लाभ होती हैं उनके सब रहस्य उन्होंने विभिन्न चक्रों में अनुभव किये। दर्शनविज्ञानके, ज्ञानभूमिके तथा साधनरहस्यके सभी तत्त्व इन चक्रोंमें निहित हैं। चित्तमें जिस समय जो भाव लानेकी इच्छा हो उस भावके केन्द्रमें मन स्थिर करनेसे चित्तमें उस भावका स्फुरण स्वतः होने लगता है, साधकमात्र यह स्वीकार करनेको बाध्य है। देह यंत्रके भीतर प्राण और मनके समस्त केन्द्र वर्तमान हैं। मन जिस केन्द्रमें ध्यान करेगा प्राण तत्क्षण उसी केन्द्रमें जायगा; पुनः प्राण जिस केन्द्रमें जायगा मन भी उसी केन्द्रमें आकर उपस्थित होगा। तब उस केन्द्रके समस्त तत्त्व और भाव स्वतः स्फुरित होने लगेंगे। साधनराज्यमें प्राणकी सहायतासे मनको एवं मनकी सहायतासे प्राणको वशीभूत करनेकी व्यवस्था है। इस प्रणाली द्वारा देहस्थ यंत्र उस भावके विकासमें सहायक हो जाते हैं। भाव और भवका सम्वन्ध एक अद्भुत रहस्य है। इसमें कौन अग्रगामी है यह निर्णय करना कठिन है। भावकी पुष्टिके लिए यंत्रका एवं यंत्रस्थ तत्व-विकासके लिए भावका प्रयोजन अनिवार्य है। सुषुम्ना मार्गके किस केन्द्र (यंत्र) में किस भावका अवस्थान है यह अच्छी तरह समझ लेना होगा। यंत्र (चक्र) जिस प्रकार भावके अभिव्यंजक हैं, भाव भी उसी प्रकार यंत्रका उद्दीपक है। यंत्र-तंत्र-मंत्र रहस्य तंत्रशास्त्रका एक अतुलनीय रहस्य है। चक्रोंके एवं उनके अधिष्ठाता देवताओंके कार्य-कलापसे हमें आभास मिलता है कि भगवत्-शक्ति हमारे विभिन्न केन्द्रोंमें किस प्रकार कार्य करती है। योगशास्त्रका भूमि-लाभ तत्व साधनराज्यकी एक अतुलनीय सम्पत्ति है।

चक्रभेद-रहस्य—कुंडलिनी जागरित करना, षट्चक्र भेद करना एवं ग्रन्थि भेद करना—इन तीनोंमें एक सुन्दर सादृश्य देखनेमें आता है। प्राचीन ऋषियोंने मन और प्राणका सम्बन्ध और दोनोंके कार्य-कलापकी गवेषणाकर प्रत्येक चक्रमें निहित एक महती शक्ति आविष्कार की। मन जहां जाता है प्राण उसका अनुगमन करता है। इसमेंसे एकको शान्त करनेसे दूसरा स्वतः ही शान्त हो जाता है और यदि एक चंचल हो तो दूसरा शान्त नहीं हो सकता। स्थानविशेषमें चित्त संयम द्वारा अथवा स्थैर्यसम्पादनपूर्वक प्राणकी क्रिया उत्पादन करनेसे अनेक कठिन रोगोंका प्रतिकार किया जा सकता है। व्यायामशास्त्रके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
विख्यात शिक्षक, सैन्डो, मनके तरफ विशेष लक्ष्य रखनेका उपदेश करते थे। 'मन-प्राण ऐक्य करे डाको यशोदाकुमारे'—यह जनश्रुति इसी रहस्यका प्रचार करती है।

योगकी विशिष्ट क्रियाएँ प्रधानतः दो प्रकारसे साधित होती हैं :—

(१) मनकी सहायतासे ध्यानयोग अथवा भक्तियोग अवलम्बन करके (२) प्राणकी सहायतासे क्रियायोग अवलम्बन करके।

कहना अनावश्यक होगा कि एकको अवलम्बन करनेसे दूसरेकी सहायता स्वतः ही मिल जाती है। उत्तम साधकोंने इन दोनों प्रणालियोंमें एक समन्वय साधनकर साधनराज्यको सुगम कर दिया है। प्राणवायुकी सहायतासे कार्यसिद्धि लाभ करनेमें कुछ बल प्रयोग करना पड़ता है—इस कारण यह हठयोगके अन्तर्गत है। इस प्रणालीमें विपदकी सम्भावना भी यथेष्ट है। राजयोगके साधक इस प्रकार बल प्रयोग न कर, ध्यान और संयमकी सहायतासे अपेक्षाकृत सहज उपायसे सफलता लाभ कर लेते हैं। ऋषियोंने देखा कि हमारी सब वक्र-गतिके मूलमें हैं—वासना (संस्कार), वृथाकर्तृत्वाभिमान एवं कामना (आसक्ति, स्वार्थ, भोगस्पृहा, फलाकांक्षा, प्रतिष्ठा मोह)। इसलिए ये सब मलिनताएं और बाधाएँ जितनी ही चित्तसे दूर की जायँगी उतना ही हमारा भगवद्धाम जानेका पथ सरल, सुन्दर और सुगम हो जायगा। भक्तियोगके साधकोंकी चित्तशुद्धि और ध्यानजपादिके फलस्वरूप यही कार्य अज्ञातपूर्वक साधित होते देखे गये हैं। ध्यानयोगकी सहायतासे हठयोगकी क्रिया भी सहज साधित हो जाती है।

विचार करिये कि मूलाधार चक्र स्थूलदेहकी क्रियामें व्यस्त है। इसके चार दलमें जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिका खेल हो रहा है। विचार, संयम और अभ्यास द्वारा यहाँके घूमते हुए चक्रका परिधि क्रमशः संकुचित होने लगता है और उसीके साथ जन्म-मृत्यु आदिकी चिन्ता और प्रभाव चित्तसे लोप होने लगते हैं। तब यह साधकको विचलित नहीं कर सकते। तब साधकका मन दलपरिधि परित्यागकर केन्द्रस्थलमें जाकर ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है। फलतः साधकको ऊर्ध्वस्थ स्वाधिष्ठान चक्रकी भूमि लाभ होती है। ध्यान, जप, प्राणायामादि
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रिया साधककी इस ऊर्ध्वगति लाभमें सहायक होते हैं इसमें सन्देह नहीं। स्वाधिष्ठान चक्र रिपुस्थान हैं। छः रिपु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) इसके छः दल हैं। विचार-जपादिके फलस्वरूप इस चक्रका परिधि भी कम होने लगता है और साधकके चित्तको केन्द्रस्थलमें ले जाता है। तब साधक अनायास रिपुओंको जयकर ऊपरके चक्रकी भूमि लाभ करता है। इस प्रकार साधक एक-एक चक्र भेदकर जब साधनराज्यकी सर्वोच्चभूमि लाभ करता है अर्थात् सहस्रारमें पहुँचता है तब उसकी जपादि साधना चिन्ता-चेष्टाविवर्जित होकर स्वाभाविक अवस्था लाभ करती है। समस्त जगत्-चक्र तब वक्रता त्यागकर भगवद्धाममें परिणत हो जाता है। साधक तब ब्रह्मानन्दरसमें निमज्जित हुआ ब्रह्मभावको प्राप्त होता है।

जपादि सब साधनाओंके भीतर हम तीन तत्त्व देखते हैं :—(१) भगवानके निकट जाना, (२) भगवद्भावसे परिभावित होना, (३) सब तत्वोंको भगवत्-तेज और भगवत्-शक्तिसे परिभावित कर भगवत्-कार्य साधनमें नियुक्त करना। अनेक साधक भगवद्-धाममें पहुँचकर, भगवद्भावसे परिभावित होकर, ब्रह्मानन्द-रसमें ऐसे विभोर हो जाते हैं कि वे अपने देहकी सुध अथवा जीवकी दुःखावस्था बिलकुल भूल जाते हैं। दूसरी तरफ भगवान बुद्ध थे जो एक जीवको भी अमुक्त छोड़कर अपनी मुक्तिलाभसे तृप्त नहीं थे। ऐसे साधक अपने सब चक्रोंमें—सब तत्वोंमें—भगवत्-शक्तिको अवतरण कराकर (Descent of Divine) भगवत्-मय होकर भगवत्कार्य करनेमें तत्पर रहते हैं। वैदिक ऋषियोंकी इस ओर प्रधान दृष्टि थी; वेदके मन्त्र एवं स्वयं गायत्री इसके साक्षी हैं। 'आविरावीर्म्म एधि' एवं 'धियो यो नः प्रचोदयात्' प्रभृत्ति मन्त्र यही रहस्य प्रकाश करते हैं। जिनके द्वारा जगत्में विशेष कार्य करना होता है उनको भगवान् सहस्रारमें पहुँचकर ब्रह्मानन्दमें डूबे नहीं रहने देते। उनके सब तत्वोंमें भगवत्शक्ति संचारितकर, उनके भीतर स्वयं पूर्णतया अवतीर्ण होकर, उनको अपने समान शक्तियुक्तकर मानो एक पुरुषोत्तम बना देते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रन्थिभेद

चक्रोंमें तीन चक्र (मणिपुर, अनाहत, आज्ञा) तीन ग्रन्थि (ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि, रुद्रग्रन्थि) नामसे विशेषतः उल्लेखनीय हैं। ये तीन ग्रन्थि त्रिविध एषणा (पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा) नामसे भी परिचित हैं। संन्यास लेनेके समय ये त्रिविध एषणा त्याग करनेकी व्यवस्था है। ब्रह्मग्रन्थिभेदके फल-स्वरूप साधक कामादि कुप्रवृत्ति सृष्टिवासना, इत्यादिको पूर्णतया जीतकर, जितेन्द्रिय होकर, प्रसिद्धि लाभ करता है। विष्णुग्रन्थिभेद हो जानेपर वैष्णवी-माया, धन-ऐश्वर्यादिका प्रलोभन उसको विचलित नहीं कर सकता। रुद्रग्रंथिभेद-के पश्चात् साधक प्रतिष्ठाके मोहपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। तीनों ग्रन्थि भेद हो जानेपर साधक अमृतत्व लाभ करनेमें समर्थ हो जाता है—'गुहा-ग्रन्थिभ्यो विमुक्तः अमृतमश्नुते'। ये तीन ग्रन्थि तीन चक्र विशेष हैं। ध्यान-जप-प्राणायामादि कार्य उत्तमरूपसे अनुष्ठित होनेपर चक्रभेद अथवा ग्रन्थिभेद क्रियादि स्वतः साधित हो जाती हैं।

ग्रंथिभेदका अर्थ है बन्धनसे मुक्ति लाभ करना। ये बन्धन त्रिविधि हैं—देहज, प्राणज, आत्मज। जगत्में एक विराट् स्थूलदेह है। व्यष्टिदेह इस विराट्-देहके ऊपर समुद्रकी तरङ्गके समान उठती है और खेल-कूदकर फिर समुद्रजलमें लीन हो जाती है। हम बुद्धिके दोषसे, संस्कारके वश होकर, एक-एक लहरको अपनी समझकर उसमें आबद्ध हो जाते हैं। यह बन्धन कल्पना-प्रसूत है। इस कल्पित बन्धनको दूर करके, समस्त देहोंको आत्माके देहरूपमें उपलब्ध करना ब्रह्मग्रंन्थि-भेदका लक्ष्य है। प्राण-मन-विज्ञानमय कोशमें हम सर्वव्यापी प्राण-मन आदिको सत्ताको भूलकर, एक निर्दिष्ट प्राण-मनमें अपनी अहन्ता स्थापनकर, उसके सुख-दुःखमें ऐसे आबद्ध हो जाते हैं कि व्यष्टिदेहके सुखके लिए समष्टि प्राण-देहको आघात पहुँचानेमें भी दुविधा बोध नहीं करते। जगत्में सर्वत्र एक ही प्राणका खेल हो रहा है, सबका सुख-दुःख एक हीमें सम्मिलित है—यह तत्त्व उपलब्धकर व्यष्टिदेहके सीमाबद्ध सुख-दुःखको समष्टिगत सुख-दुःखमें मिला देना प्राणग्रन्थि अथवा विष्णुग्रन्थि भेदका उद्देश्य है। आत्माका धर्म आनन्द है, उसको एक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामान्य देहके आनन्दमें सीमाबद्धकर, एक व्यष्टिदेहके आनन्दके लिए हम समष्टि-देहका आनन्द नष्ट करनेमें दुविधा बोध नहीं करते। इस सीमाबद्ध व्यष्टिदेहका बन्धन दूरकर, समष्टिगत आत्माका स्वरूप उपलब्धकर, सब जीवोंके हितसाधन और आनन्दविधानमें रत रहना ही रुद्रग्रन्थिभेदका उद्देश्य है। तत्त्वतः अपने कल्पित व्यष्टिभावको दूरकर, समष्टिभावमें स्थितिलाभ करनेकी चेष्टा ही व्यष्टि-भावका ग्रन्थिभेद है। अपनेको सबके सङ्ग अभेदरूपमें सम्मिलित समझना होगा। बहुत्वमें एकत्व स्थापन करना (एकत्वानुभूति) और स्वार्थ व परार्थका अपूर्व समन्वय साधन करना ग्रन्थिभेदका उद्देश्य है।

ब्रह्मग्रन्थिभेद हो जानेपर जीव-जीवमें भेदभाव दूर हो जाता है और साधक समष्टिभावमें स्थितिलाभ करता है—तब इष्टमूर्ति भी मानो विश्वरूप धारण करती है। विष्णुग्रन्थि भेद हो जानेपर साधक खण्ड-प्राणमें महाप्राणका भाव अनुभव करने लगता है—तब वह अपनेको सबके सुखमें सुखी और सबके दुःखमें दुःखी बोध करता है। रुद्रग्रन्थिभेद हो जानेपर साधक एक अखण्ड अद्वय भावमें स्थिति लाभ करता है। ब्रह्मग्रन्थिभेदके फलस्वरूप साधक सत्यप्रतिष्ठ हो जाता है—समस्त जीव-जगत्को एक ही सत्-स्वरूपके विभिन्न अङ्गरूपमें अनुभव करता है—सभी मानो एक हीके विभिन्न रूपमें आत्मप्रकाश हैं। तब सर्वभूतमें एक ही माँका दर्शन लाभ होनेके कारण 'ममात्मा सर्वभूतात्मा' का भाव अनुभवमें आता है। विष्णुग्रन्थिभेदके अनन्तर प्राणप्रतिष्ठा लाभ होनेके फलस्वरूप सब जीवोंमें एक महाप्राणकी लीला अनुभवमें आती है। तब सब कर्म अपने ही कर्म मालूम पड़ते हैं। सबके ऊपर एक प्रेमभाव आ जाता है। इस अवस्थामें साधक सबके सुख-दुःखमें अपनेको सुखी-दुःखी बोध करता है और सबके सुख-सम्पादनके लिए अपना जीवन उत्सर्ग करता है। रुद्रग्रन्थिभेदके पश्चात् साधक आनन्दप्रतिष्ठा लाभकर सबके आनन्दमें स्वयं आनन्द भोग करता है। ग्रन्थिभेदके फलस्वरूप जाग्रत् अवस्थामें जीवसेवा, स्वप्नावस्थामें मैत्रीभावना और समाधिमें सर्वत्र एकत्वानुभूति लाभ होती है।

त्रिविधग्रन्थि भेदकर ब्रह्ममें स्थिति लाभ करनेकी व्यवस्था देखी जाती है। दुर्गासप्तशतीमें मधुकैटभ-वध द्वारा सत्यप्रतिष्ठित होकर, अपना ससीमभाव दूर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर, सर्वत्र ब्रह्मानुभूति द्वारा ब्रह्मग्रन्थिभेद करनेकी व्यवस्था है। महिसासुर-वध द्वारा प्राणप्रतिष्ठित होकर, सर्वत्र एक महाप्राणका खेल दर्शनकर, अहङ्कारको पूर्णतया दूर करके, विष्णुग्रन्थि भेद करनेकी व्यवस्था है। शुम्भ-निशुम्भ-वध-द्वारा आनन्दप्रतिष्ठित होकर, सर्वत्र ब्रह्मानन्द अनुभवकर, रुद्रग्रन्थि भेद करनेकी व्यवस्था है। त्रिविध कर्मवासनाका बीज भी मुक्तिमें, भगवत्-प्राप्तिमें, बाधक है। ब्रह्मग्रन्थिभेद द्वारा प्रारब्ध कर्मका, विष्णुग्रन्थिभेद द्वारा सञ्चित कर्मका, रुद्रग्रन्थिभेद द्वारा आगामी कर्मका बीज दग्ध हो जाता है। स्थूलदेहका संस्कार ब्रह्मग्रन्थिभेदसे, सूक्ष्मदेहका संस्कार विष्णुग्रन्थिभेदसे एवं कारणदेहका संस्कार रुद्रग्रन्थिभेदसे साधित होता है। प्रथम ग्रन्थिभेद द्वारा पुत्रैषणा, द्वितीय ग्रन्थिभेद द्वारा वित्तैषणा एवं तृतीय ग्रन्थिभेद द्वारा लोकैषणा दूर होकर गीतोक्त प्रकृत संन्यासका अधिकार लाभ होता है। कहना अनावश्यक है कि लोकैषणा दूर करना ही सर्वापेक्षा कठिन है।

कुण्डलिनी

चित्-स्वरूप आत्मा नित्य-शक्ति-समन्वित है। आत्मा सदा एकरस एवं निष्क्रिय रहता है किन्तु उनकी शक्ति कभी सक्रिय और कभी निष्क्रिय होती है। यह शक्ति चित् और अचित् भेदसे प्रधानतः दो प्रकारकी है। चित्-शक्ति चित्स्वरूप है—आत्माकी समवायिनी शक्ति है, यह उनसे अभिन्न है। किन्तु अभिन्न होनेपर भी इसकी दो अवस्थाएँ हैं। जब यह शक्ति निष्क्रिय होती है तो इसका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। इसीलिए चिदात्मा शिव, नित्य प्रकाशमान होते हुए भी अप्रकाश मालूम पड़ते हैं। किन्तु शक्ति जब सक्रिय होती है अर्थात् क्रिया द्वारा आत्मप्रकाश करती है तब उसके आश्रयसे शिव भी आत्मप्रकाश करते हैं। वस्तुतः शिवकी व्यक्त अथवा अव्यक्त कोई भी अवस्था नहीं। वे नित्य स्वप्रकाश हैं और शक्तिकी व्यक्तता-अव्यक्तता उनमें केवल आरोपित है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अचित् शक्ति शुद्ध और अशुद्ध भेदसे दो प्रकारको है। यह परिग्रह-शक्ति अथवा उपादान-शक्ति (लीला-शक्ति) नामसे परिचित है। यही जगत्को उपादान है। शुद्ध अचित्-शक्ति मायातीत विशुद्ध जगत्की उपादान है—इसको वैष्णव 'शुद्धसत्त्व' और तान्त्रिक 'बिन्दु या महामाया' कहते हैं। अशुद्ध-शक्तिसे अनन्त ब्रह्माण्डसमन्वित समग्र मायिक जगत् प्रकाशित होता है। शुद्ध अचित्-शक्तिका नामान्तर 'कुलकुण्डलिनी' है। जब तक क्रियारूपा चित्-शक्तिका अभिमत न मिले तब तक यह सुप्तवत् रहती हैं और इनमें किसी प्रकारका क्षोभ नहीं होता। यह सृष्टिकी पूर्वावस्था है। जब चित्-शक्तिके आघातसे सुप्त महामाया जागरित हो उठती हैं तब उक्त महामायासे अवस्थित संकुचित चिदणुराशि भी जाग उठती है। यह जागरण नाद और ज्योतिरूपमें आत्मप्रकाश करता है। ज्योतिर्मण्डलके बाहर छाया अथवा तमःरूपा मायाशक्ति विद्यमान हैं। शुद्ध सृष्टिके पश्चात् मायाधिष्ठाता ईश्वरके सविकल्प ज्ञानरूप ईक्षणके प्रभावसे माया क्षुब्ध हो जाती है। तब माया-गर्भस्थित सब अणु अपने-अपने अधिकारानुसार अधिकारी पद लाभ करते हैं अथवा कोई मायिक सृष्टिके अन्तर्गत किसी न किसी स्तरमें प्रकाशित होते हैं।

पूर्ववर्णित सुप्ता महामाया ही 'कुण्डलिनी' शक्ति नामसे परिचित हैं। इनको कुलकुण्डलिनी इसलिए कहा जाता है कि तान्त्रिक साहित्यमें 'कुल' एवं 'अकुल' शब्द यथाक्रम 'शक्ति' एवं शिव' के वाचक हैं। अतएव 'कुलकुण्डलिनी' शब्दसे शक्तिकी कुण्डलित अथवा वक्रभावापन्न अवस्था विदित होती है। शक्ति जब सरल और स्वाभाविक स्वरूपमें प्रतिष्ठित रहती है तब वे चिद्रूपमें एवं शिवके साथ अभिन्नरूपमें विराज करती हैं। तब जीव-जगत्रूपमें सृष्टिका उन्मेष नहीं होता। किन्तु वक्रताके साथ-साथ अर्थात् शक्तिकी प्रसुप्तावस्थामें जीवजगत्का आविर्भाव होता है। जीव-जगत्में ही नहीं वरन् प्रत्येक परमाणुमें यह सुप्तभावापन्न शक्ति विद्यमान है। इसको जब तक सरल न किया जाय तब तक जीवन-जगत्को शिवरूपमें अथवा आत्मस्वरूपमें अनुभव करना सम्भव नहीं। शक्तिके जागरणके साथ ही साथ उसकी वक्रता तिरोहित होने लगती है। इसके फलस्वरूप हिंसा, द्वेष, अहंकार, दम्भ, काम, क्रोधादि वक्रभावानुकूल वृत्तियाँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रेम, दाक्षिण्य, सरलता, स्वच्छन्दता, वैराग्य, ज्ञानादि सद्गुणोंसे परिणत हो जाती हैं। एक शब्दमें, समस्त तामसिक और राजसिक भाव सात्त्विक भावमें रूपान्तर हो जाते हैं।

चिद्रूपा शक्तिका प्रकृत वासस्थान सहस्रारमें--शिवके निकट कैलासमें--है किन्तु जीवदेहमें वे अचिद्रूपमें मूलाधारमें गहन निद्रामें अभिभूत हैं। स्थूल जगत्‌में वे स्थूलभावापन्न हुई अचेतन-प्राय हैं जिसके फलतया उनका चिन्मय स्वरूप प्रायः सर्वत्र अस्वीकृत है। इसी कारण जड़भाव—नास्तिकभाव--सर्वत्र फैला हुआ है। इसी कारण अधिकांश लोग स्थूल सुख, स्वार्थ और निजसुखस्पृहा-में इतने व्यस्त हैं। कोई भूलकर भी एक बार अपने प्रकृत स्वरूपकी ओर नहीं फिरना चाहता। जगत्‌में सर्वत्र ईर्षा, द्वेष, अशान्ति इसीका फल है।

जीवकी आत्मविस्मृत अवस्था ही कुण्डलिनीकी निद्रा है। जीव वस्तुतः शिवस्वरूप है किन्तु आत्मविस्मृत हो जानेके फलस्वरूप वह अपने शिवमय स्वरूप-को अनुभव नहीं कर पाता। आत्मा अथवा भगवान्‌की महिमाको अनुभवकर सर्वत्र प्रचार करनेके लिए ही प्राणशक्तिका स्फुरण होता है किन्तु विरुद्ध शक्तिके संघषके कारण जब तक पूर्णरूपमें आत्मप्रकाश न हो तब तक ऐसा नहीं हो पाता। यह शक्ति कारण, सूक्ष्म और स्थूल स्तरमें अर्थात् मायिक जगत्‌में निरन्तर बाधा प्राप्त करनेके कारण कालचक्राकारमें आवर्तित होने लगती है। इस आवर्तनके अवसानपर वह आत्मस्वरूपको भी उपलब्ध करेगी यह निश्चित है। बहिर्जगत्‌में आकर जीव वैष्णवी मायासे आच्छन्न होकर अपने स्वरूप और धामको भूलकर अर्थात् सुषुम्नाके पथसे विस्मृत हुआ, ईड़ा-पिङ्गलाके मार्गमें विचरण करने लगता है। क्रमशः संस्कार अथवा वासना, कर्त्तृत्वाभिमान, भोगस्पृहादिके हाथमें पड़कर अशेष यातना भोग करता है। किन्तु भगवान्‌के मङ्गलमय विधानानुसार उसे फिर लौटना पड़ेगा। कारण, स्व-स्वरूपमें पुनः प्रतिष्ठित हुए बिना वह शान्ति लाभ नहीं कर सकता। साधनके फलस्वरूप यह प्रत्यावर्तनका पथ सुगम और अल्पकाल-स्थायी हो सकता है। कोई-कोई भाग्यवान् पूर्व सुकृतिके फलस्वरूप, शास्त्र, गुरु और विवेककी कृपासे साधनाके इस पथमें स्रोतापन्न होकर, सुषुम्नावाही ऊर्ध्वस्रोतमें नौकाको छोड़कर, स्वधाम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

लौटनेमें समर्थ होते हैं। तब कुण्डलिनी शक्ति अपने कुण्डल अथवा वक्रभावको त्यागकर सरल होकर जाग उठती हैं और इसके फलस्वरूप साधक ईड़ा-पिङ्गला-का पथ परित्यागकर सुषुम्नाके पथमें यातायात करते-करते—षट्चक्र भेदकर—ऊर्ध्वकी ओर उत्थित होता है। जीवको ऊपर सहस्रारसे भगवान् बुला रहे हैं और नीचे मूलाधारमें विषय आकर्षण कर रहे हैं। नीचे का विषयाकर्षण प्रबल हो तो भगवदाकर्षण अनुभव नहीं किया जा सकता। इसलिए सर्वदा ऊर्ध्व दृष्टि होकर कृपा प्रार्थना करना आवश्यक है। मन्त्र-योगकी सहायतासे मनका सुषुम्ना-पथमें मूलाधारसे सहस्रार तक, षट्चक्र-भेदकर, चढ़ना-उतरना करते रहनेसे कुण्डलिनीकी निद्रा भङ्ग हो जाती है। भूतशुद्धि भी तब स्वतः साधित हो जाती है। कुण्डलिनी ही जीवदेहमें श्वासक्रियारूपमें प्रवाहित हुई जीवनधारासे सहायक हैं। साधारण जीवकी देहमें कुण्डलिनीकी श्वासक्रिया बन्द हो जानेपर मृत्यु अवश्यम्भावी है। कुण्डलिनीके ध्यानसे व्याधि और अकालमृत्यु दूर होती है और आत्मज्ञान प्रकाशित होता है। जीवके मन और प्राण-क्रियाके सहित कुण्डलिनीका बहुत निकट सम्बन्ध है। इसलिए प्राणायामादि क्रिया कुण्डलिनी जागरित करनेमें विशेषतः सहायक हैं। विमर्श शक्तिके प्रसारण और आकुञ्चनके सहित प्राणवायुका सहस्रारसे मूलाधार गमन एवं पुनः मूलाधारसे सहस्रार प्रत्यावर्त्तन क्रिया साधित हो जाती है। इसके फलस्वरूप देहके सब तत्त्वोंमें शक्ति सञ्चरित होकर सब तत्त्व भगवत्-कार्यसाधनकी योग्यता लाभ करते हैं—इसीका नाम है मर्त्यमें स्वर्गराज्यका अवतरण अथवा दिव्यदेहकी प्राप्ति।

जीवदेहमें प्राणका मनके साथ एक अति मधुर सम्बन्ध है। मन जहाँ जाता है प्राण भी वहीं उपस्थित होनेकी चेष्टा करता है। पुनः प्राण जहाँ क्रिया करता है मन वहाँ जाये बिना नहीं रह सकता। यही मन और प्राणकी एकता साधन कर, कुण्डलिनी शक्तिको जाग्रतकर, शास्त्रमें भगवान्का नाम लेनेका उपदेश पाया जाता है 'मन-प्राण ऐक्य करे डाको यशोदा कुमारे'। मनको भगवान्की इच्छाशक्ति एवं प्राणको भगवान्की क्रियाशक्ति (कुलकुण्डलिनी) रूपमें भी वर्णन किया गया है। मन ही ब्रह्मका विर्वतन माना गया है। मन ही विश्व ब्रह्माण्ड एवं उसका स्रष्टा, रक्षक व संहारकर्त्ता है। मन अथवा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इच्छाशक्ति ही संस्कारवश वक्रताको प्राप्त होकर, प्राणशक्तिको भी वक्रकर, चक्रमें घुमाती है जिसके फलस्वरूप स्वच्छ और सरल ज्ञान आच्छन्न होकर सुप्तावस्थामें परिणत हो जाता है। मनको सरलकर सकनेसे ही मन, प्राणके सहित युक्त होकर, प्राणको भी सरल कर, सुषुम्ना मार्गमें प्रवेश करता है। इसलिये मन ही मूलाधारमें कुण्डलिनी शक्ति है। इसी मनको सरल करके और चित्-शक्तिमें परिणत करके श्रीकृष्णने कुब्जाको सीधा किया था और कंसासुरका वध किया था। प्राण और मनके सुषुम्ना मार्गमें प्रवेश होनेसे ही नादध्वनि सुनाई देती है। यही कलनाद सुनकर जीवरूपीगण सब कुछ त्यागकर एक दिन कृष्णान्वेषणमें बाहर चले गये थे। मन राक्षसको वशीभूत करनेके लिए ही उसको मेरुदण्डके भीतर सुषुम्ना मार्गमें चढ़ने-उतरनेका काम करनेका उपदेश दिया गया है।

कुण्डलिनीको जागरित करनेके लिए नाना प्रकारके उपाय शास्त्रमें निर्दिष्ट किये गये हैं। इनमेंसे जो उपाय क्रियायोगके अन्तर्गत हैं अर्थात् वज्रासनादि आसन, शक्तिचालनादि मुद्रा, ब्रह्मचर्यादि नियम, कृत्रिम प्राणायामादि क्रिया, इत्यादि--ये सब सिद्ध गुरुके निकट बैठकर अत्यन्त सावधानीसे अनुष्ठान करने योग्य हैं। आहारविहारादि सब विषयोंमें सुसंयत होकर, गुरुके आज्ञानुसार उनकी उपस्थितिमें प्रयत्न पूर्वक फललाभ करनेकी चेष्टा करनी होती है। इस प्रणालीमें किसी प्रकारकी त्रुटि-विच्युति होनेसे फललाभ होना तो दूर रहा, नाना प्रकारके दैहिक और मानसिक विकार उत्पन्न हो सकते हैं। वर्तमान समयमें सिद्ध योगी अत्यन्त विरल होनेके कारण, साधारण लोगोंके लिए यह क्रियामार्ग आश्रय करना समीचीन नहीं मालूम होता। सिद्धयोगी अपनी इच्छा-पूर्वक अपनी तपःशक्तिके प्रभावसे अनुगत शिष्यकी सुप्त कुण्डलिनीको प्रबुद्धकर उसके ऊर्ध्वमुख संचारित होनेके प्रतिबन्धक दूर कर सकते हैं—प्राचीनकालमें, मध्य युगमें एवं वर्तमान समयमें भी इसके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। किन्तु सिद्धयोगी अत्यन्त विरल एवं साधारणतः सबके लिए सुलभ न होनेके कारण स्वयं ही सहज उपायसे कुण्डलिनी जाग्रत् करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

कुण्डलिनी साधनका अन्यतम श्रेष्ठ उपाय है ज्ञान, कर्म और भक्तिका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

समन्वय साधन। ज्ञान और भक्तियोगकी साधना एवं संयमादिके फलस्वरूप सुषुम्नाका पथ स्वतः खुल जाता है और साधकको स्रोतापन्न कर देता है। मनको स्थिर और शान्त करनेका सहज उपाय नादानुसंधान नामसे परिचित है। किन्तु जब तक कुंडलिनी शक्ति किंचित् परिमाणमें भी जागरित न हो तब तक नादध्वनि सुनाई नहीं देती। इसलिए नादानुसंधानका अभ्यास प्रथमावस्थामें सबके लिए सम्भवपर नहीं। सर्वप्रथम मनको बाह्य विषयोंसे प्रत्याहारकर एवं यथाशक्ति संयतकर मूलाधार प्रदेशमें संलग्न कर सकनेपर, अल्पसमयके अभ्याससे सुफल पानेकी सम्भावना है। इस प्रकार मनोयोगके फलस्वरूप मेरुदण्डके निम्न प्रदेशमें एक स्पन्दन अनुभूत होता है और क्रमशः शक्तिकी क्रिया स्पष्टतः बोध होने लगती है। मालूम होता है कि जैसे एक वैद्युतिक प्रवाह देहके अधःस्थानसे ऊर्ध्व स्थान तक मेरुदण्डके भीतर संचरण कर रहा है। एकाग्रताके फलस्वरूप इस प्रवाहके साथ-साथ मनकी ऊर्ध्व और अधोगति पुनः-पुनः सम्पन्न होती है। तत्पश्चात् क्रमशः साधकके अधिकारानुसार नादध्वनि श्रुतिगोचर होती है एवं नाना प्रकारकी ज्योतिः प्रकाशित होती है। नाद खुल जानेके बाद नादकी संगतिमें अजपा मन्त्र जप करना होता है। तब क्रमशः मन नादके स्रोतमें बहता हुआ अलक्ष्यमें लय अवस्था प्राप्त करता है और इसके फलस्वरूप चकितकी भाँति महा-ज्ञानका आविर्भाव होता है। अवश्य प्रथमावस्थामें यह स्थायी नहीं होता किन्तु दीर्घकाल तक अक्लान्त अध्यवसाय सहित और श्रद्धापूर्वक यह प्रक्रिया साधन करनेसे मनके अनादि संस्कार और वासना विदूर हो जाते हैं और मन निर्मल हो जाता है। तब सब बाह्य वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं और अन्तर्मुख भाव स्थायी हो जाता है। उस समय विषयवैराग्य और विशुद्धानन्दका आस्वाद स्वतः ही उदित होता है।

शास्त्रोंमें बताया गया है कि भगवानकी अनन्तशक्ति प्रत्येक जीवमें, यहाँ तक कि प्रत्येक परमाणुमें निहित है। साधारणतः यह शक्ति निद्रित अवस्था (latent form) में रहती है। इस निद्रित (latent) शक्तिको जागरित (patent) कर भगवदिच्छा पूरण करनेमें लगानेका नाम ही है कुंडलिनीका-जागरण। शक्ति सुप्तभावमें सर्वजीवमें निहित है। शिक्षा एवं साधना सब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आवरणोंको दूरकर शक्तिके प्रकाशमें सहायक होते हैं। किन्तु ये केवल निमित्त कारण हैं। निमित्त कारण प्रकाशकी बाधाको अतिक्रमकर प्रकाशमें सहायमात्र है। शक्तिके प्रकाशके लिए नाना प्रकारकी प्रक्रियाएँ देखनेमें आती हैं। थोड़ा विचार करने से ही समझमें आ सकता है कि हमारी समस्त शिक्षा-दीक्षा-साधनप्रणाली इसी सुप्त-शक्तिको जागरित, प्रकटित और कार्यशील करनेके उपाय हैं।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ीतत्त्व

नाड़ी शब्दका अर्थ है वाहक—जिसके द्वारा तरल वायवीय पदार्थादि वाहित अथवा संचारित होते हैं। इड़ा-पिंगलादि संज्ञावहा एवं क्रियावहा स्नायवीय नाड़ी हैं। ये स्नायुस्रोत (nervous current) वहन करती हैं। देहके समस्त कर्म (रक्तकी गति, अन्नादिका परिपाकादि, हस्तपदादिका संचालन प्रभृति) एवं समस्त मानसिक व्यापार इन्हीं इड़ा-पिंगलाकी सहायतासे सम्पादित होते हैं। नाड़ीकी अन्तर्मुखी अवस्थाका नाम इड़ा है। इसके प्रभावकालमें हमारे इन्द्रिय-मन-बुद्धि आदिकी गति बाहरसे भीतरकी तरफ चालित होती है। किसी-किसी योगीके मतानुसार जब हमारी श्वास बाईं नाकसे चलती है तब हमारी वृत्ति प्रधानतः अन्तर्मुखी होती है। इसलिए वे इड़ाको बाईं नाककी श्वास रूपमें निर्देश करते हैं। अन्तर्मुखी चित्ताका नाम चन्द्रतत्त्व है। अनेक लोग इड़ाको केन्द्राभिमुखी नाड़ी (afferent nerve) मानते हैं। जब श्वास बाईं नाकसे चलती हो तब इड़ाका प्रभाव काल मानकर उस समय धारणा, ध्यान, जप, पूजादि कार्य करनेका उपदेश किया गया है। इड़ाकी वहिर्गति (जागतिक भाव) का नाशक मानकर 'वामा' नाम भी दिया गया है। इसको चन्द्र नाड़ी भी कहते हैं।

योगशास्त्रमें पिंगला सूर्यनाड़ी नाममें विख्यात है। सूर्य जिस प्रकार जीवको बाहरकी तरफ, कार्यक्षेत्रकी तरफ, चालित करते हैं पिंगला नाड़ीकी क्रिया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी उसी प्रकार जीवको बाहरकी तरफ, क्रियाकलापकी तरफ, चालित-कर बहिर्मुखी करती हैं। पिंगला सूर्यकी—विष्णुकी—पालनशक्ति है, इसलिए यह जाग्रत अवस्थाकी द्योतक है। जब दक्षिण नासिकासे श्वास प्रबल होती हैं तब हमारी प्रवृत्ति बाहरकी ओर धावित होती है। इसलिए पिंगलाके क्रियाकालमें भोजन, धावन, मैथुन, युद्धादि राजसिक कर्म किये जाते हैं। पिंगला-प्रवाहको केन्द्रातिग, बहिर्मुखी नाड़ी (efferent nerve) की क्रिया कहा गया है। जीवको अर्द्ध-नारीश्वरका प्रतीक मानकर, देहके वाम भागमें चन्द्र और दक्षिण भागमें सूर्यतत्त्व निर्देश करनेके लिये सम्भवतः इड़ाको वाम नासिकाके एवं पिंगलाको दक्षिण नासिकाके प्रवाहरूपमें वर्णन किया गया है। मेरुदण्डस्था द्विविध वेष्टनीमें बाहरकी वेष्टनी क्रियाशक्तिकी सञ्चालक है एवं भीतरकी धूसर वेष्टनी क्रियाशक्तिकी अनेकांश रोधक है। प्रथम (पिंगला) की गति केन्द्रातिग और द्वितीय (इड़ा) की गति केन्द्रानुग हैं। वुडरॉफ साहबने इड़ा-पिंगलाको समवेदनीय (Sympathetic) नाड़ी निर्देश किया है।

साधारणतः इड़ासे पिंगलामें अथवा पिंगलासे इड़ामें श्वास सञ्चारित होते समय सुषुम्ना नाड़ीको भेद करना होता है किन्तु इसमें बहुत ही अल्प समय लगता है। वास्तवमें उतने समयमें इड़ा या पिंगला किसीकी क्रिया नहीं होती। दिन और रातकी सन्धिके समान इड़ा और पिंगलाकी सन्धि सुषुम्ना नामसे विख्यात है। किन्तु यह सुषुम्नामें स्थिति क्षणिक होनेके कारण एवं योगीके स्वप्रयत्नसे उद्भव न होनेके कारण इससे साधनमें सहायता नहीं मिलती। साधनबलसे यह स्थिति अपने अधीन करना आवश्यक है। इड़ा-पिंगलाकी गति जिस परिमाणमें तिरोहित होगी, ठीक उसी परिमाणमें सुषुम्नामें वायुकी ऊर्ध्व गति लक्षित होगी। जब प्राण-प्रवाह नाड़ीमें चलना आरम्भ करता है तब ही उसका विकास लक्षित होता है। प्राणकी स्पन्दित अवस्थाको जीवावस्था एवं निस्पन्द अवस्थाको योगावस्था कहते हैं। दीर्घकाल तक प्राणायाम जपादि अभ्यासके फलस्वरूप प्राणवायु सुषुम्ना मार्गमें चलना आरम्भ करती है और सुषुम्नामें प्रवेशके मात्रानुसार लयभाव उपस्थित होता है। सुषुम्नामें प्राणवायु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
विलीन हो जानेपर बाह्य विषयोंका ज्ञान नहीं रहता--इन्द्रियादिकी क्रिया लोप हो जाती है। तब शिवतत्त्वका साक्षात्कार होता है। इसी कारण सुषुम्नाको वह्नितत्त्व अथवा श्मशान और शिवको श्मशानवासी कहा गया है। सुषुम्ना मार्गके साधकको श्मशानमें शव-साधक कहा जाता है। कारण इस अवस्थामें देह शव-भावको प्राप्त हो जाती है और देहाध्यास लुप्त हो जाता है। श्वास-साम्य = इड़ा-पिंगलाका साम्य = वक्रता दूर = स्वभावके साथ योग = सुषुम्नामें प्रवेश लाभ = निर्भरकी अवस्था लाभ = आत्मनिवेदन, अर्थात् इन सबका एक ही तात्पर्य है।

श्रुति कहती है कि सुषुम्ना अनाहतसे सहस्रार तक विस्तृत है ; कोई कहते हैं सुषुम्ना मूलाधारसे सहस्रार तक विस्तृत है ; कोई मणिपुरसे सहस्रार तक और कोई आज्ञाचक्रसे सहस्रार तक विस्तृत बताते हैं। जो अपनी पूर्व साधना द्वारा जिस स्तर अथवा केन्द्रमें प्रवेश करनेमें समर्थ हुए हैं अर्थात् जो भूमि लाभ किये हुए हैं, वे उसी स्थानसे सुषुम्नाकी ऊर्ध्वगति उपलब्ध करते हैं। त्रिवेणी इड़ा पिंगला सुषुम्नाका मिलनस्थान है। भ्रूमध्य आज्ञाचक्रमें ऊर्ध्व (मुक्त) त्रिवेणी एवं मूलाधारमें अधः (युक्त) त्रिवेणीका उल्लेख देखनेमें आता है।

"यद्यपि मूलाधारसे सहस्रार तक सुषुम्नाका विस्तार वर्णन किया गया है तथापि यह विशेषतः स्मरण रखना होगा कि ऊर्ध्वमुखी सुषुम्नाका स्रोत क्रमशः सूक्ष्मतर होकर प्रवाहित होता है और इसके फलस्वरूप गुणक्रियादिकी अनुभूति भी क्रमशः भिन्न हो जाती है। इसलिए योग-शास्त्रादिमें वज्रा, चित्रिणी और ब्रह्मनाड़ी नामकी तीन नाड़ियोंका उल्लेख पाया जाता है। ये वास्तवमें सुषुम्नासे स्वरूपतः अभिन्न हैं तो भी स्तर भेदानुसार विभिन्न प्रकारकी क्रियाकी अभिव्यञ्जिका होनेके कारण विभिन्न नामसे अभिहित हैं। अन्तिम अवस्थामें सुषुम्नाका परिचय ब्रह्मनाड़ीरूपमें प्राप्त होता है। यही पुराणादि शास्त्रोंकी सुप्रसिद्ध ब्रह्मनाल है। इसके साथ महाज्योतिःस्वरूप ब्रह्मतत्त्वका सम्बन्ध अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी योगीके अतिरिक्त, और कोई भी लक्ष्य नहीं कर सकता। कारण, शिव-शक्ति स्वरूपतः अभिन्न हैं एवं परमावस्थामें उनका पृथक् भाव एक हिसाबसे अव्यक्तरूपमें रहते हुए भी लक्षित नहीं होता। नाड़ी रेखास्वरूप है किन्तु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहस्रार दिगन्तव्यापी विराट् प्रकाशस्वरूप है। इस विराट् प्रकाशमें ज्योतिः रेखाका स्वतन्त्र अस्तित्व होते हुए भी न होनेके समान ही हो जाता है।

मूलाधारसे ऊर्ध्वगतिके समय जब अन्नोमयकोशमें अभिमान होता है तो इड़ा-पिंगलाकी क्रिया चलती रहती है किन्तु जब सुषुम्ना जागरित होती है तब इस जागरणकी मात्रानुसार इड़ा-पिंगलाकी क्रिया अवरुद्ध हो जाती है। सुषुम्ना-जागरण होते ही अभिमान प्राणमयकोशमें खेलने लगता है; तब प्राण-मयकोश में प्रवेशके अनुपातसे अन्नमयकोशसे अभिमान खिसक जाना है। तदनन्तर प्राणमयकोशकी क्रियाके अवसानपर अथवा इसी क्रियावस्थामें ही गुरुकी कृपासे अथवा साधन बलसे वज्रिणी नाड़ीका द्वार उन्मुक्त होता है। तब शक्ति इस नाड़ीको आश्रयकर कार्य करने लगती है और अभिमान प्राणमयकोश त्यागकर मनोमयकोशका आश्रय लेता है। इसके पश्चात् वज्रिणी नाड़ीसे चित्रिणीमें प्रवेश लाभ होता है। तब अभिमान मनोमयकोशसे विज्ञानमयकोशमें चला जाता है। चरमावस्थामें चित्रिणी नाड़ी भी परित्यक्त हो जाती है। तब जो यथार्थ ब्रह्मनाड़ी है उसको आश्रयकर शक्तिका खेल होता है और अभिमान विज्ञानमयकोश त्यागकर आनन्दमयकोशका आश्रय लेता है। आनन्दमयकोशमें किसी प्रकारकी मलिनता नहीं। इस कारण अभिमान इस स्थानसे अन्यत्र नहीं जाता। इस अवस्थामें आनन्दमयकोशकी अनुभूति सम्यक्रूपमें विद्यमान रहती है। यही जीवका मातृ-अङ्कमें अवस्थान है। जब यह अभिमान आनन्दमयकोशसे भी निवृत्त होता है तब जीवभाव नहीं रहता। तब महाचैतन्य अथवा परम साक्षी अवस्थामें स्थिति लाभ होती है। (भक्त आनन्दमयकोश भेद नहीं करना चाहता)।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मूर्तितत्व

'मूर्ति' शब्दका अर्थ हैं प्रकटित अथवा व्यक्त अवस्था। 'मूच्छं' धातुके उत्तर 'क्ति' प्रत्यय लगानेसे 'मूर्त्ति' शब्द बनता है। प्रकटित अथवा व्यक्त अवस्था मूर्त्ति कहलाती है। 'पूजा' शब्दका अर्थ हैं—श्रेष्ठको अवलम्बनकर अपनेको श्रेष्ठ बनानेकी चेष्टा। इसलिए मूर्त्तिपूजाका अर्थ हुआ भगवानके विकास जीव-जगत् तत्त्वको अवलम्बनकर अव्यक्त परमात्मतत्त्वमें जानेकी चेष्टा। अव्यक्तकी व्यक्तरूपमें परिणति अथवा विवर्तन आनन्दास्वादन करने और करानेके लिए, अपनेको प्रकाश करनेके लिए हैं। अव्यक्त जब अव्यक्त रहते हैं अर्थात् व्यक्त नहीं होते तब वे अनेकोंकी धारणाके अतीत हैं। और व्यक्त-जब अव्यक्तका प्रकाश करनेके लिए अर्थात् ग्रहणयोग्य करनेके लिए है तो यदि कोई व्यक्तावस्थाके आश्रयसे अव्यक्तावस्थामें जानेको चेष्टा करता है तो उसको अस्वाभाविक अथवा निन्दनीय कहना उचित नहीं। प्रकाश व्यक्तिरूपमें अथवा तात्त्विक रूपमें गोचर होता है। हम जो मूर्त्तियाँ देखते हैं वे आदर्शतत्त्वकी अथवा आदर्शपुरुषकी प्रतीक हैं। आदर्श-तत्त्व अथवा आदर्शपुरुषकी सहायतासे आदर्शजीवन लाभ करनेकी चेष्टाको ही मूर्तिपूजा कहते हैं। दुर्गा, काली आदि तात्त्विक एवं राम, कृष्ण, बुद्धादि ऐतिहासिक आदर्शका अवलम्बन श्रेष्ठता-लाभमें सहायक है यह स्वीकार्य है। यह भी अस्वीकार नहीं किया जाता कि मूर्त्तिपूजा अनेकांश विकृत हो गई है किन्तु विचार करना उचित है कि कौन-सा अनुष्ठान अनधिकारीके हाथमें पड़नेसे विकृत नहीं हो जाता। इसलिए शोधनकी आवश्यकता है, ध्वंस की नहीं। कौन कह सकता है कि एक भावको ध्वंस करके जो दूसरा भाव उसकी जगह स्थापित होगा वह ठीक ही होगा अथवा विकृत नहीं होगा। आदर्शमूर्त्तिको अवलम्बन कर किस प्रकार आदर्श जीवन लाभ किया जा सकता है यह धारणा-ध्यान-समाधि तत्त्वके अन्तर्गत है। कहना अनावश्यक है कि मूर्त्ति द्वारा अमूर्त्तको सीमाबद्ध नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया जाता—"नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वमूर्त्तो" आदि स्तत्र इसके साक्षी हैं। फिर जब व्यक्त-अव्यक्त, सगुण-निर्गुण दोनों भाव उन्हींके हैं और उपनिषदोंके ऋषिगण दोनोंकी समान प्रशंसा कर गये हैं तब इनमेंसे एक भावको दूसरेकी अपेक्षा श्रेष्ठ मानना उचित नहीं मालूम होता। कोई तत्त्व जब तक ऐतिहासिक रूपमें—स्थूल भावमें—आत्मप्रकाश नहीं होता तब तक वह अनेकांश हमारी धारणाके अतीत ही रह जाता है। इसलिए भगवान हमारे ग्रहणयोग्य होनेके लिए जीवजगद्रूपमें प्रकटित हैं। सफेद रंग सिवाय सफेद पदार्थके द्वारा और किसी प्रकार धारणा में नहीं लाया जा सकता। किन्तु ध्यान रखना होगा कि किसी विशिष्ट सफेद पदार्थमें हम सफेद तत्वको सीमाबद्ध न करें। सत्य तात्विक (abstract principle) है, मूर्ति उसकी प्रकटित अथवा व्यक्तावस्था (concretised form) है। हमारा लक्ष्य होना चाहिए तत्व (principle) किन्तु उसके प्रकटित (personified) हुए बिना ग्रहणयोग्य होनेकी सम्भावना कम है।

व्यष्टि-समष्टि तत्त्व

हिन्दू साधनप्रणालीमें व्यष्टि-समष्टि तत्त्वका एक अति सुन्दर आभास पाया जाता है। जगत्‌का प्रत्येक तत्त्व, प्रत्येक परमाणु, परस्पर सम्बंधित है। एक दूसरेकी सहायताके बिना कुछ नहीं कर सकता। हम सब एक दूसरेके प्रति चिरकृतज्ञ हैं—यहाँतक कि कोई भी मुझसे पृथक् नहीं है, सभी मेरे आत्माकी विभूति हैं, मेरे भगवानकी संतान-संतति हैं। बालबच्चोंको कष्ट पहुँचाकर कोई माँ-बापको सुखी नहीं कर सकता। इसीलिए जीवसेवाके द्वारा शिवकी सेवा करनेकी ओर हमारा प्रधान लक्ष्य है। धर्मको प्रकृत स्वरूप कहा गया है—"जाहाँ नाहि निजसुख अनुरोध" अर्थात् जहाँ अपने सुखके लिए कोई आग्रह नहीं है। 'कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा' की ओर हमारा प्रधान लक्ष्य है। 'आत्मेन्द्रिय-प्रीति-इच्छा' काम होनेके कारण त्याज्य है। हमारे भगवान सर्व-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
व्यापी हैं। "वासुदेवः सर्वमिति", "नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वमूर्त्ते", "विश्व-रूप-विश्वनाथ-विश्वजीव-निग्रहम्", आदि हमारे मंत्र हैं। "यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम्", "जित देखौं तित श्याम-मयी है", "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है", आदि हमारे गुरु-वचन हैं। सर्वत्र ब्रह्मदर्शन, ब्रह्मोपलब्धि, ब्रह्मसेवा हमारे जीवनका लक्ष्य है। जितने विभूतिमत पदार्थ हैं उनमें हम श्रीभगवानके अवतारकी खोज करेंगे। हम तर्पण द्वारा समस्त जीवोंकी तृप्ति-विधान करनेके लिए दीक्षित हैं। पंचमहायज्ञादि नित्य-कर्म द्वारा हम सब जीवोंकी सेवा करनेके अभ्यस्त है। अपना निवेदित अन्न अतिथि-अभ्यागत जीवजन्तु को प्रदान कर हमें अवशिष्ट अंशमात्र ही ग्रहण करनेका आदेश है। हम परोपकार नहीं मानते; कारण हमारे लिए कोई 'पर' नहीं। सभी हमारे आत्माकी, परमात्माकी, विलास-विभूति अथवा लीलास्वीकृत विग्रह हैं। हाय ! ऐसे जीवन्त धर्मकी आज यह दुर्दशा। अद्वैतवादके स्थानपर आ गया है भेदवाद। सर्वत्र भगवद्दर्शन, भगवद्ध्यान और सब जीवोंकी सेवा हमारी साधनाका सार तत्त्व है।

सत्य-प्रतिष्ठा, प्राण-प्रतिष्ठा, आनन्द प्रतिष्ठा

सत्य-प्रतिष्ठा—'सत्य' शब्दका अर्थ है षड् विध विकार वर्जित तथा नित्य। 'जायते-अस्ति-वर्धते-विपरिणमते-अपक्षीयते-नश्यति'—यह छः विकार जिसको स्पर्श नहीं कर सकते जो सर्वदा समानरूपमें अवस्थित रहता है, जिसके अस्तित्वके सम्बंधमें कोई सन्देह नहीं हो सकता, जो चरमतत्त्व है—वही 'सत्य' है। 'प्रतिष्ठा' का अर्थ है स्थिति। हमारा चित्त जब सत्यमें प्रतिष्ठा लाभ करेगा तब हम सत्य-प्रतिष्ठ होंगे। तब हमारी चक्षु आदि इन्द्रियाँ सब वस्तुओंमें सत्को ढूँढ़ेंगी, सत्का दर्शन करेंगी और मन सत्यके अतिरिक्त और कुछ भी चिन्तन न करेगा। जगत्के समस्त पदार्थोंको तब हम सत्यकी विभूतिरूपमें ग्रहण करेंगे। सत्यको छोड़कर और कुछ न देखेंगे, न सुनेंगे, न स्पर्श करेंगे। जब हम सर्वदा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्यके ध्यानमें विभोर रहेंगे तभी हम सत्य-प्रतिष्ठ होंगे। तब हमारे कान सब शब्दोंमें सत्यस्वरूप श्रीभगवानके मधुर शब्दके अतिरिक्त और कुछ न सुन सकेंगे। नेत्र उनके भुवनमोहन रूपके अतिरिक्त और कुछ न देख सकेंगे। त्वचा उनके सुखमय स्पर्शके अतिरिक्त और कुछ स्पर्श न करेगी। जिह्वा उनके अमृतरसके अतिरिक्त और कुछ पान न करेगी। नासिका उनकी गात्र-गंधके अतिरिक्त और कोई गंध ग्रहण न करेगी। मुख उनके विषयके अतिरिक्त और कोई वार्त्ता न करेगा। पैर उनके पथके अतिरिक्त और किसी पथपर न चलेंगे। मन उनके चिन्तनके अतिरिक्त और कोई चिन्ता न कर सकेगा। बुद्धि एवं चित्त उनके संस्कारके अतिरिक्त अन्य सब संस्कार त्यागकर उनमें तन्मयता लाभ करेंगे——सर्वत्र उनका दर्शन, ध्यान और उपलब्धिके हेतु जब हम समाहित होंगे तभी हम सत्य-प्रतिष्ठ होंगे।

ब्रह्म द्वारा अथवा ब्रह्ममें जीव-जगत् सृष्ट, परिणत अथवा विवर्तित है। सत्य ही यहाँ नित्य तत्त्व है, जीव-जगत् उसका नामरूप है। रज्जु सत्य है, नामरूप उसमें विवर्तित या कल्पित सर्प है। सिन्धु सत्य है, उसमें विकल्पित तरंग नामरूप है। सुवर्ण सत्य है, उसमें कल्पित कंगन आदि जेवर नामरूप हैं। अमृतरूप सत्य है, उसमें कल्पित जन्ममृत्यु आदि विकार नामरूप हैं। यह नाम-रूप सत्यको छोड़कर नहीं रह सकते——सत्य इस नामरूपके भीतरका परम तत्त्व हैं। कल्पित सर्प वास्तवमें रज्जु ही है। शास्त्र अथवा गुरुके वाक्यमें विश्वास करके, साहस करके, इस सर्पको पकड़ लो, तो देखोगे कि रज्जु ही हाथमें आई। माँ-बाप, पति-पत्नी; लड़का-लड़की, शत्रु-मित्र, पत्र-पुष्प-फलादि अनित्य नाम-रूपोंमें वे ही परम सारतत्त्व तुम्हारे परमात्मा रहते हैं। परमात्मबुद्धिसे इनका दर्शन करो, सेवा करो——तुम्हारा जीवन सार्थक होगा और सब पदार्थोंके भीतर तुम उनका दर्शन तथा स्पर्श लाभ करोगे। जीव-जगत् तुम्हारे श्रीभगवानकी देह है——सबके भीतर उनका दर्शन और ध्यान तुम्हारी साधना होनी चाहिए। "यो मां पश्यति सर्वत्र", "वासुदेवः सर्वमिति", प्रभृति वाक्य इसी भावके साक्षी हैं। सभी रूपों; सभी नामों और सभी भावोंके भीतर भगवदुपलब्धि करनेकी चेष्टा करो। प्रथमतः उनके अस्तित्वमें विश्वास करो—विश्वास करो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि वे हैं, अनुभव करो कि वे सत्य हैं। इसके बाद सब पदार्थों को देखकर कहो— "हे ठाकुर, तुम जब सर्वव्यापी हो तो तुम निश्चय इनके भीतर भी हो, दया करके एक बार तुम इनके भीतरसे मुझे दर्शन दो, फिर मैं तुमको दिक् नहीं करूँगा, तुमको नमस्कार।" सब वृत्तियोंमें मनके सभी भावोंमें उनको खोजो। जो रूप, जो नाम, जो भाव तुम्हें अच्छा लगता हो उसीके भीतर से उनको प्रकट करनेकी चेष्टा करो। शयनके समय बिछौनेपर उनका ध्यान करते-करते माँकी गोदमें समाहित होनेकी चेष्टा करो। प्रतिदिन अधीर मनसे उनको बुलाओ, उनको देखनेकी चेष्टा करो। चित्त शुद्ध और शान्त हो जानेपर सर्वत्र उनका दर्शन लाभ करके जीवन सफल होगा। तब छोटे लड़के-लड़कियोंको देखकर बालगोपाल-कुमारीभगवती, माँ-बापके भीतर अन्नपूर्णा-विश्वनाथ, पति-पत्नीके भीतर कृष्ण-राधा, शिव-दुर्गा अथवा राम-सीता और सब जीवोंके भीतर शिव-का दर्शन, ध्यान और सेवा स्वाभाविक हो जायँगे। तब जगत् स्वर्गराज्यमें परिणत होगा- तुम सत्य-प्रतिष्ठ होंगे, असत्य तुम्हारे निकटसे दूर भाग जावेगा। अंगन्यास क्रिया इस उपलब्धिमें सहायक है।

प्राण-प्रतिष्ठा—प्राण-प्रतिष्ठाका अर्थ है प्राणमें स्थिति लाभ करना अर्थात् सर्वत्र प्राणशक्तिकी लीला दर्शनकर प्राणशक्तिकी अनुभूतिमें प्रतिष्ठित होना। प्राण परब्रह्म है—प्राण भगवानकी वह शक्ति है जिसके द्वारा अथवा जिसमें जीव-जगत् सृष्ट, परिणत अथवा विवर्त्तित है। जीव और जगत् इसी महाप्राणकी घनीभूत मूर्त्ति हैं। हमारा व्यष्टि प्राण इसी समष्टिगत महाप्राणका अंश है, इसी प्राणसागरकी लहर है। वे ही एक बिन्दु रक्तके भीतर अवस्थित हुए, हमारी देहको पुष्ट, परिणत तथा कार्यक्षमकर, हमारे भीतर बैठे सब कार्य सुसम्पन्न कर रहे हैं। हमारी देह की परिणति, मनकी वृत्ति—सब उसी प्राण-के खेल हैं। जगत्के समस्त क्रिया-व्यापारके भीतर हम प्राणशक्तिकी लीला-का दर्शनकर, अहंकारके हाथसे मुक्ति लाभकर, सर्वत्र भगवल्लीला दर्शनकी योग्यता लाभ करते हैं। तब यह नहीं कह सकते कि 'मैं काय करता हूँ।' तब कहा जायेगा कि 'सब कार्य मेरे द्वारा कारित हो रहे हैं।' करन्यास क्रिया प्राण-प्रतिष्ठामें सहायक है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकृत साधक अपने देखने, सुनने, काम करने, जानने और आनन्द अनुभव करने आदि क्रियाओंको यथाक्रम भगवद्दत्त चक्षु, कर्ण, हस्त, बुद्धि और चित्तादिके द्वारा भगवच्छक्तिके प्रकाशरूपमें ग्रहण करनेको बाध्य है। उसको सब प्रकारके करने-न-करनेके भीतर भगवल्लीला दर्शनकी योग्यता प्राप्त हो गई है। वृथाकर्तृ-त्वाभिमान उसके मनमें स्थान नहीं पाता। प्राण क्रियात्मक है—उसकी सभी क्रियाओं ने अहंकारमें प्रतिष्ठित न होकर भगवानकी चिच्छक्तिमें प्रतिष्ठा लाभ करा ली हैं।

आनन्द-प्रतिष्ठा—जगत्की सृष्टि-स्थिति-लय क्रिया आनन्दसे साधित होती है। हमारा आनन्द ब्रह्मानन्दका ही अंशमात्र है। यही ब्रह्मानन्द हमारे अन्तःकरण और वहिःकरणमेंसे आते समय इनके रङ्गसे रञ्जित होकर विषयानन्दरूपमें अनुभूत होता है। समस्त आनन्द ब्रह्मानन्दकी ही विभूति है। इस विकृत आनन्दमेंसे कामना-वासनादि विकृति दूर कर देनेसे ही यह ब्रह्मानन्दमें पर्यवसित हो जाता है। शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुरादि सम्बन्धोंको—इन सब सम्बन्ध जनित आनन्दोंको—आसक्ति, संस्कार और स्वार्थकी दुर्गन्धसे मुक्त करके, शुद्ध करके, पूर्णतापर पहुँचा देनेसे यह स्वर्गीय शान्त-दास्यादि भावोंमें पर्यवसित हो जायँगे। तभी समझमें आयेगा कि अखिल आनन्द ब्रह्मानन्दका ही विचित्र स्फुरणमात्र है। सृष्टिकी लीलाके मूलमें आत्मप्रकाशकी, आनन्द-स्फुरणकी, इच्छा है। उसी आनन्दमें सब प्रतिष्ठित हैं। हम सभी प्रकारके आनन्दमें ब्रह्मानन्द अनुभकर तथा उस आनन्दको ब्रह्मानन्दमें पर्यवसितकर सर्वत्र आनन्दकी लीला दर्शन करते-करते उस आनन्दमें प्रतिष्ठित हो जायँगे। व्यापकन्यास क्रिया आनन्द-प्रतिष्ठामें सहायक है।

मैं भगवान्में प्रतिष्ठित हूँ, उनकी शक्ति द्वारा परिचालित हूँ, वे ही मेरे समस्त सुख, शान्ति और आनन्दके प्रस्रवण हैं। मेरी स्थिति, क्रिया और आनन्दके हेतु भगवान् ही हैं। मुझको जीवित रखे बिना, ठीक पथपर चलाये बिना, पूर्णा-नन्दमें विभोर तथा समाहित किये बिना मेरे भगवान् रह नहीं सकते, वे विश्राम नहीं लेंगे—यह अनुभूति जागरित करना सत्यादि प्रतिष्ठाका प्रधान लक्ष्य है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूजाके अंगविभाग

पूजा सिद्ध और साधक अवस्थाके भेदसे प्रधानतः द्विविध है। सिद्ध अवस्थाकी पूजा है भगवद्भावमें विभोर रहते हुए भगवल्लीलामें सहायक होना। साधक अवस्थाकी पूजा सिद्धावस्था प्राप्त करनेके लिए है। इसी पूजाका विषय यहाँ आलोच्य है।

भगवान्में प्रीति एवं उनका प्रियकार्य करना ही उनकी पूजा है। जिससे हम प्रीति करते हैं अज्ञातरूपसे उसके अनुकूल हो जाते हैं; उसके भावसे भावित हो जाते हैं, उसका प्रियकार्य करनेके लिए बाध्य हो जाते हैं। अतएव वास्तविक प्रीति होनेसे ही उसका प्रियकार्य करना हो जाता है। हमारी प्रचलित पूजामें प्रीतिकी ओर विशेष लक्ष्य है। यह पूजा साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है—(१) शुद्धि (२) ध्यान (३) उपलब्धि। संकल्प, स्वस्तिवाचन, जलशुद्धि, आसनशुद्धि, भूतापसारण, भूतशुद्धि—ये सब 'शुद्धितत्त्व' के अन्तर्गत हैं। 'ध्यानतत्त्व' साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है—धामतत्त्व, स्वरूपतत्व और भगवतत्त्व। 'उपलब्धि' के अन्तर्गत न्यास, उपचार-समर्पण, पञ्चदेवता, गुरु तथा इष्टकी पूजा, जप, आत्मनिवेदन, हवन और विसर्जन क्रियाएँ हैं। पूजाके श्लोकोंमें इन तत्वोंकी ओर यथासम्भव दृष्टि रखी गई है एवं इन तत्वोंको वर्त्तमान देश-काल-पात्रानुसार सबके ग्रहणयोग्य बनानेकी चेष्टा की गई है। इसके उपरान्त सब सम्प्रदायोंकी साधनप्रणालीके प्रति लक्ष्य रखते हुए, सब सम्प्रदायों-की साधनप्रणालीके सार अंशमें कैसा सुन्दर सादृश्य है इसका भी आभास दिया गया है। एक व्यवस्थाका नमूना साधारण भावसे देकर साधकगण जिससे अपनी-अपनी रुचि तथा अधिकारानुसार श्लोकविशेषकी सहायतासे एवं अपने-अपने विधानानुसार ध्यान तथा पाद्य-अर्घ्यादि उपचार द्वारा पूजा कर सकें, इस ओर दृष्टि रखी गई है। उपचारसमर्पण तथा ध्यान-जपादिके स्थानमें अपनी-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपनी दीक्षा, शिक्षा और अभिरुचिके अनुसार पूजा करना ही प्रशस्त होगा। नीचे साधारण प्रचलित पूजाके अङ्गों का संक्षिप्त आभास दिया जाता है।

सङ्कल्प—प्रत्येक कार्यमें कोई न कोई उद्देश्य रहता है। साधना इसी उद्देश्यका सहज, सुन्दर तथा स्वाभाविक उपाय है। आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चतुर्विध लोग भगवान्‌का भजन करते हैं। इनमें प्रथम तीनका उद्देश्य सहज ही समझमें आ जाता है। जबतक कोई अभावका बोध है तबतक अभावपूरणकी प्रवृत्ति भी स्वाभाविक है। यदि कुछ प्रार्थना करना हो तो भगवान्‌से ही करना विधेय है। किसी भी भक्तको तुच्छ मानना उचित नहीं। हम मानें या न मानें किन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हमारे भीतरसे कामना-वासना, सुख-स्पृहा, प्रतिष्ठा-मोह, आदि बिलकुल जाते नहीं फिर भी कामना त्याग करनेकी चेष्टा करनी पड़ेगी। निष्काम भक्त अपने प्राणारामसे कुछ भी प्रार्थना नहीं करता। बिना माँगे उसको जो कुछ मिला है उसीसे उसका चित्त कृतज्ञतासे बिक गया है। तो भी उसकी एक कामना हो सकती है—वह यह कि 'हे ठाकुर, तुम्हारे प्रति मेरी अचला अहैतुकी अव्यभिचारिणी भक्ति सदा बनी रहे, मेरे जीवनमें तुम्हारी इच्छा पूर्ण सफलता लाभ करे।' प्रार्थनाके भीतर यही तत्त्व निहित है। संकल्पके भीतर भी एक प्रार्थनाका भाव रहता है अर्थात् जिस हेतु मैंने यह अनुष्ठान किया है वह उद्देश्य सफल हो।

स्वस्तिवाचन—स्वस्तिवाचन शान्तिके लिए प्रार्थना है; शान्ति केवल अपनी नहीं, सर्वभूतकी। यह शान्तिलाभ हमारे अहंकारपर निर्भर नहीं करता—यह निर्भर करता है सर्वोपरि श्रीभगवानपर अथवा उनके विभूतिरूप देवताओंपर। इसलिए स्वस्तिवाचनमें श्रीभगवानके निकट—इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओंके निकट अथवा हमारे सब तत्त्वोंमें अधिष्ठित ब्रह्मचैतन्यके निकट—शान्ति तथा अभीष्ट कर्मकी सफलताके लिए प्रार्थना की जाती है। हम सब जीवोंके कृतज्ञ हैं, सबके ऋणी हैं। सबको तृप्त करके इस ऋणसे मुक्ति लाभ किये बिना हमारी भगवत्-प्राप्तिकी सम्भावना कम है। कृतज्ञता-प्रकाशमें यह तत्त्व देखनेमें आयेगा। स्वस्ति = सु-अस्ति, मंगल हो, मंगल आये। सबको तृप्त कर देनेसे सबके मुखसे निकलेगा 'अयमारम्भः शुभाय भवतु'—इस अनुष्ठान-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

से सबका कल्याण हो। माँ तो सबकी माँ हैं, सब मिलकर न बुलाएँ तो वे कैसे आयेंगी।

भूतापसारण—पंचभूत एवं पंचभूतसे बना हुआ जीव-जगत् अनेक समय साधन-भजनमें बाधा देते हैं। इस बाधासे मुक्ति लाभ करनेके लिए सब भूतोंके निकट, सर्वोपरि भूतनाथके निकट, कृपा-प्रार्थनाकी व्यवस्था है।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकारिणः ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

अर्थात् पृथ्वीस्थ विघ्नकारी सब भूत शिवकी आज्ञासे विनाशको प्राप्त हों। यहाँ अनेक लोग 'नश्यन्तु' (विनाशको प्राप्त हों) की जगह 'शुध्यन्तु' (शुद्ध हो जाएँ) पाठ करते हैं। शत्रुके भीतरकी अनिष्टकारी वृत्ति दूर होकर शत्रु मित्रभावापन्न हो जाय, किसीको मैं शत्रुभावमें न देखूँ—यह भाव ज्यादा सुन्दर है।

उपकरण-शुद्धि—पूजाके लिए अपनी देह तथा चित्तकी शुद्धि आवश्यक है एवं पूजाके उपकरण जो भगवानको निवेदन किये जायँगे, जो प्रसादरूपमें भगवत्-जीवको प्रदान किये जायँगे, उनकी शुद्धि सम्पादन भी आवश्यक है। उपकरण पुष्प-भोज्यादि अक्षत आदि विशुद्ध हैं या नहीं, यह परीक्षा करके देख लेना चाहिए और भगवानके नाम-स्मरणसे शुद्ध करके लगाना चाहिए। देह तथा चित्त-शुद्धिके विषयमें पहले ही बता दिया गया है।

गुरुकी पूजा—ध्यान और उपचार समर्पण द्वारा गुरुदेवकी पूजाकी व्यवस्था है। वास्तवमें गुरुके गुणकर्मके चिन्तनसे गुरुतत्त्वमें समाहित होकर स्वयं गुरु-भावापन्न हो जाना, अपनेको गुरुके सब गुणोंसे विभूषित करना, गुरुपूजाका उद्देश्य है। अपने-अपने सम्प्रदाय-विहित प्रणालीके अनुसार गुरुदेवकी पूजा करना ही विधेय है किन्तु मूल उद्देश्यकी तरफ विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। स्मरण रखना होगा कि गुरु भगवानकी चिद्‌विभूति हैं। गुरुके भीतरसे ही चिच्छक्ति तथा उसके कार्यकलापकी उपलब्धि करनी होगी। भगवानकी चिच्छक्ति किस प्रकार गुरुके भीतर आविर्भूत होकर मेरे भीतरकी सुप्त चिच्छक्तिको जाग-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

रितकरके मुझे चित्-स्वरूपमें प्रतिष्ठित करनेमें सचेष्ट हैं, इसको उपलब्धकर स्वयं चित्-स्वरूपमें परिणत हो जानेकी चेष्टा करना ही गुरु-पूजा है।

पंचदेवताकी पूजा—विभिन्न तत्त्वोंमें भगवत्-चैतन्यके विभिन्न भावके प्रकाशका नाम 'देवता' है। हमारे भगवान—हमारे इष्ट—हमारे पंचतत्त्वमें, हमारे पंचकोशमें, किस प्रकार प्रकाशित होकर तथा प्रकाशित रहते हुए हमारे कल्याण और शान्तिकी व्यवस्था कर रहे हैं अर्थात् हमारा जीवन सार्थक कर रहे हैं, इसको उपलब्धकर इसमें सहायक होना पंचदेवताकी पूजाका मुख्य उद्देश्य है। हमारे इष्ट हमारे मूलाधारमें अवस्थित हुए कैसे और क्या कार्य कर रहे हैं, यह उपलब्धि गणेशपूजा द्वारा अनुभव की जा सकती है। हमारे इष्ट किस प्रकार मणिपुरमें अवस्थित रहकर हमारे जीवनधारणमें, हमारे शान्तिलाभमें, सहायक हैं—यह तत्त्व हम सूर्यपूजा द्वारा जान सकते है। इसी प्रकार अनाहतमें विष्णु-तत्त्वकी; विशुद्धाख्यमें शिवतत्त्वको, आज्ञा-चक्रमें शक्तितत्त्वकी, सहस्रारमें इष्ट-तत्त्वकी अवस्थिति तथा कार्यप्रणाली अवगत हो जाती है। साधकगण अपने-अपने इष्टतत्त्वकी सहस्रारमें स्थापितकर, अन्य चक्रोंमें पंचदेवतादिकी स्थिति और कार्यप्रणाली अनुभव करनेकी चेष्टा करते हैं। इसलिए किस तत्त्वमें कौन देवता अवस्थित हैं, इस विषयमें मतभेद पाया जाता है। साधक अपनी-अपनी अभि-रुचिके अनुसार पंचदेवताकी पूजा करें।

इष्टकी पूजा—अपनी-अपनी अभिरुच्यानुसार इष्टदेवका ध्यान व पूजा, स्थूलमें पाद्य-अर्घ्यादि उपचार द्वारा एवं सूक्ष्ममें मानसिक उपचार द्वारा, करना विधेय है। कहना अनावश्यक होगा कि हमारे समस्त पूजाके तत्त्वोंमें इष्टकी पूजाका माहात्म्य प्रकट करनेकी चेष्टा की गई है।

'बोधन'—शब्दका अर्थ है प्रबुद्ध करना, जगाकर उठा देना। भगवान तो चिर-जागरित हैं, उनको जागरित करनेकी क्या आवश्यकता है। जागरित होना होगा साधकको स्वयं। जैसे अपनी आँखें बन्द कर लेनेसे सब अन्धकार मालूम होता है, ठीक इसी प्रकार हम स्वयं निद्रित होनेके कारण सबको एवं भगवान-को भी निद्रित समझते हैं। अपने देहकी जड़ता एवं चित्तकी अज्ञानता और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

संस्कार दूर करके अपने भीतरके सब तत्त्वोंको भगवदनुभूतिके योग्य कर देना प्रकृत 'बोधनतत्त्व' है। तब अनुभव होगा कि भगवान हैं, वे जाग्रत् हैं, जीवके कल्याणमें तत्पर हैं—यही 'बोधन-तत्त्व' हैं।

'प्राणप्रतिष्ठा'—शब्दका अर्थ है उपास्य मूर्तिको, अपने इष्टको, केवल मिट्टीकी मूर्ति या कागजका चित्र न समझकर उसमें भगवत्तत्त्वके ध्यान द्वारा उसको जीवन्त रूप देना। अनुभव करना होगा कि वे जीवन्त सत्यस्वरूप हमारे सामनें उपस्थित हैं, हमारे सब कार्य देख रहे हैं, हमारे मनके सब भाव जान रहे हैं, हमारे भीतर और बाहर स्थित हुए सब कार्य चला रहे हैं। इष्टमंत्र, मंत्रका अर्थ और मंत्रके चैतन्यके एकीकरण द्वारा इष्टकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी होगी।

मंत्रचैतन्यके फलस्वरूप अनुभव होगा कि मेरे इष्ट मानो एक महती प्राण-शक्ति हैं जिनके द्वारा जगच्चक्र अति सुन्दररूपसे परिचालित हो रहा है। (इस प्रसंगमें मंत्रतत्त्व द्रष्टव्य है)। प्राणप्रतिष्ठाके समय अपने भीतरके चैतन्यको जागरित करके, अनुभव करके, उस चैतन्यको इष्टके भीतर आरोप करके, अनुभव करके; इष्टको ब्रह्मस्वरूप चिन्तन करना होगा, अनुभव करना होगा।

'आवाहन' शब्दका अर्थ है बुलाकर ले आना। जो सर्वव्यापी हैं उनको बुलाना कैसा? उनको बुलानेके माने हैं उनका सामीप्य अनुभव करना। अपनेको शुद्ध और शान्त कर भगवत्-कृपाकी सहायतासे सम्मुख इष्टके भीतर भगवत्तत्त्व प्रकटित भावमें दर्शन करना अर्थात् सर्वव्यापी भगवानको मूर्तिमानरूप में अपने इष्टमें प्रत्यक्ष करना—इस योग्यताको लाभ करनेकी प्रार्थनाको 'आवाहन' कहते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

धारणा-ध्यान-समाधि

"अष्टांग योगके अन्तर्गत प्रथम पांच अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार) 'वहिरंग' एवं शेष तीन अंग (धारणा, ध्यान, समाधि) 'अन्तरंग' नामसे प्रसिद्ध हैं। बहिरंग साधना यथार्थरूपसे अनुष्ठित होनेपर ही अन्तरंग साधनाका अधिकार प्राप्त होता है। 'यम' और 'नियम' वस्तुतः शील और तपस्याके द्योतक हैं। 'आसन' देहस्थैर्यकी साधना है, 'प्राणायाम' प्राणस्थैर्यकी साधना है। 'धारणा', 'ध्यान' और 'समाधि' यह तीनों मनःस्थैर्यकी साधनाएँ है। प्राणस्थैर्य और मनःस्थैर्य इन दोनोंकी मध्यवर्ती साधनाका नाम 'प्रत्याहार' है। प्राणायाम द्वारा प्राण अपेक्षाकृत शान्त होनेपर मनका वहिर्मुख भाव स्वभावतः ही कम हो जाता है। इसके फलस्वरूप इन्द्रियाँ अपने-अपने बाह्य विषयोंसे प्रत्याहृत होती हैं अर्थात् मनकी वहिर्मुखी गति निरुद्ध हो जाती है और मन अन्तर्मुख :होकर स्थिर होनेकी चेष्टा करता है। इस स्थिरताकी चेष्टाकी प्रारम्भिक अवस्थाका नाम 'धारणा' है।

'धारणा' से चित्तको किसी विशिष्ट प्रदेशमें आबद्ध करना समझा जाता है। यह प्रदेश साधारणतः देहका कोई विशिष्ट अंग होता है अथवा देहके बाहर कोई स्थान भी हो सकता है। नाभि, हृदय, नासाग्र, भ्रूमध्य, प्रभृति देहके विभिन्न स्थानोंमें चित्तको आवद्ध करनेकी व्यवस्था है। इसीका नाम है 'देशबन्ध या धारणा'। प्रत्याहार अधीन हुए बिना अर्थात् चित्तकी बहिर्मुखगति निरुद्ध हुए बिना यह सम्भव नहीं होता। इसलिए प्रत्याहारके पश्चात् धारणाका उपदेश दिया जाता है। देहके स्थानविशेषमें चित्तकी धारणा सम्पन्न हो जानेके फलस्वरूप कई शक्तियोंका विकास होता है। धारणामें चित्तका एकतान प्रवाह नहीं होता, विच्छिन्न प्रवाह रहता है। अर्थात् विभिन्न वृत्तियोंके मध्यमें एक वृत्तिहीन अवकाशात्मक अवस्था रहती है; इसका कारण विभिन्न वृत्तियोंका आलम्बनगत भेद है। अर्थात् जिस विषयमें प्रथम वृत्तिका उदय होता है द्वितीय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृत्ति यदि उससे भिन्न विषयमें उदय हो तो दोनों वृत्तियोंके बीचमें एक शून्यावस्था होती है—यह विक्षिप्त चित्तका लक्षण है। किन्तु अभ्यासके फलस्वरूप चित्तमें बलाधानके साथ-साथ चित्त पुनः-पुनः अपने अभीष्ट आलम्बनमें ही निबद्ध रहता है। यद्यपि सब वृत्तियां उदय-अस्तशील एवं भिन्न-भिन्न हैं तथापि विभिन्न वृत्तियोंका आलम्बन एक ही विषय हो जाता है, भिन्न विषय नहीं। इसीका नाम 'एकतान-अवस्था अथवा 'सदृशप्रत्यय-प्रवाह' है। 'ध्यान' इसीका नामान्तर है। धारणावस्थामें चित्तके वृत्ति-प्रवाहमें जो विच्छिन्नता थी वह ध्यानावस्थामें नहीं रहती। यद्यपि धारणा और ध्यान दोनों ही अवस्थाओंमें वृत्तिका प्रवाह रहता है तथापि धारणामें यह प्रवाह विसदृश वृत्तिका होता था किन्तु ध्यानमें सदृश वृत्तिका—यही भेद है।

विदेह धारणा दो प्रकारकी है—एक साधारण विदेह, दूसरी महाविदेह। साधारण विदेहावस्थामें देहके बहिःस्थित किसी वस्तुमें चित्तकी धारणा होती है। इस धारणाकालमें चित्तकी वृत्ति उस वस्तुको विषयीभूत करती है किन्तु चित्त देहाश्रय यथास्थानमें ही संलग्न रहता है। चित्त देह त्याग करके बहिर्गत नहीं होता। योगका उत्कर्ष लाभ किये बिना चित्तका देहके बाहर निर्गम संभव नहीं होता किन्तु वृत्ति बहिर्गत हो सकती है। जगत्‌का जो कोई पदार्थ चिन्ताका विषय होता है, चित्तकी वृत्ति उसे स्पर्श करती है एवं उसके साथ सम्बंध करती है किन्तु चित्त देह त्याग नहीं करता। वृत्ति अपना काम करके यथास्थान वापिस आ जाती है। किन्तु महाविदेह धारणामें ऐसा नहीं होता। इस अवस्थामें केवल वृत्ति ही बाह्य वस्तुको अवलम्बन नहीं करती वरन् चित्त भी देह त्यागकर उक्त वस्तुमें प्रवेश करता है। कहना अनावश्यक होगाकि चित्त देहत्याग करनेपर भी सम्पूर्णतः त्याग नहीं करता, किंचित् आभास देहमें रह जाता है। यदि ऐसा न हो तो चित्तका देहमें प्रत्यावर्त्तन असम्भव होगा। परकायामें प्रवेश करते समय यह अकल्पित (स्वाभाविक) महाविदेह धारणा अवलम्बन करना आवश्यक होता है। साधारणतः दूरदर्शनादि कार्यसाधनके लिए साधारण विदेह धारणा ही पर्याप्त है। साधारण विदेह धारणामें अपना साक्षीभाव वर्तमान रहता है, बाह्य वस्तुके ऊपर अभिमान नहीं होता किन्तु महाविदेहमें चित्त देहसे निर्गत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

होकर इष्टस्थानमें प्रविष्ट होनेके कारण उक्त अभिमान सम्भवपर है। दोनों धारणाओंके फलोंमें भी इसीलिए पार्थक्य दृष्ट होता है।

ध्यानकी परिपक्वावस्थाका नाम ही 'समाधि' है। तब चित्त आलम्बनके आकार में प्रतिभासमान होता है। अपना स्वरूप शून्यवत् हो जाता है। आलम्बन ही एकमात्र प्रकाशित होता है। इसके अनेक अवान्तर भेद और वैचित्र्य हैं जिनका उल्लेख यहां निष्प्रयोजन है।"

धारणा और ध्यान तत्त्वोंके संबंधमें ऋषिवाक्योंके प्रमाणपर ऊपर आलोचना की गई है। अब साधकोंकी अपनी-अपनी उपलब्धिके संबंधमें दो-एक बातें बताई जाती हैं।

सद्गुरु-लाभके पश्चात् गुरु शिष्यको उसके देहके सब यंत्रोंका, सब तत्त्वोंका और प्रत्येक तत्त्वमें शक्तिके क्रियाकलापका सामान्य आभास देकर उसको तत्त्वविशेषमें या चक्रविशेषमें मन स्थिर करनेका आदेश करते हैं। इस प्रकार विभिन्न तत्त्वोंमें मन स्थिर करनेपर देहके भीतर शक्तिका खेल उपलब्ध करनेका सुयोग मिलता है।

देहके विभिन्न चक्रोंमें, विभिन्न तत्त्वोंमें, विभिन्न भाव अवलम्बन करनेसे देहमें क्या कार्य साधित हो जाता है, इसके अनुचिन्तनसे 'धारणा-तत्त्व' साधित होता है। जब यह अनुभवमें आने लगता है कि विभिन्न धारणाओंमें एक ही उद्देश्य साधित हो रहा है और विभिन्न कार्यकलाप द्वारा हमको जीवित रखनेके लिए—हमारी पूर्ण परिणति-लाभके लिए—सब कार्य एक ही उद्देश्यसे साधित हो रहे हैं तब इसके अनुचिन्तनसे हम एक तैलधारावत् अविच्छिन्न एकतान वृत्ति लक्ष्य करनेके सुयोग पाते हैं। इस सम्बन्धमें रामानुजने कहा है—"ध्यानन्तु तैलधारावद् अविच्छिन्नस्मृतिसन्तानरूपा ध्रुवानुस्मृतिः'। यह एकतानता हमको ध्यान द्वारा समाधिकी ओर ले जाती है। अपने भीतर इस प्रकार ध्यान साधित हो जानेपर, हम पृथिवीके सब पदार्थोंके भीतर एकतानता लक्ष्य करनेका सुयोग पाते हैं। तब भीतर और बाहर भगवदिच्छा लक्ष्यकर हमारा चित्त भगवानमें समाहित हो जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस अवस्थामें हम जिस किसी विषयमें भी मन स्थिर करें तो वहाँके गुप्त तत्त्व और कार्य हमारे निकट प्रकट होने लगते हैं। मन जहाँ न्यस्त होता है प्राण भी वहाँ स्वाभाविकरूपसे जानेकी चेष्टा करता है। मन और प्राण ऐक्य हो जानेसे वहाँके अनेक गूढ़रहस्य प्रकाशित होने लगते हैं। याद रखना चाहिए कि 'नाद' शब्दात्मक है और 'बिन्दु' प्रकाशात्मक। बिन्दुमें, चक्रविशेषमें, मन स्थिर होनेपर वहाँकी ज्योति स्वतः अनुभवमें आने लगती है। तब वहाँ बैठकर हमारे श्रीभगवान अर्थात् उनकी शक्ति क्या-क्या कर रही हैं, यह दर्शनकर साधक अभिभूत हो जाता है। नाभिचक्रमें मन स्थिर करनेसे वहाँके बिन्दुकी ज्योतिके प्रभावसे दृष्ट होता है कि प्राणवायु किस प्रकार भुक्त द्रव्यको रसमें परिणत कर रही है, अपानवायु किस प्रकार असार पदार्थको अपसारित करनेकी चेष्टा करती है, व्यानवायु किस प्रकार रक्तको शरीरमें सर्वत्र फैला देती है, समानवायु किस प्रकार जहाँ जितने रक्तका प्रयोजन है उसकी व्यवस्था करती है और उदानवायु किस प्रकार हमारे देहकी पुष्टि एवं परिणति साधित करती है—ये सब तत्त्व उपलब्धि में आने लगते हैं। तब हम प्राणवायुका क्रियाकलाप देखकर मोहित हो जाते हैं।

फिर देखिये कि हमारे रक्तके सहित अनेक दूषित पदार्थ (carbon) आकर हृदयमें जमा होते हैं। अनाहतचक्रमें मन स्थिर करनेसे वहाँके बिन्दुकी ज्योतिके अभावसे दृष्ट होता है कि यह दूषित पदार्थ दूर करनेके लिए, किस प्रकार श्वास-प्रश्वासकी सहायतासे, अम्लजन वायु (oxygen) हृदयमें जाकर उसको वायवीय आकार (corbon dioxide) में परिणत कर प्रश्वासके द्वारा बाहर कर देती है—इन सब रहस्योंको उपलब्धकर साधक अनेक समय मुग्ध हो जाता है।

किसी भी निर्दिष्ट चक्रमें, निर्दिष्ट तत्त्वमें, मनकी धारणाके फलस्वरूप वहाँके समस्त क्रिया-व्यापार साधकको दृष्टिगोचर होते हैं। तब यह देखकर कि माँ आद्याशक्ति हमको जीवित करनेके लिए एवं पूर्ण परिणत दान करनेके लिए किस प्रकार सचेष्ट हैं, साधक विमुग्ध हो जाता है। तब जिस तत्त्वमें मन स्थिर होता है तो वहीं एक प्रकाशात्मक ज्योति अनुभवमें आने लगती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

विभिन्न तत्वोंमें, विभिन्न केन्द्रोंमें, मन स्थिर करनेके फलस्वरूप साधक अपना अन्तर्निहित ज्योतिर्मय सूक्ष्म देह और उसका क्रिया-व्यापार अनुभव करने लगता है। व्यष्टि भावमें यह धारणा साधित हो जानेपर समष्टि भावमें भीतरकी देह मानो चैतन्यरूपमें प्रकाशित होने लगती है। उस समय साधकका चित्त आनन्द-में ऐसा मोहित हो जाता है कि चित्तका प्रवाह एकाकार लाभकर अन्तर्निहित ज्योतिर्मय देहमें समाहित हो जाता है। इस अवस्थामें जिस पदार्थमें भी चित्त स्थिर किया जाय तो उसी पदार्थका अन्तर्निहित ज्योतिर्मय सूक्ष्मरूप प्रकाशित होने लगता है। इसके फलस्वरूप इष्टका ध्यान सहज और स्वाभाविक हो जाता है।

हमारी प्रचलित पूजामें ध्यानकी जो व्यवस्था है उसमें भी पहले अपने भीतर भगवानका ध्यान करना होता है। तब अपनी व्यष्टि देहमें जो ज्योतिमय स्वरूप प्रकट होता है, सम्मुखस्थ समष्टि रूप इष्ट-विग्रहके भीतर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा और बोधन करनेके फलस्वरूप इष्टमूर्ति भी ज्योतिर्मय रूपमें आत्म-प्रकाश करती है। उन्नत साधकके निकट इष्टका यह ज्योतिर्मयरूप इस प्रकार आत्मप्रकाश करता है कि साधकको अन्य कुछ देखनेका अथवा चिन्तन करनेका अवसर नहीं होता।

जड़ पदार्थ अन्योन्य-व्यवच्छेदक हैं। इनके अवलम्बनसे एकतानता आना असम्भव है। जब हमारा चित्त जड़भूमि छोड़कर चिन्मय जगत्में प्रवेश करता है तब चित्-शक्तिमें सर्वत्र अनुप्रवेश करनेका सामर्थ्य रहनेके कारण एकतानता का भ.व स्वभावतया ही आ जाता है। इसलिए ज्योतिर्मय स्वरूपका आभास भीतर पाये बिना धारणा यथार्थरूपसे ध्यानमें परिणत नहीं हो सकती। जब भीतरका चिन्मय स्वरूप प्रकाशित होता है तब धारणा खण्ड भाव परित्याग कर अखंड एकतानताकी तरफ चल पड़ती है

धारणा विभिन्न देहोंके अथवा देहके विभिन्न केन्द्रोंके अवलम्बन द्वारा साधित होती है। जब देहस्थ केन्द्रोंमें ज्योति स्फुरित होकर आत्मप्रकाश करती है तब चित्त ज्योतिःप्रवाहका दर्शनकर उसमें निमज्जित हो जानेके कारण धारणा ध्यानमें पर्यवसित हो जाती है। व्यष्टि देहके विशेष-विशेष अवयवोंमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
चित्त स्थिर करनेका नाम 'धारणा' है और समष्टि देहके समस्त तत्त्वोंका निरन्तर मिलित भावमें चिन्तन और उपलब्धिका नाम 'ध्यान' है।

किसी महापुरुष, अवतार या इष्टके व्यष्टिगत अवयव अथवा उनके गुण-विशेषकी धारणाके फलस्वरूप उन विषयोंमें एक इस प्रकारकी अनुभूति प्रस्फुटित होती है कि साधक उसमें धीरे-धीरे तन्मयता लाभ करने लगता है। इस प्रकारकी धारणाके फलस्वरूप साधक, लोहचुम्बक-संसर्गकी भाँति, ऐसा इष्ट-भावापन्न हो जाता है कि इष्ट भिन्न अन्य किसी विषयका चिन्तन करना अथवा इष्टकी इच्छापूर्तिके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य करना उसके लिए साध्य नहीं रहता। ध्येय पदार्थका ध्यान करते-करते साधकका चिन्ता-प्रवाह धीरे-धीरे एकतानताको प्राप्त हो जाता है।

अनेक साधक इष्टकी पूजा-जपादि समापनकर, प्रणव उच्चारणके साथ मन व प्राणको सहस्रारमें ले जाकर और बीजमंत्रके चिन्तन द्वारा इष्टकी स्वरूपोपलब्धिकर, मन और प्राणको सहस्रारसे नीचे सब तत्त्वोंमें लाकर अपनेको इष्टमयकर लेते हैं। तब अपने सब तत्त्वोंमें इष्टके सब तत्त्व मिल जानेके कारण अपनेको इष्टमय देखते हैं। स्वयं इष्टमय होकर फिर जगत्के जिस पदार्थमें भी वे चित्त सन्निवेशित करते है तो वही पदार्थ इष्टमय अनुभूत होता है। इस प्रकार इष्टको अपने प्रत्येक तत्त्वमें और जगत्के प्रत्येक तत्त्वमें चिन्मयरूपमें अनुभवकर, साधक आनन्दसमाधिमें निमग्न हो जाता है।

वैष्णव साधकगण भगवद्धामके, भगवत्-परिकरगणके, भगवत्-स्वरूप शक्तिके, भगवानकी अष्टकालीय लीलातत्त्वके चिन्तनके फलस्वरूप इष्ट तत्त्वमें, इष्टके लीलास्वादनमें, ऐसे निमग्न हो जाते हैं कि अन्य सब चिन्ता-भावना, यहाँ तक कि देह-गेहकी स्मृति भी, लुप्त हो जाती है और वे ध्येय तत्त्वमें पूर्णतः समाहित हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप देहान्तपर तथा देहमें स्थित रहते हुए भी ब्रजवास अर्थात् भगवल्लीलास्वादनके अतिरिक्त अन्य सब वृत्तियोंकी स्मृति उनके चित्तसे अपसारित हो जाती है। ध्यानके फलस्वरूप साधकका चित्त क्रमशः सूक्ष्म और कारण भेदकर चिन्मय स्वरूप-दर्शनकी योग्यता लाभ करता है। तब

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपने भीतर और इष्ट के भीतर चिन्मय स्वरूपका प्रकाश देखकर चित्त एक अखंड चिदानन्दस्वरूपमें निमग्न हो जाता है।

धारणा और ध्यानके लिए 'एकाग्रता' आवश्यक है। 'एक' को सर्वदा 'अग्र'—आँखोंके और मनके सम्मुख—रखना होगा। 'एक' सबके भीतर अनुप्रविष्ट तथा अनुस्यूत भावमें हैं। वे सबके भीतरसे आत्मप्रकाश करनेमें और प्रस्फुटित होनेमें व्यस्त हैं। सबके भीतर उसी 'एक' की तरफ लक्ष्य रखनेसे चित्त स्वतः एकाग्र हो जाता है। प्राचीन ऋषि सब पदार्थोंमें उसी 'एक' को खोजते थे, उसी 'एक' को बुलाते थे। फलतः वे उसी 'एक' का दर्शन लाभकर सहज ही स्वाभाविकरूपसे एकाग्र हो जाते थे। वे ही 'एक' अपने और सबोंके भीतर बैठे क्या कर रहे हैं—यह अनुभूति लाभ करना उनके लिए ध्यानका प्रधान विषय था।

सुना जाता है कि अनेक साधक निर्गुण तत्त्वका ध्यान करते हैं किन्तु इसके भीतर भी एक सगुण भाव देखनेमें आता है। स्थूलरूप जैसे एक द्रव्यविशेषका आकारादि स्थूल गुण है; उसी प्रकार दया, प्रेम, इत्यादि भी मानसिक सूक्ष्म भावके गुण हैं। जो मनके अतीत हैं उनको स्थूलमें सीमाबद्ध करना जैसी भूल है, सूक्ष्म विशेषण द्वारा उनको सीमाबद्ध करना भी तद्रूप भूल है। अनेक लोग प्रकृतिकी सहायतासे भगवानका ध्यान करते हैं। पुष्पादिका सौन्दर्य उनके चित्तमें परम सुन्दरकी स्मृति जगा देता है। मित्रकी प्रीति, माँका वात्सल्य, स्त्रीका प्रेम उनको परम प्रेममयकी याद दिलाता है। कोई-कोई 'प्रकृतिके भीतर एक अचिन्त्य शक्ति किस प्रकार कार्य कर रही है' इसको अवलम्बन कर परम शक्तिमानको ध्यान द्वारा उपलब्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। इनमें अनेक यह अवलम्बनकर कि वह महती शक्ति हमारे भीतर स्थित हुई किस प्रकार एक सामान्य परमाणुसे हमारी देहको सुन्दररूपमें तैयारकर हमारी परिणति तथा शान्तिका कारण हो रही है, परम शक्तिमानको उपलब्ध करनेकी चेष्टा करते हैं।

किन्हींके मतानुसार स्थानविशेषमें, तत्त्वविशेषमें, चित्तकी धारणा और ध्यान भगवद्दर्शनमें, तत्त्वसाक्षात्कारमें, सहायक होते हैं। मान लीजिए कि मेरे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सम्मुख एक दीवारमें, एकके ऊपर एक, सात छेद हैं। इनमें सबसे नीचे वाले छेदमेंसे एक पाखना दिखाई देता है, उससे ऊपर वाले छेदोंमेंसे क्रमशः बैठकका कमरा, पहली मंजिलकी छत, दूसरी मंजिलकी छत, तीसरी मंजिलकी छत और उसके ऊपर अवस्थित एक मन्दिर दिखाई देता है। तो मन्दिर देखनेके लिए मुझको सर्वोपरि छेदके ऊपर देखना होगा। अनाहतचक्रमें, कूटस्थमें, सहस्रारमें ध्यान करनेके भीतर भी इसी प्रकारका एक तत्त्व उपलब्ध होता है। यहाँ 'छेद-में' 'कूटस्थमें' तथा अन्य स्थलोंमें सप्तमी (अधिकरण) का व्यवहार आधारमें नहीं किया गया है क्योंकि इस छेदके भीतर मन्दिर अथवा सूक्ष्म चक्रके भीतर इत्यादि मूर्ति या तत्त्व अवस्थित नहीं हैं। इस जगह मन स्थिर करनेसे निर्दिष्ट मन्दिर अथवा तत्त्व देखनेमें आता है। यदि ऐसा न हो तो आज्ञाचक्रके समान सूक्ष्मस्थानमें सर्वव्यापी भगवद्दर्शन असम्भव है। कूटस्थमें मन स्थिरकर ध्यान करते-करते भगवत्तत्त्व उपलब्ध हो जाता है।

वेदान्तका मनन और निदिध्यासन भी ध्यानविशेष हैं। भक्तकी ध्यान-प्रणाली इस प्रकार होनेपर भी उसमें एक विशेषत्व लक्षित होता है। कोई-कोई भक्त अपने गुरु अथवा इष्टकी मूर्तिको अवलम्बनकर तन्मयता लाभ करनेकी चेष्टा करते हैं। हमारी देह भीतरके भावकी स्थूल अभिव्यक्ति है। स्थूलके अवलम्बन द्वारा सूक्ष्म तत्त्व हमको अवगत होता है। मूर्ति सम्मुख रखकर उसमें ध्यान करते-करते उस गुरु अथवा इष्टके सूक्ष्म तत्त्व, सूक्ष्म भाव, हमारे निकट प्रतिभास होने लगते हैं। तब मालूम होता है कि मानो हमारे गुरु या इष्ट, मूर्ति-के भीतर जाग्रत् और बोधित हुए, रक्तमांसके शरीरमें खड़े हैं। ध्यानकी उन्नत अवस्थामें इष्टके सब भाव हमारे मानस चक्षुके सामने प्रस्फुटित हो जाते हैं। तब हमारा मन ऐसा इष्टगत हो जाता है कि हम इष्टके समस्त तत्त्वोंसे अवगत होकर स्वयं इष्टमय हो जाते हैं। इसी प्रकारके भावके अवलम्बन द्वारा साधक एकलव्यने द्रोणकी मूर्तिकी सहायतासे द्रोणकी सब धनुर्विद्या सीख ली थी।

कोई-कोई कहते हैं, 'ध्यानं निर्विषयं मनः।' चित्तको संस्कारवर्जितकर शून्य-में परिणत करना 'ध्यान' कहलाता है। इस अवस्थामें स्वयंप्रकाशतत्त्व स्वतः आत्मप्रकाश होकर ध्यानका विषय हो जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक दल साधक भगवानको अंगुष्ठभावमें अपनी देहके भीतर, जगद्देहके भीतर उपलब्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। "अंगे स्थितम् इति अंगुष्ठम्।" अंगमें (देहमें) स्थित (उपलब्ध) कहकर उन्होंने भगवानको 'अंगुष्ठ' नाम दिया है। अपने भीतर गुरु अथवा इष्टकी अवस्थिति समझनेके लिये कल्पना करनी चाहिए कि मैं मानो चित लेट गया और मेरे गुरु या इष्ट ठीक मेरे ऊपर चित लेटकर मेरे भीतर प्रवेशकर गये और मेरी समस्त देह और समस्त तत्त्वोंमें अनुप्रविष्ट होकर मेरे आकारसे आकारित हो गये। तब मेरे मस्तिष्कमें उनका मस्तिष्क, मेरे हृदयमें उनका हृदय, मेरी पीठमें उनकी पीठ, मेरे हाथमें उनका हाथ—एक शब्दमें मेरे प्रत्येक अवयवमें उनका प्रत्येक अवयव समा गया। तब अपने प्रत्येक तत्त्वमें उनका प्रत्येक तत्त्व इस प्रकार अनुभूत होने लगता है कि अपने शरीरको स्पर्श करनेसे इष्टको स्पर्श करनेकी भावना होती है और साधक तन्मयता लाभकर समाहित हो जाता है। इस प्रकारकी साधनाके फलस्वरूप साधक ध्यानमें बैठकर अनेक समय इष्टमय हो जाता है। चित्तकी इस समाहित अवस्थामें जिस पदार्थ अथवा जिस तत्त्वकी ओर दृष्टि जायगी वहीं इष्टमय अनुभूत होगा। "यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम्" "जित देखौं तित श्याममयी है" "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है"—ये वाक्य इसी भावके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। तब साधकको इष्टके अनुमोदित कार्य करनेके अतिरिक्त अन्य कार्य करनेकी अथवा इष्टकी चिन्ताके अतिरिक्त अन्य चिन्ता करनेकी शक्ति प्रायः लुप्त हो जाती है। इष्टके समस्त गुण उसमें संक्रामित होकर वह इष्टके सादृश्यको प्राप्त होता है। इष्ट जैसे जगत्के सुखमें सुखी—समष्टिभावापन्न—हैं वह भी उनके भावसे भावित होकर अपना सीमाबद्ध भाव त्याग देता है। इसके फलस्वरूप इष्टमें तथा उसमें सर्वव्यापी भगवत्तत्त्व स्फुरित होता है और साधकका पृथक् अस्तित्व लोप हो जाता है। इसीका नाम है 'आत्मनिवेदन।' इसी भावसे भावित साधकोंके मुखसे ये शब्द निकले थे—'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव', 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत् त्वमसि', 'सः अहम्', 'अयमात्मा ब्रह्म', 'अनालहक', 'I and my father are one'.

ध्यान—में प्रधानतः तीन विषय हैं:—(१) धामतत्त्व, (२) स्वरूप तत्त्व, (३) इष्टतत्त्व अथवा भगवत्तत्त्व।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

धामतत्त्व–विभिन्न धाम वास्तवमें बिंदु-विशेष हैं। सहस्रारमध्यस्थ बिंदुके प्रसारण द्वारा धामोंका अवस्थान और धामतत्त्वोंका स्फुरण निर्धारित होता है। सहस्रारादि चक्रोंमें मन स्थिर करनेसे क्रमशः मालूम होता है कि तन्मध्यस्थ बिंदुने मानो ज्योतिर्मयरूपमें आत्मप्रकाश करना आरम्भ किया। क्रमशः वह एक अप्राकृत धाममें परिणत हो गया जिसके केन्द्रस्थलमें अपने-अपने सम्प्रदायके उपास्य श्रीभगवान अधिष्ठित हैं। उनके चारों ओर परिकरगण और परिकरोंके चारों तरफ धामस्थ अप्राकृत चिन्मय पदार्थ वर्तमान हैं। केन्द्रमें आनन्दशक्तिकी तत्पर, चित्-शक्तिकी एवं बहिर्देशमें सत्-शक्तिकी (विशुद्ध-सत्त्वकी) अवस्थिति लक्ष्य होती है। वैष्णव साधकोंके धामके केन्द्रस्थलमें युगल राधाकृष्ण हैं, उनके चारों ओर सखी-सखादि परिकरण एवं इनके चारों तरफ धामतत्त्वके अन्य सब अप्राकृत पदार्थ निर्देश किये गये हैं, जैसे ज्योतिर्मय पशु-पक्षी, ज्योतिर्मय तरुलता इत्यादि।

सभी साधकोंके मतानुसार भगद्धाम प्राकृतगुणवर्जित, ज्योतिर्मय, चिन्मय, आनन्दरससे परिपूर्ण है। वहां किसी प्रकारके दुःख-कष्ट, कामना-वासना, आसक्ति, द्वेष, हिंसा , आदिकी छाया भी नहीं है। वहाँ जो कुछ है सब चिन्मय आनन्द-सुधा-रस निचोड़कर तैयार किया गया है। अद्वैतवादियोंके मतानुसार वहाँ किसी प्रकारके गुणका खेल—वैशिष्ट्य भाव—नहीं है। वहाँ सब कुछ समरस-पूर्ण अद्वैतानन्द भावसे भरपूर है। द्वैतवादियोंके मतानुसार वहाँ प्राकृत अथवा जागतिक कोई पदार्थ या भाव न होते हुए भी वहाँ श्रीभगवान और उनके भक्त-परिकरगण एवं इनके लीलारसके अनुकूल समस्त उपकरण चिन्मय आनन्द-रस द्वारा संगठित हैं। तथ्यतः धामतत्त्व ज्योतिर्मय आनन्दभावसे परिपूर्ण है। इसी भगवद्धामको वैष्णव लोग 'गोलोक', शैवशाक्तगण 'कैलास', योगीगण 'सहस्रहार', ईसाई और मुसलमान 'स्वर्गादि' नामसे कहते हैं। लेखकगण अपनी-अपनी धारणानुसार भगवद्धाममें अपने आनन्दके उपकरणादिका सद्भाव कल्पना करनेमें कोई दुविधा वोध नहीं करते। अभाव-क्लिष्ट मानव अपने प्रार्थित विषयका सद्भाव वहाँ कल्पना किये बिना नहीं रह सकता।

भगवद्विलासके लिए—भगवद्भक्तिके लिए—लीलातत्त्व आस्वादनके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिए—साधकको ध्यानयोग द्वारा अपने चित्तको भगवद्धाममें परिणत करना आवश्यक है । भूमि अनुकूल हुए बिना भगवत्-प्रकाश असम्भव है ।

स्वरूपतत्त्व——प्राय: सभीके मतानुसार जीवका प्रकृत वासस्थान श्रीभगवानका आनन्दधाम है । वह भगवानका अंश अथवा प्रतिबिम्ब है । वह नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-सच्चिदानन्दस्वरूप है । उसको न अभाव है न दु:ख-कष्ट । अद्वैतमतानुसार जीव और भगवानमें कोई भेद नहीं । स्वरूप-विस्मृति ही जीवके कल्पित दु:ख-कष्ट व बन्धनका कारण है । स्वरूप अनुभूतिके द्वारा ही वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो सकता है । द्वैतमतानुसार जीव भगवानका अंश अथवा प्रतिबिम्ब है । वह श्रीभगवानके साथ दास्य, सख्य, वात्सल्य अथवा मधुर भावमें सम्बद्ध है । साधना द्वारा स्वरूप-प्रतिष्ठ होकर वह अपनी भावनानुसार श्रीभगवानका सेवाधिकार लाभ करता है । सम्प्रदायानुकूल दीक्षाके समय गुरु शिष्यको उसका स्वरूप दिखा और समझा देते थे । तदनुसार एक नाम भी रखा जाता था । साधक तब समझता था कि वह किस प्रकार भगवानके निकट था और उनकी सेवा करता था । उस तत्त्वको मन ही मन आस्वाद करना उसकी प्रधान साधना होती थी । इन दोनों मतानुसार साधक स्वरूपत: ज्योतिर्मय सच्चिदानन्दरूप है । स्वरूप-विस्मृति, देहकी आसक्ति, उसके बन्धन और कष्टका कारण हैं । भूतशुद्धि, षटचक्र भेद, पंचकोश-विवेक एवं नेति-नेति साधना द्वारा साधक सच्चिदानन्दरूपमें अवस्थित रहनेकी चेष्टा करता है ।

भगवत्तत्त्व——सभी सम्प्रदायके साधक ध्यानके समय मन ही मन अनुभव करनेकी चेष्टा करते हैं कि वे मानो अपने निर्दिष्ट धाममें अपने प्रेममय श्रीभगवानके निकट अवस्थित हुए अपने निर्धारित कर्म द्वारा श्रीभगवानके सेवा-कार्यमें लिप्त हैं । उनके चारों तरफ परिकरगण भी मानो अपने-अपने भजनांगमें व्यस्त हैं । वे वहां धीरे-धीरे मानो भगवानमें तन्मय हो रहे हैं ।

भारतके मंत्रद्रष्टा ऋषियोंके प्रधान-प्रधान आविष्कार साधनराज्यके विभिन्न अवलम्बन हैं । मुख्य आविष्कार ये हैं :—

(१) भगवानका अस्तित्व—उनका निर्गुण व सगुण विभाव—उनका स्वरूप व [illegible] व शक्तिरहस्य । जीव-जगत्के स्वरूपका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विवेचन—किस प्रकार ये सृष्ट, परिणत अथवा विवर्तित हैं—उसका इतिहास ; जीव-जगत् सहित भगवानका सम्बन्ध, इत्यादि ।

(२) जीव भगवानका स्वरूप, अंश अथवा प्रतिबिम्ब है । उसका प्रकृत वासस्थान भगवद्धाम है । उसका प्रधान कार्य है भगवानकी इच्छा पूरण करना—उनकी लीलामें सहायक होना । जिस किसी कारणसे भी हो जीव स्वरूपविस्मृत तथा जगत्में आगत है और नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप होकर भी, मायाके हाथमें पड़कर, अपनेको जन्म-मृत्यु-व्याधि-शोकके अधीन समझता है । आनन्दस्वरूप होकर भी स्वरूपविस्मृतिके कारण दुःख-कष्टजर्जरीभूत है । जीवकी स्वरूपोपलब्धि, स्वस्थानको प्रत्यागमन तथा परम शान्ति लाभ ही समस्त-साधन-भजनका उद्देश्य है ।

(३) भगवान और उनके आत्म-प्रकाशका तत्त्व, विभिन्न यंत्र अर्थात् पुरुष-प्रकृतिके तत्त्व, प्रकृतिका महत्, अहंकार व तन्मात्रादि विभिन्न स्तरोंका निर्णय । भगवान सर्वव्यापी होते हुए भी उनके पूर्ण प्रकाशका स्थान सर्वोच्च-स्तरमें है, जीव-जगत् विभिन्न निम्नस्तरोंमें अवस्थित हैं । सर्वोच्चस्तर ही भगवद्धाम है—निम्नस्तर उस धामके प्रकाशक तथा विभिन्न तत्त्वकी अवस्थान भूमि हैं ।

(४) ब्रह्मांड व अंडका तत्त्व-निर्णय । जो ब्रह्मांडमें हैं वे ही प्रत्येक जीव-देहमें, यहाँ तक कि प्रत्येक अणु-परमाणुमें वर्तमान हैं । ब्रह्मांडमें सर्वनिम्नस्थानसे सर्वोच्चस्थानको सुमेरु कहा गया है और जीवदेहमें सर्वनिम्नस्थानसे सर्वोच्च-स्थानको मेरुदण्ड नाम दिया गया है ।

(५) सर्वोच्चस्तरसे सर्व निम्नस्तर तक एक स्रोत—एक प्राण-प्रवाह—यातायात कर रहा है जिसके फलस्वरूप सब स्तर आप्यायित हैं । इस स्रोत-को जानना, धारण करना और इसके अनुकूल चलना ही समस्त साधन-भजनका उद्देश्य है । प्रायः सभी सम्प्रदायोंमें इस भावका अति सुन्दर आभास परिलक्षित होता है । व्यष्टि-समष्टि देहमें तथा अंड-ब्रह्मांडमें इस स्रोतकी क्रिया प्रायः एक ही प्रकार चल रही है । इस स्रोत के भीतर दो तत्त्व निहित हैं—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

बिन्दु और नाद । बिन्दुसे ज्योतिका एवं नादसे शब्दका स्फुरण होता है । नाद दो बिन्दुओंका योजक है । बिन्दु तत्त्व द्वारा इष्ट-रहस्य एवं नाद तत्त्व द्वारा जप-रहस्य निर्धारित होता है । इसी बिन्दु और नादकी सहायतासे स्वरूप-विस्मृत तथा स्थान-च्युत जीवके लिए भगवत्प्राप्ति—भगवद्धाम-गमन—सहज, सुन्दर और स्वाभाविक हो जाता है ।

जप

जप एक ऐसा रहस्य है जो प्रायः सभी सम्प्रदायोंमें बहुकालसे चला आ रहा है । बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, शैव, शाक्त, सौर, वैष्णव, गाणपत्य, प्रभृति सब सम्प्रदायोंके साधकगण जप तत्त्वकी महिमाकी घोषणा करते हैं । इसलिए जप तत्त्वका प्रकृत रहस्य प्रकट करनेकी चेष्टा सबको करनी चाहिए । यह जप तत्त्व पहले एक वैज्ञानिक तथा दार्शनिक भित्तिपर स्थापित था इसमें सन्देह नहीं । अनेक ज्ञानी साधकोंने जप तत्त्वकी साधना द्वारा साधन-राज्यमें विशेष उन्नति लाभ की है । तत्पश्चात् जब साधन राज्यकी अवनतिके कारण जप-साधना केवल एक प्राणहीन शब्दोच्चारणमें पर्यवसित हो गई तब भगवान पतंजलिदेवने अपने योगसूत्रमें जपका प्रकृत स्वरूप और उद्देश्य प्रकट करनेकी चेष्टा की । मंत्रात्मक शब्दकी अचिन्त्य शक्तिको उन्होंने अस्वीकार नहीं किया किन्तु शब्दके सहित अर्थका—भवके सहित भावका—जो अपूर्व समन्वय आवश्यक है इसे वे मुक्तकंठसे प्रकटकर साधनाको एक सर्वांग सुन्दर वैज्ञानिक भित्तिपर स्थापितकर गये हैं । वे पुरुष-विशेषरूप पुरुषोत्तमका अस्तित्व स्वीकारकर ॐकारको उसके वाचकरूपमें निर्देश कर गये हैं । उनके मतानुसार जप उसी प्रणव (ॐकार) की अर्थ-भावना है—'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' । कहना अनावश्यक है कि प्रणव परमतत्त्वका—निर्गुण-सगुण, अव्यक्त-व्यक्त, समस्त भावोंका—द्योतक है । प्रणवकी अर्धमात्रा निर्गुण भावकी एवं अ-उ-म सगुण भावके द्योतक हैं । इसलिए प्रणवमें निर्गुण-सगुण दोनों भाव निहित हैं । तत्त्वतः उपनिषदादि ग्रन्थोंमें प्रणवको साधनराज्यका सर्वश्रेष्ठ रत्न माना गया है । अर्धमात्राके भीतर निर्गुण,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

निष्कल, निरंजन तत्त्वका आभास मिलता है और आकार-उकार-मकारके भीतर जीव-जगत्के स्थूल-सूक्ष्म-कारण, आधिभौतिक-आधिदैविक-आध्यात्मिक राज्यके, सब तत्त्व निहित पाये जाते हैं। 'तत' जिस प्रकार आत्मप्रकाश करते हैं, जिस प्रकार जीव-जगद्रूपमें परिणत या विवर्तित हैं, यह रहस्य 'तत्त्व' शब्द द्वारा अभिहित किया गया है—'तत् अनुभूयते अत्र इति तत्त्वं'। इसलिए साधन-राज्यमें भगवानसे लेकर जीवजगत्की सर्वशेष परिणति तकके रहस्यको हम 'तत्त्व' शब्दसे निर्देश करते हैं। 'भूः, भुवः; स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्' आदि स्तर विभिन्न तत्त्व नामसे अभिहित हैं। सांख्यके 'प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारः, अहंकारात् पंचतन्मात्राणि,' आदि सब स्तर भी विभिन्न तत्त्व नामसे अभिहित हैं। ये सभी परम पदकी महिमा प्रकाशित करते हैं; वे परम पदके प्रकाशक, परम पदकी मूर्ति, परम पदके विभिन्न स्तर हैं, ये परम पदका अर्थ कहलानेके योग्य हैं। सांख्य मतानुसार सृष्टिका क्रम सामने पृष्ठपर दिया गया है। यह प्रायः सभी मतोंको मान्य है।

जपके विषयका नाम 'मंत्र' है, जिसके मनन द्वारा संसारसागरसे उद्धार होता है। मंत्रके बार-बार उच्चारणको साधारणतः 'जप' कहते हैं। इसलिए जप मंत्रका पुनः-पुनः उच्चारण है। यह उच्चारण एक प्राणहीन यंत्रवत् उच्चारणमात्र नहीं है। उच्चारण इस प्रकार होना चाहिए जिसके फलस्वरूप सब तत्त्व भगवद्भावसे परिभावित होकर, भगवत्-शक्ति-युक्त होकर, भगवत्कार्य साधनमें नियुक्त हो सकें। भगवान पतंजलिदेवने इसी जपको मंत्रकी 'भावना' नामसे निर्देश किया है। किसी द्रव्यको किसी रसमें बार-बार डूबो रखनेको, उस द्रव्यको रसमय करनेको, 'भावना देना' कहते हैं। मंत्रार्थकी भावना द्वारा साधक क्रमशः मंत्रमय हो जाता है। इन तत्त्वोंकी एवं तत्त्वातीत परम तत्त्वकी भावना अर्थात अनुचिन्तन ही जप शब्दका प्रकृत अर्थ है। इसलिए सब तत्त्वोंकी चिन्ता करते-करते परम तत्त्वमें जा पहुँचना एवं उस परम तत्त्वसे—अवरोहण-क्रमानुसार— सब तत्त्वोंकी अनुभूति लाभ करना, सब तत्त्वोंको परम तत्त्वके भावसे परिभावित करना—शक्तियुक्त करना—परम तत्त्वकी इच्छा पूरण करनेमें नियुक्त करना, जप तत्त्वका मुख्य उद्देश्य है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टि का क्रम

परम पुरुष या भगवान्

(सत् + चित् + आनन्द)

|

मूल प्रकृति या प्रधान

(सत्त्व + रज + तमकी साम्यावस्था)

|

महत्तत्त्व (समष्टिबुद्धि)

(जब प्रकृतिने महत्तत्त्व द्वारा अपने आपको व्यक्त किया तो प्रकृतिके गुणानुसार अहंकार त्रिधा विभक्त हो गया ।)

|

अहंकार

(सात्त्विक अंशसे)	(राजस अंशसे)	(तामस अंशसे)
मन	**दश इन्द्रियाँ**	**पंच तन्मात्राएँ**

पंच तन्मात्राएँ →

शब्द	**स्पर्श**	**रूप**	**रस**	**गन्ध**
आकाश →	वायु →	अग्नि →	जल →	पृथिवी
				प्राणी

(ये स्थूल पंचमहाभूत ऊपर लिखे सूक्ष्म पंच तन्मात्राओंसे उत्पन्न हुए)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राचीन ऋषिगण परमात्मासे लेकर सृष्टिके निम्नस्तर तक सब स्तरोंका वर्णन कर गये हैं। स्तरोंके विभागके सम्बन्धमें मतभेद होते हुए भी, स्वरूप और उद्देश्य-के संबंधमें कोई मतभेद नहीं देखा जाता। इन स्तरोंको साधारणतः तीन भागमें अथवा कहीं-कहीं सात भागमें विभक्त किया गया है।

परम कारुणिक ऋषिगण जीवके हितके लिए आविष्कार कर गये हैं कि जो ब्रह्मांडमें हैं वे ही अंडमें हैं, प्रत्येक जीव देहमें है, यहाँ तक कि प्रत्येक परमाणुमें है—what is true of the whole universe is also true of every atom of the universe. तत्पश्चात् बहुत गवेषणा, धारणा, ध्यान और समाधिकी सहायतासे ऋषिगण मनुष्यदेहकी मेरुदंडस्थ सुषुम्नामें इन स्तरोंका स्थान भी निर्देश कर गये हैं तथा दिखा गये हैं कि एक-एक स्थानमें चित्त स्थिर करनेसे साधनराज्यके उस स्तरका रहस्य स्वतः आत्मप्रकाश करता है। षट्चक्रकी वर्णनासे हम दार्शनिक स्तरोंके, ज्ञानभूमिके विभिन्न स्तरोंके एवं साधनराज्यसे विभिन्न स्तरोंके रहस्य सुन्दररूपसे अनुभव करनेका सुयोग पाते हैं।

साधनराज्यमें प्रवेश करनेके लिए हमें स्रोतापन्न होकर नादानुसंधानकी तरफ विशेष दृष्टि रखनी होगी। भगवानके सृष्टिरहस्यमें उनकी कृपाका एक विशेष निदर्शन हमें जीवदेहके विभिन्न तत्त्वोंके संस्थानके भीतर मिलता है कि उन्होंने साधनराज्यके अवलम्बनीय सब तत्व श्रेणीबद्ध करके जीवदेहके पीछेकी तरफ स्थापित कर दिये हैं।

"परांचि खानि व्यतृणत् स्वयम्भुः तस्मात् परान् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद् आवृत्तचक्षुर् अमृतत्वम् इच्छन्॥"

ऋषियोंके इस श्लोकमें साधनराज्यका एक गूढ़ रहस्य निहित है। हमारी इन्द्रियाँ सामनेकी तरफ हैं, विषय भी सम्मुख वर्तमान है; इसीलिए हमारा मन इन्द्रियोंकी सहायतासे विषय ग्रहणकर इतना उन्मत हो गया है। सामनेकी तरफ कौरव दल है, पीछेकी तरफ पंच-पांडवोंकी स्थिति है। सामनेके प्रवृत्ति पक्ष और पीछेके निवृत्ति पक्षमें, देहरूप कुरुक्षेत्रमें, एक भीषण संग्राम चल रहा है। इस संग्राममें विजय प्राप्त करनेके लिए ऋषियोंने हमको आवृत्तचक्षु होनेका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् अपनी इन्द्रियोंको मनकी सहायतासे पीछेकी तरफ मोड़ देनेका उपदेश दिया है। पीछेकी ओर एक चिह्न रखकर उसके तरफ मन स्थिर करनेकी एक प्रणाली निर्देश कर गये हैं। इस साधनाकी प्रणाली अभिज्ञ साधकसे सीख लेना होगा। इसके बाद मेरुदंडके सर्वनिम्नस्तर मूलाधारमें मन स्थिरकर भीतर क्या हो रहा है देखते रहनेसे दैववशात् कभी एक स्रोत (एक प्राणकी गति) अनुभवमें आती है। यह स्रोत मूलाधारसे सहस्रारकी तरफ और फिर सहस्रारसे मूलाधारकी तरफ यातायात करता मालूम पड़ता है। इस स्रोतमें मन स्थिर हो जानेसे क्रमशः भीतरसे एक नाद सुनाई देता है एवं एक ज्योतिका दर्शन भी होने लगता है। सद्गुरु इस नादकी तालमें हमारा निर्दिष्ट जपकार्य सुसम्पन्न करनेका उपदेश देते हैं।

यहाँ तक हमें प्रणवके अर्थका कुछ आभास मिला। अब यह समझनेकी चेष्टा करें कि उसकी भावना किस प्रकार साधित होती है। प्रत्येक मंत्रमें तीन तत्व देखनेमें आते हैं—(१) व्याहृति, (२) बीज, (३) देवता। व्याहृतिके भीतर है भगवानके आकर्षणकी उपलब्धि—जिसके द्वारा श्रीभगवान अपने प्रियतम स्वरूपविस्मृत जीवको समस्त दुःख-कष्टसे मुक्तकर, अपनी ओर आकर्षितकर, अपने स्वधाममें ले जानेके लिए व्यस्त हैं। इस प्रसंगमें श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिका रहस्य चिन्तनीय है जिससे वे अपने भक्तोंको अपने निकट आकर्षित करते थे। बीजतत्वमें हम साधकका प्रकृत स्वरूप, उसका श्रीभगवानसे सम्बन्ध एवं उस सम्बन्धको उपलब्धकर उसे सार्थक करनेका उपाय लाभ करते हैं। देवता तत्वमें है वह साधन रहस्य जिसके द्वारा साधक भगवत्-शक्तिको अपने भीतरके सब तत्वोंमें ले जाकर, सब तत्वोंको शक्तियुक्तकर, स्वयं इष्टमय होकर, अपने जीवनमें भगवदिच्छाको पूर्णतः सफल करता है। प्रत्येक मंत्रमें है भगवद्धाममें जानेकी प्रणाली, भगवद्दर्शन एवं स्वरूपोपलब्धि अर्थात् भगवानने किस उद्देश्यसे जीवको सृष्ट किया है, कौन सा बीज उसमें निहित है और यह जानकर उस बीजको एक पूर्ण परिणत फलफूलसे सुशोभित वृक्षमें परिणत करना। जप तत्वके साथ 'यंत्र-तंत्र-मंत्र रहस्य' ऋषि-छन्द-देवता-विनियोग तत्व' विशेषतः चिन्तनीय हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवता बीजकी पूर्ण परिणत अवस्था है। भगवानकी कौनसी शक्ति किस प्रकार जीवके भीतर पूर्ण परिणत अवस्था लाभकर साधकको देवमय कर सकती है, इसका सब रहस्य देवता तत्वके भीतर निहित है। देवता साधककी पूर्ण परिणत अवस्था है। उस देवताका एक प्रतीक सामने रख, उसमें तन्मयता लाभकर सकनेसे, साधकके बीजगत भावका पूर्ण परिणत फलफूलसे सुशोभित वृक्षरूपमें परिणत होनेका पथ सुगम हो जाता है। देवताका चिन्तन बीजकी परिणत लाभ करनेका केवल निमित्त कारण होनेपर भी आवरण भेद करके प्रकृत परिणतिमें सहायक होता है। मंत्रकी भावना द्वारा अपने प्रत्येक तत्वको तन्मयकर, जब अपना समस्त जीवन मंत्रमय हो जाय तभी कहा जा सकता है कि मंत्र-जप किया। इसलिए प्रत्येक मंत्रमें विद्यमान हैं भगवत्तत्त्व, जीवतत्त्व, स्वरूप-विस्मृत जीवकी भगवत्-प्राप्तिके उपाय एवं भगवत्-प्राप्तिके फलस्वरूप भगवन्मय हो जानेका रहस्य।

ऊर्ध्वस्रोतके साथ व्याहृति उच्चारणकर भगवत्-सन्निधान सहस्रारमें गमन, बीज तत्वकी अनुभूति द्वारा जीव और शिवका स्वरूप तथा सम्बन्धकी उपलब्धि और देवता तत्व द्वारा अवतरणक्रमानुसार सब तत्वोंको भगवत्-कार्य साधनमें नियुक्त करना ही जपका प्रधान कार्य है। व्याहृतिके अवलम्बनसे भगवानके निकट जानेका कौशल, बीजतत्वसे अपनी सृष्टिका उद्देश्य और स्वरूपतत्व एवं देवता तत्वसे उस बीजको अपने जीवनमें सफलकर किस प्रकार भगवदिच्छा पूरण करनेकी योग्यता लाभ की जा सकती है, इसका कौशल हम जान सकते हैं। व्याहृति उच्चारण द्वारा मानो हम गंगाके निकट जाते हैं, बीज उच्चारण द्वारा मानो हमारी स्नानक्रिया साधित होती है और देवतातत्व उच्चारण द्वारा मानो हम समस्त रास्तेको गंगाजलसे अभिषिक्त व पवित्र कर देते हैं। भगवान स्वरूपतः जो हैं एवं जिस प्रकार वे परिणत अथवा विवर्तित होकर जीवजगत् रूपमें अनुभूत हुए हैं, इन दोनों तत्वोंका चिन्तन करते-करते जीवका अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवद्भावमें परिभावित हो जाता है। फलतः जीव और शिवके भीतरका पार्थक्य धीरे-धीरे कम होकर जीव क्रमशः शिवमय हो जाता है। जीवका यह शिवमय हो जाना ही जपका प्रधान उद्देश्य है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मंत्र जपके भीतर एक ऐसे तत्वका आस्वाद मिलता है जिसके बार-बार मनन, चिन्तन व उच्चारण द्वारा हम संसार-सागरसे उत्तीर्ण हो जाते हैं। अर्थात् स्वधामकी, स्व-स्वरूपकी, विस्मृत-स्वरूपकी उपलब्धि लाभकर, स्वरूप-प्रतिष्ठ होकर हम भगवानमें तन्मय हो जाते हैं। शास्त्रमें विभिन्न अधिकारियों के लिए विभिन्न मंत्रोंकी व्यवस्था होनेपर भी सब मंत्रोंका उद्देश्य एक ही है। इसलिए एक मंत्रकी साधन-प्रणाली समझ लेनेसे प्रायः सभी मन्त्रोंकी साधन-प्रणाली उपलब्ध करना सहज हो जाता है। कहना अनावश्यक है कि मंत्र-जपके साथ प्राणायाम, षट्चक्र-भेद, पंचकोश-विवेक प्रभृति साधन-प्रणालियोंका विशेष सम्बन्ध है।

प्रायः प्रत्येक तांत्रिक मंत्रमें भी हमको एक ॐकार, एक बीज तथा एक देवताका उल्लेख मिलता है। प्रणवके 'अकार' उच्चारणके साथ मनको मूलाधार-से नाभिचक्रमें, 'उकार' उच्चारणके साथ मनको नाभिचक्रसे अनाहतचक्रमें एवं मकार उच्चारणके साथ अनाहत चक्रसे आज्ञाचक्रमें ले जानेकी व्यवस्था देखी जाती है। ॐकार उच्चारणकर चित्तको मूलाधारसे सहस्रारमें भगवत् समीप ले जाकर वहां भगवानसे तन्मयता लाभ करना होता है; बीज उच्चारणकर अपने भीतर कौन शक्ति निहित है, क्या कार्य करनेके लिए भगवानने मुझे सृष्ट किया है, यह तत्व उपलब्ध करना होता है और इसके बाद देवताका नामोल्लेख-कर चित्तको धीरे-धीरे नीचेकी तरफ लाते समय प्रत्येक चक्रको—प्रत्येक तत्त्व-को—इष्टज्योति तथा इष्टशक्तिसे परिपूरित मानकर, अपनेको ज्योतिर्मय रूपमें चिन्तन करना होता है—'आत्मानं तेजोमयं विभावयेत्'।

वैदिक युगका प्रधान मंत्र गायत्री था। भूर्भुवः स्वः' आदि उसकी व्याहृति थी। 'ॐभूर्भुवः स्वः' आदि अंश उच्चारणकर चित्तको मूलाधारसे सहस्रारमें ले जाना होता था। 'स्व' शब्दका विश्लेषण करनेसे हमें उसके भीतर 'महः', 'जनः', 'तपः', एवं 'सत्यम्' के रहस्योंको आस्वाद करनेका सुयोग मिलता है। इसीलिए सप्त-व्याहृतिको अनेक स्थलोंमें त्रि-व्याहृतिरूपमें वर्णन किया गया है। सहस्रारमें जाकर 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि' उच्चारणकर ब्रह्मज्योतिका ध्यानकर, उसमें तन्मयता लाभ करना होता था। तत्पश्चात् 'धियो यो नः प्रचोदयात्'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्चारणकर अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंको ब्रह्मज्योतिसे परिपूर्ण एवं ब्रह्मभावसे परिभावित मानकर अपनेको ब्रह्ममय चिन्तन करना होता था।

जपका प्रथम कार्य है भगवानके समीप जाना (जैसे वैष्णवोंका अभिसार-तत्व), द्वितीय कार्य है भगवानसे तन्मयता लाभ करना (जैसे वैष्णवोंका मिलनतत्व) एवं तृतीय कार्य है भगवत्-शक्ति व भगवद्भाव द्वारा, ऊपरसे नीचे आते समय, देहके प्रत्येक तत्वको भगवद्भावसे परिभावितकर, भगवन्मय हो जाना (जैसे वैष्णवोंका रसोद्गार तत्व)।

जपके द्वारा इष्ट तत्वको अपने भीतरके प्रत्येक तत्वमें आस्वादकर इष्टमय हो जानेका सुयोग मिलता है। 'तुम्हारा स्वर्गराज्य मर्त्यलोकमें आविर्भूत हो, मर्त्यधाम स्वर्गधाममें परिणत हो जाय, मेरे द्वारा तुम्हारी इच्छा पूर्ण सफलता लाभ करे',—जपके भीतर इस तत्वका एक सुन्दर आभास मिलता है। वैष्णवोंके 'हरे कृष्ण', 'हरे राम', इत्यादि नामजपमें भी यही चढ़ने-उतरनेकी प्रणाली देखनेमें आती है। इसी नामजपके फलस्वरूप साधक कृष्णमय हो जाते हैं। कोई-कोई वैष्णव आज्ञाचक्र और सहस्रारके बीचमें ह्लादिनी चक्रका अवस्थान मानकर मेरुदंडको आठ भागोंमें विभक्त करते हैं। 'हरे' व्याहृतिका, 'कृष्ण' बीज तत्वका एवं 'राम' देवता तत्वका द्योतक है।

"जप त्रिविध है—वाचिक, उपांशु और मानसिक। वाचिकका अर्थ है मुखसे उच्चारण करना। वाचिक अथवा बाह्य जप वायुसे सम्बन्धित है। इस जपमें श्वास-प्रश्वास स्वाभाविकरूपमें चलती रहती है और बाहरी उच्चारण बाह्य वायुकी सहयातासे होता है। बाह्य अथवा वैखरी जपमें शब्द और अर्थ-के बीच एक पार्थक्य रह जाता है। उपांशु जपमें श्वास अनेकांश क्षीण हो जाती है और बाह्य वायुका सम्बन्ध अनेकांश छिन्न हो जाता है। उस समय जप सुषुम्ना पथमें चलने लगता है और जैसे अपने-आप ही होने लगता है। वाचिक एवं उपांशु जप अनेकांश वैखरीमें साधित होते हैं किन्तु उपांशु जपमें कुछ मध्यमाकी क्रिया भी लक्षित होती है। मानस जपमें बाह्य वायुके सहित सम्बन्ध बिलकुल नहीं रह जाता। यह जप चिन्ता-चेष्टा-विवर्जितरूपमें भीतर ही भीतर होता रहता है। तब शब्द एवं अर्थका सम्मिश्रण अनुभूत होता है

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

और ज्योतिका दर्शन भी होता है। जप जब मध्यमा त्यागकर पश्यन्तीमें प्रवेश करता है, तब शब्द और अर्थ एक सत्तामें परिणत हो जाते हैं। उस समय चैतन्यका स्फुरण अर्थात् आत्मसाक्षात्कार अथवा इष्टका दर्शन होता है। यह दर्शन लाभकर साधक कृतार्थ हो जाता है। इसके परे भी एक अव्यक्त परावस्था है जहाँ पूर्णाहन्ता अवस्था प्राप्तकर साधक अद्वैत आत्मतत्वमें स्थिति लाभ करता है।''

जप दो प्रकारसे निष्पन्न होता है—(१) कृत्रिमरूपसे अर्थात् प्रयत्नपूर्वक (२) स्वाभाविकरूपसे अर्थात् प्रयत्न-निरपेक्ष। पहले कूटस्थमें मन स्थिरकर प्रकृतिका खेल देखना होता है। प्राणवायुका लक्ष्य स्थिर होनेसे ही सुप्त मन जागरित हो जाता है। प्राणक्रिया तब धीरे-धीरे कृत्रिमता परित्यागकर स्वाभाविक अवस्थामें जानेकी चेष्टा करती है। इसलिए कोई-कोई भ्रूमध्यमें मन स्थिरकर गंभीर श्वासके साथ नाम स्मरण करनेका एवं श्वासके चढ़ाव-उतारकी संगतिमें जप करनेका उपदेश देते हैं। जपतत्त्वमें तीन विषयोंकी तरफ दृष्टि रखनेका उपदेश दिया जाता है।

(१) नादानुसंधान—अपने भीतरके स्वभावके स्रोतमें अपनेको बहाकर समस्त विकृतभाव दूरकर, स्वभावमें स्थिति लाभ करना।

(२) कूटस्थमें स्थिति लाभ–नादकी संगतिमें चलते-चलते अनेकांश नादभावापन्न हो जानेपर नादके साथ जाकर कूटस्थमें (आज्ञाचक्रमें) स्थिति लाभ करना और नादकी लीला अर्थात् शक्तिका खेल देखना।

(३) प्राणकी क्रियाके संग मनका मिलन साधन करना अर्थात् नादकी संगतिमें मनन-शक्तिको चालितकर, मन और प्राणके बीच एकता स्थापन करना। तभी हम अनुभव कर सकेंगे कि मन और प्राण दोनों मिलकर समान भावोंसे, भव और भावके बीच, पूर्ण एकता स्थापन करनेमें नियुक्त हैं।

जब वायु क्रमशः सूक्ष्म होकर सुषुम्नामें प्रवेश करना आरम्भ करती है तब शुद्ध दृष्टि खुल जाती है। तब यह अनुभूति लाभ होती है कि प्रकृतिके समस्त क्रिया-व्यापारमें भी पुरुषचैतन्य किस प्रकार गुणातीत शान्त भावमें अवस्थित हैं। इसके परिणामस्वरूप नित्य-नैमित्तिक क्रियाके भीतर स्थितिरूप निष्क्रिय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्मसत्ता स्फुरित होती है और लीलातीतमें नित्यलीलाका दर्शन होता है। उस समय रेचक और पूरक चलते हुए भी कुम्भकका अभाव नहीं होता। आत्मस्वरूपमें ही सर्वभूतका दर्शन लाभ होता है और नित्य स्वाभाविक जपका संधान मिलता है।

शक्तितत्व शब्दमय, ज्ञानमय, भावमय और क्रियामय है। साधकका प्रथम कार्य है कूटस्थमें स्थिति लाभकर एवं द्रष्टा होकर प्रकृतिका खेल देखते रहना। इसके फलस्वरूप प्राणकी क्रिया अमृत प्रवाहमें परिणत हो जाती है। साधक स्वयं जप नहीं करता वरन् उसके भीतर जपक्रिया साधित हो रही है—इस तत्वकी उपलब्धिका नाम 'अजपाजप' है। हमारे भीतर बैठे भगवान स्वयं जपकर रहे हैं—वे किस प्रकार हमारे भीतर अपनी शक्तिकी सहायतासे आत्मप्रकाश कर रहे हैं—इस उपलब्धिके द्वारा अपने भीतरका विरुद्ध कृत्रिम स्रोत दूरकर अपनेको प्रकृतिके स्रोतमें बहा देना, अपनेको स्रोतमय कर देना, उनके सहित अपनी एकता सम्पादन करना और क्रमशः अपनी पृथक् सत्ताको भूलकर अपने भीतर तथा जगत्में सर्वत्र एकमात्र उन्हींकी सत्ता (Divine Presence) अनुभव करना—यही जपका प्रकृत उद्देश्य है। जप है माँके संग, माँकी संगतिमें, नृत्य करना; जिस संगतिमें माँकी सृष्टि-स्थिति-लय क्रिया साधित हो रही है उस संगतिमें अपनी गति मिलाकर अपना सब विकृत भाव दूर करना—संक्षेपतः माँकी संगत्यनुसार अपना जीवन गठन करना अर्थात् माँका अनुवर्त्तन करना अथवा स्वभावमें, प्रकृत स्वरूपमें, प्रत्यावर्त्तन करना। पुरुषके (शिवके) वक्षःस्थलमें परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूपोंमें जो माँकी आविर्भाव और तिरोभाव लीला हो रही है उसके भीतरका स्वाभाविक स्रोत धारणकर उसमें तन्मयता लाभ करनेकी चेष्टा करनी होती है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वासमें माँ जो प्राणरूपमें क्रिया कर रही हैं उसको समझनेकी चेष्टा करनी होती है। प्रणव-युक्त माँका नाम श्वासके साथ मिलाकर जप करता होता है क्योंकि श्वास-प्रश्वास माँका ही प्रकाश होनेके कारण इसके साथ मातृस्पर्श लाभ करना आवश्यक है। यह जप स्वतः हमारे भीतर अज्ञातरूपमें हो रहा है। इसको जानकर, समझकर और देखकर इसकी संगतिमें चालित होना ही अजपाजप है। जपकर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

रही हैं माँ स्वयं ही; हमारे करने न करने अथवा समझने न समझनेपर यह निर्भर नहीं करता। **अहोरात्रमें २१६०० बार श्वास-प्रश्वासके साथ हंस मंत्रका जप स्वतः ही हो रहा है।** इसीके कारण तो हमारी अहंता है, इसीने हमें जीवित रखा है। पालनशक्तिका यह सर्वश्रेष्ठ कार्य है—यह पालनकर्त्ता विष्णुके उद्देश्यसे निरन्तर अर्पित हो रहा है। अनाहत चक्रमें जाकर वृत्तिनिरोधपूर्वक नादके साथ यह जप प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

सगुण भावमें माँकी लीला एवं निर्गुण भावमें माँका विश्राम तत्व आस्वाद करना ही जपका उद्देश्य है। शिवके वक्षःस्थलसे शक्तिके उत्थानके समय (सगुण भावमें) राजयोगका एवं पतनके समय (निर्गुण भावमें) लययोगका चिन्तन साधकको करना होता है। किन्तु प्रकृत तत्व दोनोंके अतीत हैं। गतिमें विश्राम श्वास-प्रश्वासमें कुम्भक क्रियाके द्वारा निष्क्रिय भावमें स्थितिकी चेष्टा ही जपका उद्देश्य है।

अजपा जपके लिए प्राणायामकी सहायतासे श्वासको अधीनकर मनको स्थिर करना होता है। कबीर साहब प्रत्येक श्वासकी गतिके साथ नाम-जप करनेका अर्थात् श्वासके स्रोतमें स्नान करनेका उपदेश करते थे।

नाद और बिन्दुतत्वके सहित जप-साधनका घनिष्ट सम्बन्ध है। 'बिन्दु' निर्गुण शिव अथवा पुरुष तत्व हैं; 'नाद' सगुण शक्ति अथवा प्रकृति तत्व है। निर्गुण शान्त शिवके वक्षःस्थलसे सगुण शक्तिका उत्थान-पतन रहस्य ही बिन्दु-नादका रहस्य है। शक्तिका उत्थान और पतन, सृष्टि और लय क्रिया एवं जीवदेहमें श्वास-प्रश्वास एक ही संगतिमें चलते हैं। जप-साधना द्वारा साधक अपने देहमें इस संगतिको धारणकर, भगवानका सृष्टि और लयतत्व समझ सकता है।

नाद दो बिन्दुओंका योजक है। ऊर्ध्व बिन्दु सहस्रारमें और अधोबिन्दु मूलाधारमें अवस्थित है। इसलिए नाद मूलाधारसे सहस्रार तक विस्तृत है। सहस्रार और मूलाधार मुख्य बिन्दु हैं। मध्यवर्ती आज्ञाचक्र, विशुद्धाख्य, अनाहत, मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान गौण बिन्दु हैं। इन सब गौण बिन्दुओंका परस्पर योग-साधन नादके द्वारा ही सम्पन्न होता है। सहस्रार गुणातीत सिद्धावस्था

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इसलिए साधकको आज्ञा बिन्दुको ही मुख्य बिन्दु मानकर ग्रहण करना होता है। फिर प्रत्येक चक्रमें परिधिसे केन्द्र तक नाद विस्तृत है। इस नादमें मूलाधारसे सहस्रार तकके विस्तृत नादके सब तत्व सूक्ष्मरूपमें विद्यमान हैं। इसलिए किसी भी चक्रमें इष्टमंत्र जप करनेसे सिद्धि लाभ हो सकती है।

साधारण जीवकी स्थिति मूलाधारके भी बाहर है। वस्तुतः उसकी कोई स्थिति ही नहीं। वह निरंतर इड़ा-पिंगलाके पथमें अर्थात् कालमार्गमें संचरण कर रहा है। किन्तु अध्यात्म राज्यमें प्रविष्ट होनेके समय सर्वप्रथम मूलाधारको ही आश्रम करना होता है। क्योंकि सुषुम्ना मार्गकी प्रथम विश्रामभूमि मूलाधार है। इसलिए नादानुसंधान मूलाधारसे आरम्भ करनेकी व्यवस्था देखी जाती है। साधक उन्नति लाभके फलस्वरूप जिस बिन्दुमें (जिस घाटमें) स्थिति लाभ करता है परवर्त्ती यात्रा उसी स्थानसे आरम्भ होती है। जितनी दूर तक नादके संग मन जाय पहले वहीं तक नादकी सीमा माननी चाहिए। नाद क्रमशः क्षीण होकर जब तक बिन्दुमें प्रत्याहृत न हो तब तक शक्तिका संधान नहीं मिलता। प्रत्येक तत्वमें इष्ट मंत्र जप करनेके समय यह तत्व अनुभव किया जाता है। चक्रस्थ नाद केन्द्रभूत होकर जब तक तत्रस्थ बिन्दुमें लीन न हो जाय तब तक उस बिन्दुस्थ शक्तिका संधान नहीं मिलता एवं उस चक्रका भेद भी नहीं किया जा सकता। नादमय मंत्र ही जाग्रत् मंत्र है। जपका मन्त्र नादात्मक है। ब्रह्मका द्विविध प्रकाश साधककी धारणाके उपयोगी है—एक शब्द और दूसरा ज्योति। नादसे इष्ट मन्त्रका स्फुरण होता है एवं ज्योतिसे इष्ट मूर्तिका आविर्भाव होता है। श्वास-प्रश्वास नादका बाह्य आकार व प्रकाश हैं। बाहर धारण करके भीतर जाना होता है। इसलिए श्वास-प्रश्वासकी गति शोधनकर और उसकी विकृति दूरकर उसको सफलकर सकनेसे श्वास-प्रश्वास नादके सहित मिल जाते हैं। अर्थात् तब श्वास-प्रश्वास अन्तर्मुख होकर नादमें परिणति लाभ करते हैं। तब उस नादकी संगतिमें प्राणायामके सहित इष्टमन्त्रोच्चारण करते रहनेसे मन्त्र क्रमशः नादमय हो जाता है। यही जपका उद्देश्य है—इसीका नाम है कुंडलिनीकी वक्र-गति दूर होना अथवा जागरण।

श्वास-प्रश्वास प्राणवायुकी क्रिया होनेके कारण प्राणवायुका बाह्य प्रकाश

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। प्राणके साथ मनका घनिष्ठ सम्बन्ध है—दोनों एक साथ रहना और काम करना पसंद करते हैं। वायुकी वक्रगति अर्थात् प्राणकी चंचलताके कारण मन चंचल होता है। फिर मनकी चंचलताके कारण वासनाका उद्भव और वायु-की गति वक्र होती है। मन जितना वृत्तिशून्य होगा प्राण उसी परिमाणमें सुषुम्ना मार्गमें प्रवेश करेगा। मंत्र भी तब नादमय होकर चेतन हो उठेगा। प्राणवायुकी क्रिया शान्त हो जानेसे मन चिन्ताशून्य होकर अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठा लाभ करता है। प्राणवायुका नादके आकारमें परिणत होकर क्रमशः बिन्दुमें स्थिति लाभ करनेसे मंत्रसिद्धि होती है। वायुके गतिहीन शून्य प्रदेशमें अर्थात् हृदयाकाश अथवा अनाहत चक्रमें मनको ले जानेसे मन शान्त भाव धारण करता है। तब उसके भीतरकी आत्मस्मृति जाग उठती है। मन अपने प्रियतम आत्माका संग न मिलनेके कारण बाहर घूमता फिरता था। किन्तु हृदयमें आत्माका संधान एक बार पा जानेसे इसी स्थानमें शान्त एवं समाहित होकर आनन्दसागरमें निमग्न रहता है। इसीलिए हृदयमें ही ईश्वरके चिन्तनकी व्यवस्था शास्त्रमें पाई जाती है। हठयोगी प्राणको अवलम्बनकर प्राणकी सहा-यतासे चित्त स्थिर करनेकी चेष्टा करते हैं। राजयोगी मनके तत्वसे अवगत होकर, मनको स्थिरकर और प्राणको संयमितकर, भगवत्प्रिय-कार्य साधनमें नियुक्त रहते हैं।

जपके विषयमें अनुसंधान करते समय मुझे अनेक सम्प्रदायोंके साधकोंका संग मिलनेका सुयोग हुआ था एवं नाना प्रकारके जपकी प्रणालियोंका विवेचन सुन मैं विस्मित हो गया था। परन्तु यह पता लगा कि सभी सम्प्रदायोंके साधकोंने अपनी–अपनी निर्दिष्ट प्रणाली द्वारा जप करके विशेष उपकार लाभ किया है। जपके सम्बन्धमें जो-जो रहस्य अनुभवमें आये उनका कुछ सामान्य आभास यहाँ दिया जाता है।

(१) किन्हीं सम्प्रदायोंमें देखा कि वे केवल ॐकार मंत्रका अवलम्बनकर जप करते हैं। वे सहस्रारके ऊर्ध्वदेश (गुणातीत प्रदेश) से जप आरम्भकर सृष्टि-तत्वमें प्रवेश करते समय 'अ'कार, उसके नीचे स्थिति तत्वमें 'उ'-कार एवं पुनः ऊपर उठते समय लयतत्वमें 'म'-कार उच्चारणकर फिर अव्यक्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

धाममें पहुँचनेकी चेष्टा करते हैं। दृष्टान्त रूपसे ये लोग जल और तरंगका उल्लेख करते हैं। शान्त जलसे तरंगकी उत्पत्ति होती है, अल्प समयके लिए तरंगमें स्थिति रहती है और पुनः तरंग शान्त जलमें लीन हो जाती है। सृष्टि अकारभाव अर्थात् विष्णु भावकी द्योतक है।

(२) गुरु साधकको भूमि निर्देश कर देते हैं। इनमें भी दो दल देखनेमें आये। एक दल जपके समय अपने निर्दिष्ट चक्रसे सहस्रार तक यातायात करते हैं। दूसरे उस निर्दिष्ट भूमिके केन्द्रसे परिधि तक यातायात अवलम्बनकर जप करते हैं और क्रमशः परिधि छोटी होकर केन्द्रमें लीन हो जाती है। तब साधक ऊपरके चक्रमें आरोहणकर वहाँकी भूमि लाभ करता है। इन साधकोंके मतानुसार मूलाधारसे सहस्रार तकका सुषुम्ना मार्ग सब चक्रोंमें वर्तमान है। ये केवल मंत्रका भाव अवलम्बनकर चक्रके केन्द्रसे परिधि तक जपके साथ यातायात करते रहते हैं।

(३) कोई-कोई साधक मूलाधारसे चढ़ने-उतरनेके साथ-साथ जपका कार्य साधन करनेकी चेष्टा करते हैं। इनका कहना है कि साधारण जीवका मन निम्नस्तर मूलाधारमें पड़ा रहता है। जो जहाँ अवस्थित है उसे वहींसे आगे बढ़ना होगा। इसलिये प्रथमावस्थामें जपका कार्य मूलाधारसे प्राणस्रोतकी गतिको अवलम्बनकर आरम्भ करना चाहिए, धीरे-धीरे बढ़ते हुए सहस्रार तक पहुँचनेकी चेष्टा करनी चाहिए और वहाँसे फिर मूलाधारको लौटना चाहिए। ये ही साधक उन्नतावस्थामें आज्ञाचक्रके भी ऊपरकी भूमि लाभकर वहाँसे प्रथम बार मूलाधारमें नीचे आकर सहस्रारमें लौट जानेकी चेष्टा करते हैं। इनकी गति प्रथम बार ऊपर (भगवद् धाम) से मूलाधारकी तरफ होती है, तत्पश्चात् आरोहणक्रमानुसार पुनः मूलाधारसे सहस्रारकी तरफ। इनकी स्थिति विश्राम सहस्रारमें जाकर लाभ होता है। इनमें कोई–कोई कहते हैं कि 'मरा मरा' जप करके 'राम' में पर्यवसित होना पड़ेगा। 'रा'-कारेण बहिर्याति, 'म'-कारेण विशेत् पुनः। 'रा' उच्चारणकर परिधिकी ओर, मूलाधारको ओर एवं 'म' उच्चारणकर केन्द्रकी ओर, सहस्रारकी ओर, जानेकी चेष्टा करनी होगी।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) कोई-कोई साधनकी विभिन्न अवस्थाओंमें विभिन्न मंत्र जप करनेका उपदेश करते हैं और कोई-कोई साधनकी विभिन्न अवस्थाओंमें एक ही मंत्रका रहस्य आस्वाद करनेके लिए कहते हैं। इनमें प्रथम दलके साधक प्रथमावस्थामें शुद्धि लाभके लिए शक्तिमन्त्रका जप करते हैं, शक्तिकी सहायताकी प्रार्थना करते हैं। तत्पश्चात् एकत्वानुभूतिमूलक अद्वैत मन्त्रका और अन्तमें एकसे ही बहुत्वमूलक मन्त्रविशेषका जप करते हैं। कोई-कोई साधक भिन्न-भिन्न अवस्थामें एक ही मन्त्रका विभिन्न भाव अवलम्बनकर जप करनेका उपदेश करते हैं। जैसे 'तत्वमसि' मन्त्रके साधकोंमें प्रथमतः जपके समय 'मैं उनका हूँ और किसीका नहीं, मैं केवल उन्हींको देखूँगा, उन्हींका चिन्तन करूँगा, उन्हींका कार्य करूँगा'—यह भाव अवलम्बन करते-करते 'मेरा' अर्थात् 'त्वं' भाव क्रमशः कम हो जाता है और 'तत्' भाव प्राधान्य लाभ करता है। अन्तमें 'त्वं' भाव शोधित होकर मानो 'तत्' में पर्यवसित हो जाता है। कहा जाता है कि श्रीगौरांगदेव इसी प्रकारके भावद्वारा, 'तत्त्वमसि' जपके फलस्वरूप, क्रमशः राधाभावमें विभोर हो गये थे, और उस राधारूप आधारके द्वारा कृष्णका अनुप्रवेश उपलब्ध करते-करते कृष्णमय हो जाते थे जिसके परिणामस्वरूप रामानन्दने गौरांगदेवके भीतर राधाभावद्युति—सुबलित कृष्णरूप दर्शन किया था।

(५) कोई-कोई अपनी इष्ट मूर्ति सामने रखकर व्याहृतिकी सहायतासे इष्ट मूर्तिको अपने भीतर आनयन करते हैं, बीज उच्चारण उसमें तन्मयता लाभकर अपने जीवनका लक्ष्य निर्णय करते हैं, तत्पश्चात् देवतातत्व उच्चारण कर अपने सब तत्वोंमें इष्टके सब तत्व उपलब्धकर इष्टमय हो जानेकी चेष्टा करते हैं। साधन-राज्यका—विशेषतः जपतत्त्वका—अनुसन्धान करनेमें अनेक प्रकारके रहस्य उद्घाटित होते हैं। जपतत्त्वके सम्बन्धमें प्रायः सर्वत्र कुछ न कुछ नवीन अनुभवमें आता है।

नामजपके सम्बन्धमें बहुत चर्चा सुनी जाती है। शास्त्र कहते हैं कि नामजपके द्वारा जगत् सृष्ट है—'नामरूपाभ्यां व्याकृतं जगत्'। इसमें रूपके अन्तर्गत है अन्नमय कोश एवं नामके अन्तर्गत हैं प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश। इनके ऊपर नामी हैं। रूपके (अन्नमय कोशके)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

 CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जगत् आरम्भ करके, प्राणमय कोशादि चारों कोश भेदकर; नामीके निकट जाना होगा। तत्पश्चात् नामीके निकटसे अवतरण करते समय नामीके आनन्द, नामीके रस और नामीकी शक्ति द्वारा सब कोशोंको अभिषिक्तकर रूपजगत्में उतरना होगा। तभी नाम-रूप कार्य साधित होगा। यथार्थ वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा नामजप साधित हो जानेसे वास्तवमें देहके सब तत्व अमृतसे अभिषिक्त हो जाते हैं।

यज्ञ

कर्मसे जगत्का सृष्टि-स्थिति-लय साधित होता है; कर्म ही यज्ञ है। समस्त जगत् एक विराट् यज्ञशाला है। इस यज्ञके समस्त त्रिपुटी—होता-हवि-हवन, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन—एकमात्र ब्रह्म हैं। यह महायज्ञ जगद्व्यापी है। हम सज्ञानसे अथवा अज्ञानसे इस महायज्ञका निर्दिष्ट अंश पूरण कर रहे हैं—यह जानकर अपने समस्त कामोंको इस महायज्ञकी संगतिमें साधितकर सकनेसे अर्थात् अपने सब कामोंको भगवदिच्छा पूरण करनेमें नियुक्तकर सकनेसे, हमारे सब काम यज्ञमें परिणत हो जायँगे। इसलिए भगवत्-तृप्तिके, भगवत्-प्राप्तिके, अनुकूल सब कामोंको 'यज्ञ' कहा गया है। अन्योन्य-व्यवच्छेदक अहंतत्व हमारे व्यष्टि देहादि-को समष्टिसे पृथक् दिखाकर एक अनर्थकी सृष्टि करता है। इसीके कारण आत्म-पर, सुख-दुख, आदि द्वन्द्व भाव देखनेमें आते हैं। अहंकार दूरकर व्यष्टि तत्वको समष्टि तत्वसे अभेद जानकर—व्यष्टिको समष्टिका अंगीभूत समझ-कर—समष्टिकी संगतिमें ही व्यष्टि चल रहा है यह अनुभव करना ही समस्त यज्ञादिका मुख्य उद्देश्य है।

प्राचीन वैदिक युगमें कर्म मात्रको ही यज्ञ कहा जाता था। समाजमें जिन कार्योंमें बहुत लोग एकत्रित होकर उत्सव मनाते थे, आनन्द करते थे, उन्हींका साधारण नाम यज्ञ था। क्रमशः भगवत्-प्राप्तिके अनुकूल कर्मका नाम यज्ञ रखा गया। गीतामें द्रव्ययज्ञ, जपयज्ञ, तपोयज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादिका उल्लेख पाया

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाता है। इनमें ज्ञानयज्ञको प्रधानता स्वीकृत हुई है। भगवान सर्वव्यापी हैं, सर्वत्र उनका दर्शन, ध्यान और सेवा ज्ञानयज्ञ रूपमें वर्णित है। अनासक्त फलाकांक्षावर्जित होकर जीवके कल्याण एवं शान्तिके लिए, भगवत्-तृप्तिके लिए, भगवत्-प्राप्तिके लिए, अनुष्ठित कर्मको यज्ञ कहा गया है। जीवहितार्थं निष्काम कर्ममें, जीवसेवाके लिए, भगवत्-प्राप्तिके लिए, सर्वापेक्षा प्रधान है स्वार्थ-त्याग परहितार्थ अपना जीवन दान करना, अपनेको यज्ञके पशुरूपमें अर्पण करना। प्राचीन यज्ञमें इड़ाभक्षण एक प्रधानकर्म था। यह इडा या यज्ञभाग, यज्ञ में प्रदत्त द्रव्य—यज्ञके फलको सब मिलकर भोग करते थे। भगवान ईसाको यज्ञका पशु वर्णित किया गया है; कारण उन्होंने जीवके कल्याणके लिए अपना जीवन दान कर दिया था। यज्ञमें अर्पित पशुके रक्त व मांस भक्षणकी प्रथा प्रायः सभी धर्मोंमें देखी जाती है। यह मांसादि भक्षणका अर्थ है सर्व प्रकारसे उनके सदृश होनेकी चेष्टा करना अर्थात् भगवत्-तृप्त्यर्थ अपना जीवन उत्सर्ग करना। सार तत्व है भगवत्-प्राप्तिके हेतु कर्म। पहले कहा गया है कि यज्ञोंमें ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। ये ज्ञान विशिष्टाद्वैत एवं शुद्धाद्वैत तत्व हैं। व्यष्टिभावको समष्टिभावमें आहुति देकर विशिष्टाद्वैत तत्व आस्वाद करनेकी प्रणाली एवं समष्टि स्थूलादि तत्वोंको क्रमानुसार समष्टि सूक्ष्म, कारण एवं परमात्म-तत्वोंमें आहुति देकर शुद्धाद्वैत तत्व आस्वाद करनेकी प्रणाली कालान्तरमें ज्ञानयज्ञ नामसे वर्णित हुई।

हवन

जगत्में केवल एक भगवान हैं; जीव-जगत्-रूप उनकी देह है। जगत् भी पूर्ण है, जीव भी पूर्ण है। अनन्त वेष धारणकर, अनन्त रूपमें, अनन्त भावोंमें, हमारे लीलामय अनन्त देव सबके भीतरसे अनन्त लीला-रस विस्तार किये हुए हैं। किसी वस्तुको खण्डित करनेके लिए तदतिरिक्त एक दूसरी वस्तुकी आवश्यकता होती है। अखण्ड तत्वको केवल कल्पना जगत्में ही खंडित किया जा सकता है। तभी तो हमारे 'अहं' तत्वने एक काल्पनिक आत्म-पर द्वन्द्वभाव

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टकर जगत्को इतना अशान्त कर दिया है। फलतः हम अहंकारवश आत्माका नित्य सर्वगत भाव भूलकर, 'आत्म-पर' भाव सृष्ट कर, 'अपने' सुखके लिए 'दूसरे' का अनिष्ट करनेमें दुविधा बोध नहीं करते। यह काल्पनिक भेद भाव या द्वन्द्व भाव दूर करनेके लिए ही हमारी वैदिक हवन क्रिया है। अन्नमयादि व्यष्टि पंचतत्व जगद्व्यापी समष्टि पंचतत्त्वके अच्छेद्य अंश हैं और उसीकी संगत्यनुसार उसीके कार्यमें लगे हैं। प्रत्येक व्यष्टि तत्वको समष्टिगत उसी तत्वमें आहुति देकर, अपना व्यष्टि भाव दूर कर, समष्टिगत भाव उपलब्ध करना हवनका प्रथम उद्देश्य है। इसके फलस्वरूप साधक अनुभव करता है कि जगत्में एकमात्र स्थूल देह है, उसमें लीला कर रहे हैं एकमात्र प्राण, एकमात्र मन, एकमात्र आत्मा। तब साधक एक समरसमें निमग्न होकर लीलामय श्रीभगवानका लीलातत्व आस्वाद करता है।

हवनकी क्रिया—पहले व्यष्टि भावको समष्टि भावमें आहुति देना। व्यष्टि अन्नमयकोशको समष्टि अन्नमयकोशमें आहुति देनेसे केवल एक अन्नमयकोश रह गया—इसका मन्त्र है "अन्नमयाय स्वाहा इदमन्नम्"। तब अन्नमयकोशकी सब चिन्ता दूर हो गई और अपना प्राणमय कोश प्रस्फुटित हुआ। क्रमशः एक समष्टिव्यापी महाप्राण अनुभवमें आया। हमारा व्यष्टि प्राण उसका अच्छेद्य अंश है। जब व्यष्टि प्राणको समष्टिप्राणमें आहुति दी तो एक समष्टि प्राण अनुभवमें आया—इसका मन्त्र है "प्राणमयाय स्वाहा एष प्राणः"। प्राण शान्त हो जानेके बाद मनको ग्रहण किया। क्रमशः एक समष्टि मन दृष्टिगोचर हुआ (There is a mind common to all)। मालूम पड़ा कि व्यष्टि मन समष्टि मनका ही अंश है और उसीकी संगतिमें चलता है। व्यष्टि मनकी समष्टि मनमें आहुति दी--इसका मन्त्र है 'मनोमयाय स्वाहा एतन् मनः'—तो मनकी वृत्ति लोप हो गई और विज्ञानतत्व जागरित हुआ। पूर्ववत् व्यष्टि विज्ञानकी समष्टि विज्ञानमें आहुति दी—इसका मन्त्र है 'विज्ञानमयाय स्वाहा एतद् विज्ञानम्'—तो आनन्दतत्व अनुभवमें आया। व्यष्टि आनन्दकी समष्टि आनन्दमें आहुति दी—इसका मन्त्र है "आनन्दमयाय स्वाहा एष आनन्दः"—तो एकमात्र आनन्द रह गया। सब मिलाकर अब रहे एक सर्वव्यापी आत्मा और उसका आवरण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं प्रकाशयंत्ररूपमें समष्टिभूत पंचकोश अर्थात् जीव-जगत्—'ब्रह्म देही और जगत् उसकी देह'—यह विशिष्टाद्वैत अनुभूति है। तत्पश्चात् समष्टिगत अन्नमय-की समष्टि प्राणमें आहुति देनेके फलस्वरूप अन्नमय प्राणमें लय हो गया, समष्टिगत प्राणकी मनमें आहुति देनेके फलस्वरूप प्राण मनमें लय हो गया, फिर समष्टि-गत मनकी विज्ञानमें आहुति देनेसे मन विज्ञानमें लय हो गया और समष्टिगत विज्ञानकी आनन्दमें आहुति देनेसे एक समष्टिगत आनन्द रह गया। इस आनन्द-की ब्रह्ममें आहुति देनेसे केवल एकमात्र ब्रह्म रह गया और 'एकमेवाद्वितीयम्' शुद्धाद्वैत तत्त्व अनुभवमें आया। इन आहुतियोंके मन्त्र हैं—"अन्नमयाय स्वाहा", "प्राणमयाय स्वाहा", "मनोमयाय स्वाहा", "विज्ञानमयाय स्वाहा", "आनन्द-मयाय स्वाहा"। विशिष्टाद्वैत एवं शुद्धाद्वैतकी अनुभूति ही हवनका उद्देश्य है।

स्मरण रखना होगा कि 'एक' ही लीलाके बहाने 'बहु'-रूपमें प्रतीयमान हुए हैं। इस 'बहु' को धीरे-धीरे उसके भीतरका भेदभाव दूर करके एकतत्वमें पर्यवसित करनेका नाम ही है हवनतत्व। यज्ञ कर्म-प्रधान है—कर्मकांड द्वारा विवेचित है। यज्ञ भगवानका कार्य है। जीवके कल्याणके लिए भगवानका आत्मत्याग-स्वार्थत्याग 'पुरुषमेध' यज्ञ है। नरमेधयज्ञमें नर यथासम्भव पूर्णता लाभ करके, अपने स्वार्थको सम्पूर्णतः विसर्जन कर, निःस्वार्थ होकर, भगवत्कार्य-में आत्मोत्सर्ग करता है। यज्ञके भीतर हम जीवके कार्यको भगवत्कार्यमें परिणत करनेका कौशल देखते हैं। हवन साधारणतः लययोगप्रधान है, ज्ञानयोगीकी साधनाके अन्तर्गत है। प्रथमतः व्यष्टितत्त्वोंको समष्टितत्वोंमें आहुति देकर एक विशिष्टाद्वैत भाव स्थापित करना, तत्पश्चात् विशिष्टाद्वैत भावोंको एक अखंड अद्वय तत्वमें आहुति देकर 'एकमेवाद्वितीयम्' तत्व आस्वाद करना ही हवनका लक्ष्य है। कहना अनावश्यक है कि हवन लयप्रधान है—सब विवर्तन या परिणति दूरकर एक अखंड अद्वय सत्तामें पर्यवसित होनेका उपाय है। हवन ज्ञानयोगीके लिए अवलम्बनीय है, यज्ञ कर्मयोगीको अनुष्ठेय है और इन दोनोंके मिलनेसे राजयोग साधित होता है। हमारे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण कर्मकांड और ज्ञानकांडका विवाद दूरकर दोनोंमें एक अपूर्व समन्वय स्थापन कर राजयोगकी प्रतिष्ठा कर गये हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विसर्जन

भगवानके विषयमें शास्त्र और गुरुसे सामान्य ज्ञान लाभकर, गुरुके उपदेशानुसार अपने इष्ट विग्रहमें जो कुछ भगवत्तत्वके सम्बन्धमें समझा उतना आरोपकर—प्राण-प्रतिष्ठा व बोधनादि द्वारा इष्ट-विग्रहको संजीवितकर—न्यास, उपचार-समर्पण, आत्मनिवेदन और ध्यानादिकी सहायतासे भगवत्तत्व अनुभव करनेकी इतने दिन चेष्टा की। गुरुके आशीर्वाद और भगवत्कृपासे इतने दिन बाद मेरी इष्टमूर्तिके भीतरसे इष्टतत्त्वके स्फुरणने मुझको मुग्ध एवं समाहित कर दिया। सब तत्त्वोंमें, प्रकृतिमें सर्वत्र, इष्टतत्त्वका स्फुरण क्या चीज है यह अब अनुभवमें आने लगा। आज अपनी इष्ट-मूर्तिका ध्यान करते-करते पहले बाह्यज्ञान जाता रहा, अपना अस्तित्व लोप हो गया, स्वयं मानो इष्टमय हो गया, इष्टके अतिरिक्त जगत्‌में और कुछ नहीं रह गया। फिर थोड़ी देरके बाद जब बाह्य ज्ञान हुआ—जब अपने शरीरकी तरफ मन गया—तो देखा कि मेरी त्रिविध देहके प्रत्येक तत्त्वमें मेरे जीवन्त इष्टविग्रह पूर्णरूपमें विराजित और लीलारत हैं। इष्ट तत्त्व अब मेरे बाहर नहीं हैं। वे अब मेरे भीतर प्रत्येक तत्त्वमें प्रत्येक अनुभूतिमें पूर्णरूपमें विराजित हैं। बाहरकी मृन्मय इष्टमूर्त्तिकी अब आवश्यकता नहीं रही। उन्होंने मेरे भीतरकी ज्ञानगंगामें निमज्जित होकर मुझे तन्मय कर किया। इष्टका विसर्जन किया जाता है अपने भीतरकी ज्ञानगंगामें। प्रथमाधिकारीका बाहरकी गंगामें विसर्जन केवल एक प्रतीकमात्र है, जैसे शरीरकी अस्थियोंका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए विद्यार्थीगण एक कंकालकी सहायता लेते हैं। भीतर ज्ञान प्रकाश हो जानेपर बाहरके प्रतीककी आवश्यकता नहीं रहती।

नावार्थी हि भवेत्तावद् यावत् पारं न गच्छति।
उत्तीर्णे तु सरित्पारे नावा वा किं प्रयोजनम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उल्काहस्तो यथा कश्चिद् द्रव्यमलोक्य तत्त्वतः।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य पश्चाज् ज्ञानं विसर्जयेत्॥

जिनके लिए जप-तपादि साधना की थी, वे हृदयद्वारपर खड़े हैं। अब और जप-तपादिमें व्यस्त रहनेकी क्या आवश्यकता है।

प्रसाद-वितरण

हमारी पूजामें भगवानके आवाहनके समय जगत्के समस्त जीवोंको निमंत्रित किया जाता है क्योंकि एक जीवकी भी अनुपस्थितिमें समष्टिभूता माँका आगमन सुसिद्ध नहीं होता—पूजा द्वारा माँका तृप्तिविधान एवं माँकी प्रसन्नता-का लाभ साधित नहीं होता। पूजाके समय भगवानके आवाहनके साथ-साथ, समस्त देवता, समस्त ऋषिमुनि तथा समस्त जीवोंको आवाहन करनेकी व्यवस्था देखी जाती है; कारण भगवान समष्टिभूतात्मा, विश्वात्मा, विश्वरूप हैं। इसके बाद स्वस्तिवाचनके समय हम सब जीवोंके ऋणी हैं, यह मनमें विचारकर और अपनेको इस ऋणको परिशोध करनेके अयोग्य जानकर, भगवानसे सब जीवोंके लिए कल्याण प्रार्थनाकर, शुभ कार्यमें सब जीवोंका आशीर्वाद प्राप्त करनेकी व्यवस्था है। एक जीवके भी असन्तुष्ट रह जानेसे पूजा भगवानके ग्रहणयोग्य नहीं हो सकती। पूजाके भीतर हम अपनी फलाकांक्षा, वृथा कर्तृत्वाभिमान, प्रतिष्ठाका मोहादि त्यागकर, सब कार्यमें भगवानका लीला-रहस्य आस्वाद करनेका सुयोग पाते हैं।

पूजामें प्रणामके समय अनुभव करना होगा कि हमारे सब तत्व भगवानको अर्पित हो गये, भगवान ही प्रकृत कर्ता हैं, हम केवल निमित्तमात्र हैं। हमारे द्वारा जिससे भगवदिच्छा पूर्ण सफलता लाभ कर सके, हम जिससे भगवदिच्छा पूरण होनेमें बाधा न देकर भगवल्लीलामें सहायक हों, हमारे सब तत्व श्रीभग-वानकी लीला प्रचार करनेमें यंत्रस्वरूप हों—यह तत्व अन्तरमें उपलब्धकर हम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीभगवानके निकट, उनके विधानके निकट, नत होकर सम्पूर्णतः आत्मसमर्पण करनेमें समर्थ होते हैं।

प्रार्थना-तत्वमें हम भगवदिच्छा पूर्ण करने और सब जीवोंका कल्याण साधन करनेके अतिरिक्त भगवानसे और कुछ नहीं माँगते। यह तत्व अन्तरमें उपलब्धकर हम अपने समस्त तत्वोंको भगवदिच्छा पूरण करनेके लिए, भगवज्जीवके कल्याण-साधनके लिए, पूर्णतः उत्सर्ग करनेमें समर्थ होते हैं। तब हमारा अपना कहकर कुछ नहीं रह जाता। हमारा जो कुछ था वह सब भगवानको अर्पित हो गया। अब हम भगवानको अर्पित सब पदार्थ भगवानके प्रसादरूपमें ग्रहणकर समस्त जीवोंकी सेवामें उत्सर्ग करनेकी चेष्टा करते हैं। तब हमारा कार्य हो जाता है समस्त जीवोंकी सेवा, समस्त जीवोंका तृप्ति-विधान, समस्त जीवोंकी पूर्णता-लाभमें—भगवत्प्राप्तिमें—सहायक होना। तब हमारे उपार्जित एवं हमारे भगवानको अर्पित सब द्रव्य प्रसादरूपमें ग्रहण करनेके पात्र हो जाते हैं सब जीव। मैं भी उन जीवोंमें एक हूँ, इसलिए मुझे भी अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए भगवानको अर्पित पदार्थ सबको वितरणकर जो अवशिष्ट रहे उसको स्वयं ग्रहण करनेकी व्यवस्था देखी जाती है।

"जगत्में जितने भोग्य पदार्थ हैं उनमें मेरा कुछ नहीं है, सभी मेरे प्रियतम श्रीभगवानके हैं। इसलिए भोग्यमात्रको ही उनको निवेदन करनेकी व्यवस्था देखी जाती है। इसके फलस्वरूप अपना भोक्तृभाव कट जाता है और स्वामित्व-बोध खुल जाता है। समस्त भोग्य पदार्थ उनको अर्पण करनेसे उनकी दृष्टि सब वस्तुओंपर पड़ती है जिसके फलस्वरूप वे भोग्य-विषय फिर हमारे बन्धनका कारण नहीं हो सकते। ये सब उनके दृष्टिपातसे अमृतरूपमें परिणत हो जाते हैं एवं स्वभावतः ही उनसे प्रत्यागत होकर साधक-जीवके पास लौट आते हैं। यह श्रीभगवानकी प्रसन्नताका निदर्शन होनेके कारण प्रसादरूपमें अभिहित है। तब इनमें कोई मालिनता नहीं रहती और इनके ग्रहणसे साधकको विषय-भोगके बन्धनमें पतित नहीं होना पड़ता। यह प्रसाद अर्थात् प्रत्यक्ष भगवत्कृपा अपने साधन-बलसे प्राप्त होनेपर भी विश्वकल्याणके लिए अर्थात् समस्त जगत्के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुख व हितके लिए सर्वत्र वितरण करना होता है; अवशिष्ट किंचित् मात्र अमृत अर्थात् कणिकामात्र प्रसाद स्वयं ग्रहण करना होता है।"

साधकका जीवन भगवत्कार्य साधनमें उत्सर्गीकृत होता है। भगवानका कार्य उनके प्रियतम जीवके कल्याणकी पूर्णता लाभमें सहायक होता है। इसलिए हमारी समस्त साधनाका उद्देश्य है सब जीवोंका प्रकृत कल्याण साधन करना—यह सर्वदा याद रखना होगा। श्रीभगवान विश्वरूप हैं, जीव उनका लीलास्वीकृत विग्रह है। भगवानका किसी विषयमें प्रयोजन न होनेपर भी जीवकी सेवा ही भगवानकी सेवा है, जीवके तृप्तिविधानसे ही भगवान तृप्त हो जाते हैं—इस तत्त्वका मर्म उपलब्ध करना होगा। अपनी समस्त वृत्तियोंको पूर्णरूपसे परिणतकर जीवसेवामें नियुक्त करना ही हमारी पूजाका मुख्य उद्देश्य है।

सब कामोंमें पूजा

हिन्दू शास्त्रका मुख्य कथन है—श्रीभगवान हमारी सत्ता, ज्ञान और आनन्दके मूल प्रस्रवण हैं; वे सर्वव्यापी हैं; पूर्णस्वरूप हैं; हमारी कर्म, ज्ञान व भक्ति द्वारा पूर्णता लाभ करनेकी चेष्टा ही भगवदुपासना है; यही जीवनका सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है। इसलिए हिन्दु ऋषि सर्वत्र भगवद्दर्शन, सब जीव-जगत्में भगवद्ध्यान एवं सर्वजीवकी सेवाको प्रधान कर्त्तव्य कह गये हैं। भगवान शङ्कर ने कहा है—"**पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः। संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरः यद् यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भोः तवाराधना**॥" इन्द्रियोंसे विषय इस प्रकार ग्रहण करना होगा जिससे हम विषय-ग्रहण द्वारा विषयोंके अन्तरात्मा विषयोको प्राप्त होकर विषय-ग्रहणको पूजामें पर्यवसित कर सकें। इसके फलस्वरूप हमारी निद्रा समाधिमें, भ्रमण भगवत्-प्रदक्षिणमें, उच्चारित वाक्य भगवानके स्तोत्रमें, भोजन भगवानकी आहुतिमें तथा अन्य समस्त कार्य पूजामें परिणत होनेका सुयोग लाभ करेंगे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सब कामोंको पूजामें परिणत करनेके लिए हमें सर्वप्रथम विधाताको (भगवानको) एवं विधान द्वारा उनके आत्मप्रकाशतत्त्व को अच्छी तरह हृदयंगम करना होगा। विधाताके ऊपर प्रेम और उनका प्रियकार्य साधन ही हमारे जीवनका मुख्य उद्देश्य है, यह भली-भांति समझ लेना होगा। अपनी समस्त वृत्तियोंको पूर्ण परिणतकर, उनके भीतरका अपूर्व समन्वय आविष्कारकर, अपनी सब वृत्तियोंको भगवत्-प्रियकार्य साधनमें नियुक्त करना होगा। हमारी ज्ञानार्जनी वृत्ति उनके स्वरूप अवधारणमें और उनकी इच्छा जाननेमें व्यस्त रहे; हमारी कार्यकारिणी वृत्ति उनकी इच्छाको हमारे समस्त कार्यकलाप द्वारा पूर्णतया सफल करनेमें सचेष्ट रहे; हमारी चित्तरंजनी वृत्ति आनन्द स्वरूपमें सर्वदा समाहित रहे। अर्थात् हमारा ज्ञान भगवानका स्वरूप तथा उनके विधान, इच्छा और कार्यकलापको जानकर उनकी सब इच्छाओंको हमारे जीवनके सब कार्यकलाप द्वारा सफल करनेकी चेष्टा करे। इसके फलस्वरूप हमारी समस्त इन्द्रियाँ भगवद्‌भिमुखी हो जायँगी। सब कामोंकी पूजामें परिणत करनेके लिए तीन विषय विशेषतः जानने योग्य हैं। प्रथमतः जीव-जगत् एवं शिवतत्त्व और दोनोंका परस्पर सम्बन्ध, द्वितीयतः व्यष्टि-समष्टि तत्त्व, तृतीयतः कर्मरहस्य।

जीव-जगत् एवं शिवतत्व—जीव शिवका अंश अथवा प्रतिबिम्ब है, जीव-जगत् शिवका प्रकाश है, जीव-जगत्‌के भीतरसे शिव आत्मप्रकाश करते हैं। शिव पूर्ण हैं, जीव अपूर्ण है। जीव साधना द्वारा संस्कार और अज्ञानता दूर करके पूर्णत्व लाभ करनेपर शिवसे तन्मयता लाभ कर सकता है, शिवको जान सकता है, समझ सकता है, प्राप्त कर सकता है। जीव वेष धारण किया हुआ शिव हैं।

व्यष्टि-समष्टि तत्व—शिव एक अखण्ड अद्वय तत्त्व हैं। जीव उसी अखण्डका कल्पित प्रकाश है। अखण्ड खण्डित नहीं हो सकता, न होता है—केवल खंडित ऐसा प्रतीत होता है। यह कल्पित खण्ड भाव दूर करके अखण्डमें पर्यवसित होनेके लिए ही सब साधना है। रज्जु सर्प नहीं है—सर्पभाव कल्पित है। रज्जुको न जाननेके कारण ही यह भूल होती है। बन्धन दुःख कष्ट होता है जब तक स्वरूपोपलब्धि न हो। "अखंडम् खंडयते कथं", अखंडका कौन खंडन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

करेगा ? खंडन करके भेदभाव कहाँ रहेगा ? अज्ञानता ब्रह्ममें नहीं रह सकती—किन्तु ब्रह्मातिरिक्त पदार्थ ही नहीं है। तो फिर यह अज्ञानता कहांसे आती है, कहाँ वास करती है ? जो नहीं जानता उसके मस्तिष्कमें। गणितमें ज्यामिति (Geometry) को न जाननेका भाव तभी तक रहता है जब तक समझमें न आये; समझमें आ जानेके बाद 'न-जानना' नहीं रहता, यह ज्ञान विनाश्य है। इसलिए समस्त साधनाका उद्देश्य है समष्टिभावापन्न होनेकी चेष्टा करना अथवा इष्टोपलब्धि। इष्ट ही समष्टिभावके प्रतीक हैं। कल्पित भेदभाव दूर करना ही साधनाका उद्देश्य है।

कर्मरहस्य—इसके बाद कर्मरहस्य समझना चाहिए। कर्म ब्रह्मोद्भव है, ब्रह्मसे आया हैं। सृष्टि-व्यापार ही कर्म है। जीवकी साधना है—इस कर्मको फिर ब्रह्ममें ले जाना, लययोग साधन करना। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी तत्त्व समझना चाहिए। प्रकृत तत्त्व परा (गुणातीत) अवस्था है। यह क्रमशः पश्यन्ती, मध्यमा भेदकर—कारण, सूक्ष्म अवस्थाएँ भेद करके—वैखरी (स्थूल) अवस्थामें आया है। हमारा यह जगत् वैखरी अवस्था है। कर्म परावस्थामें आता है, पुनः परावस्थामें ही वापस ले जानेके लिए। तरंग जलसे उठती है और जलमें ही पर्यवसित हो जाती है। **इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति क्रियामें सफलता लाभ करती है और पुनः क्रिया ज्ञानके द्वारा इच्छातत्वमें, लीलाके द्वारा स्वरूपतत्वमें, पर्यवसित हो जाती है।** 'एक' ने बहु होनेकी इच्छा की तो ज्ञान (अज्ञानरूपी ज्ञान) आया—यह फिर जीव-जगत्में पर्यवसित हुआ। अब जीवजगत्को पुनः ब्रह्ममें पर्यवसित करना होगा। साधक सृष्टि एवं लयका स्वरूप जानकर उदासीन भावसे लीलातत्त्व आस्वाद करते हुए लीलाके ऊपर चला जाता है। हमारे दर्शन-श्रवणादि सब कर्म ब्रह्मसे आये हैं। ब्रह्म ही मानो रूपान्तरित होकर हमारे ग्रहणयोग्य हुए जीवजगद्रूपमें प्रतीतमान हैं। हमारी साधना होनी चाहिए जीवजगत्के भीतर शिवका दर्शन करना, शिवको स्थापन करना, शिवमें प्रतिष्ठा लाभ करना। जो कारण भी हो हम उनका परा स्वरूप उपलब्ध करनेमें असमर्थ हैं। इसलिए वे हमारे ग्रहणयोग्य हुए वैखरीरूपमें हमारे सामने उपस्थित हैं। उनका सौन्दर्य धारणाके अतीत है इसलिए वे गुलाब आदि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

फूलोंका रूप धारण करके आये हैं। हमारी साधना होनी चाहिए गुलाबके-सौंदर्य-को देखते-देखते परम सुन्दरको ढूंढ़ निकालना। प्रकृत माँ—तात्त्विक माँ (Abstract mother)—धारणाके अतीत हैं। इसलिए वे हमारे समाज-की वैखरी मातृरूपमें उतर आई हैं। हमारी साधना होनी चाहिए इन माताओं-के भीतरसे प्रकृत माँका आवाहन करना, ध्यान करना; पूजा करके, उनको स्वरूपमें प्रतिष्ठित करके ढूंढ़ निकालना। प्रकृत बाल-गोपाल, कुमारी-भगवती, आदि-दम्पति हमारे ग्रहणयोग्य न होनेके कारण वे लड़का, लड़की, पति-पत्नी रूपमें आये हैं। हमारी साधना है इन सब वैखरी रूपोंमें उनके परा रूपको प्रस्फुटितकर, इनको परामें पर्यवसित कर, परा बालगोपाल, परा कुमारी भगवती और परा आदि-दम्पतिको देखना, जानना और पूजा करना। इसके लिए आवश्यकता है सत्य-प्रतिष्ठा, प्राणप्रतिष्ठा और आनन्दप्रतिष्ठाकी; अंगन्यास, कर-न्यास और व्यापकन्यासकी; सब रूपोंको, सब सत्ताओंको, भगवत्सत्तामें पर्य-वसित करनेकी; सब आनन्दोंको ब्रह्मानन्दमें पर्यवसित करनेकी; सब सौन्दर्योंके भीतरसे परमसुन्दरके निकट जानेकी; सब रूपोंको शान्त और शुद्धकर भगवत् रूपमें पर्यवसित करनेकी। जान लेना होगा कि वे ही शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुर रूपोंमें हमारे निकट उपस्थित हैं। हमारी साधना है इन सब भावोंको शुद्धकर सबके भीतर भगवद्धामके शान्तादि रसोंका आस्वादन करना। तभी अनुभवमें आयेगा कि वे विचित्र रूप धारणकर, हमारे ग्रहणयोग्य होकर, हमारे सामने उपस्थित हैं। हमारा कार्य है इन सब वैखरी रूपोंके भीतरसे उनके परारूप पराभावको प्रस्फुटितकर उस परमको परा भावमें प्रतिष्ठितकर, उनके प्रकृत स्वरूपको देखना, उनकी पूजा करना। तब उनको जाननेके लिए, समझने-के लिए, ढूंढ़नेके लिए, प्राप्त करनेके लिए जो कुछ करेंगे वही उनकी पूजा होगी। तभी हमारी साधना होगी 'तच्चिन्तनं तत्कथनं अन्योन्यं तत् प्रबोधनं एतदेक-परत्वंच'-रूप ब्रह्माभ्यास; 'तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तादात्मिकाः' इत्यादि होनेकी चेष्टा करना। तभी हमारे स्नान, भ्रमण, आहारादि भगवान्के स्नान, भ्रमण, आहारादिमें पर्यवसित होकर पूजामें परिणति लाभ करेंगे। तभी सर्व-भूतमें उनको देखकर, जानकर, प्राप्तकर, सब जीवोंकी सेवाको उनकी पूजामें परिणत करनेका सौभाग्य लाभ होगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रसंगमें मुझे अपना एक स्वप्न याद आता है। एक दिन रातको मैंने देखा कि एक सुन्दरी लड़की हँसती हुई मेरे पास आई और कहने लगी "यह फूलके पेड़ पानीके अभावसे सूखे जा रहे हैं, इनको पानी दे, स्नान करा।" मैंने एक बालटी पानी पेड़ोंमें डाल दिया। लौटकर देखा तो उस कुमारीका शरीर और कपड़े सब भीगे हुए थे। तब कुमारीने कहा "यह देख मेरा स्नान हो गया।" एक भूखे कुत्तेको देखकर कहने लगी "यह कुत्ता भूखा है, इसे कुछ खानेको दे।" तब कुत्तेको खाना देते ही कुमारी हँसकर कहने लगी "यह देख मेरा खाना हो गया।" इतनी बात करके वह कुमारी न जाने कहाँ चली गई। छोटे लड़के-लडकियोंके भीतर बालगोपाल और कुमारी भगवतीका आवाहन करनेके फलस्वरूप मेरे अनेक संशय निवृत्त हो गये हैं। इनके कथनानुसार चलकर मैंने कई बार मृत्युसे रक्षा पाई है। मेरे गुरुदेव कहते थे "जो कुछ देखो उसको मन ही मन गुरु मानकर भगवद्बुद्धिसे करो। तब देखोगे कि सब पदार्थ भगवद्भावसे विभावित होकर तुम्हारी पूजा ग्रहण करेंगे, तुमको आशीर्वाद देंगे।" सब पदार्थोंमें, सब जीवोंमें, भगवान्‌का आवाहन और ध्यान करो— उनके कार्यकलाप द्वारा जो उनके भीतर वैठे कार्यकर रहे हैं वे ग्रहणयोग्य हो जायँगे। इसके लिए आवश्यकता है सर्वत्र उनके आवाहन और ध्यानकी, सबकी सेवा द्वारा उनकी पूजा करनेकी। भ्रमणके समय मित्रोंके भीतर तथा चारों ओरके दृश्यके भीतर उनकी सत्ता अनुभव करनेकी चेष्टा करो। देखोगे कि तुम्हारा भ्रमण भगवानकी गोष्ठलीलामें पर्यवसित हो गया। सबकी वार्ताके भीतर कौन बोल रहा है। इसको समझनेकी चेष्टा करो। अपने और सबके स्नानाहारादिके समय अनुभव करनेकी चेष्टा करो कि इन सबके भीतर कौन बैठा है, कौन स्नानाहारादि कर रहा है। धीरे-धीरे तुम्हारा स्नानाहार भगवानके स्नानाहारमें पर्यवसित हो जायगा। शयनके समय बिछौनेमें मांकी कोमल गोदका चिन्तन करो। अनुभव करो कि किसके शीतल स्पर्शसे तुम्हारे देह और मनका अवसाद तथा ग्लानि दूर हो जा रही है। इस अनुभूतिसे तुम्हारी निद्रा समाधिमें पर्यवसित हो जायगी। एक फूल अथवा शिशुको देखते समय अनुभव करनेकी चेष्टा करो कि इसके भीतर बैठा कौन लीला कर रहा है, इसकी आंख

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वारा कौन देख रहा है, कान द्वारा कौन सुन रहा है, इत्यादि। ऐसा करनेसे देखोगे कि शिशु बालगोपालमें अथवा कुमारी भगवतीमें परिणत होकर तुम्हारे भगवद्दर्शनके, तुम्हारी भगवत्-सेवाके, सहाय हो जायँगे। खानेके समय अनुभव करो कि तुम्हारे भीतर बैठे कौन खा रहे हैं। यदि वे तुम्हारे भीतर न होते तो तुम्हारे आत्मीय-स्वजन अन्नादिके बदले तुम्हारे मुखमें आग लगाकर तुम्हें श्मशान भेज देते। तब देखोगे कि तुम्हारा खाना भगवदाहारमें पर्यसित हो गया।

सब कामोंको पूजामें परिणत करनेके लिए अनुभव करना होगा कि सब रूप-रस-शब्द-स्पर्श-गन्धके द्वारा वे ही हमारे निकट आये हैं। समस्त रूपोंके भीतर—लोग जिसको सुन्दर कहते हैं केवल उसीके भीतर नहीं प्रत्युत लौकिक दृष्टिसे परम रूपहीनके भीतर भी उनका सौन्दर्य और माधुर्य उपलब्ध करना होगा। समस्त स्पर्शके भीतर—यहाँ तक कि रोग पीड़ामें, प्रहारमें, बिच्छुके काटनेमें भी—उनका स्पर्श अनुभव करना होगा। सब वचनोंमें, सब गन्धोंमें, सब भावोंमें अनुभव करना होगा कि ये उन्हींके कम्पन हैं, उसी सत्के विकास हैं। सब पदार्थोंमें, सब भावोंमें, सब कार्योंमें, केवल उन्हींकी उपलब्धि करनी होगी। समझ लेना होगा कि सब विचित्र भाव, विचित्र कार्य हमारे अधिकारानुसार हमारे उचित प्राप्यरूपमें, हमारे ग्रहणयोग्यरूपमें, उन्हींके आगमन हैं। जहाँ जो कुछ देखो, सुनो या सोचो, उसमें आनन्द सहित आनन्दमय विभूति उपलब्धकर आनन्दमें विभोर हो जाना होगा। किसी इन्द्रियकी मानो उनके अतिरिक्त और कुछ भी ग्रहण करनेकी क्षमता न रह जाय। नमकके एक पुतलेके समान ब्रह्म-समुद्रमें डूबकर, तन्मयता लाभकर, एक अखण्ड आनन्दरसमें अपना सब कुछ विसर्जनकर, अपना पृथक् अस्तित्व तक लोपकर देना होगा। "मिलना है खुदा से तो खुदी अपनी मिटा दे।" पृथक् अस्तित्व यदि रह भी जाय तो अनुभवमें नहीं आयेगा। तभी हमारे भाव और सब काम पूजामें परिणत होंगे। 'एकमेवाद्वितीयम्' का विवर्तन और परिणति दूरकर—सृष्टिके अतीत राज्यमें जाकर कि ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, न था और न हो सकता है, यही चरम व परम तत्त्व है—एक अखण्ड समरसमें निमज्जित हो जाना होगा।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे सब कामोंमें साधारणतः दो विभाग देखे जाते हैं—(१) अपने लिए और (२) दूसरोंके लिए।

अपने लिए सब कामोंको पूजामें परिणत करनेके लिए देखना होगा कि हम क्या-क्या काम करते हैं अर्थात् हमारे द्वारा कौन कार्य कारित होते हैं, यह मन ही मन अनुभव करते हुए सब सृष्ट पदार्थोंमें, सब कामोंमें, सब भावोंमें, सब आनन्दोंमें, अपने-आपको केवल निमित्तमात्र साक्षीस्वरूपमें अवस्थितकर श्रीभगवान-की लीलाका दर्शन करना होगा। कभी-कभी लीला देखते-देखते लीलातीत अखण्ड तत्त्वमें निमज्जित हो जाना होगा। सर्वत्र सत्यप्रतिष्ठा, आनन्दप्रतिष्ठा-को पूर्णतया सफल करना होगा। अनुभव करना होगा कि उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उनकी लीलाके अतिरिक्त और कोई कार्य ही नहीं है। जो कुछ भाव और कार्यरूपमें उपस्थित है वह सब आनन्दमयके आनन्दका स्फुरण अथवा लीलामात्र है।

दूसरोंके लिए अपने सब कामोंको भी पूजामें परिणत करना होगा। बाहरके दृश्योंमें उनका अस्तित्व, उनका कार्यकलाप और उनकी लीला दर्शन करनेकी चेष्टा करनी होगी। एक वृक्षको देखकर सोचेंगे कि 'तुम इस वृक्षके भीतर बीजाकाररूपमें छिपे हुए थे, क्रमशः विकसित होकर फलफूलसे सुशोभित ऐसे सुन्दररूपमें हमारे सामने खड़े हो।' फूलको देखकर सोचेंगे कि 'तुम ही तो इसके भीतर वर्तमान हो। इसका सौन्दर्य हमको अपने परम सुन्दर प्रेमास्पदका स्मरण करा देता है। हे फूलरूपी परमात्मा, तुमको नमस्कार।' इसी प्रकार समुद्रके गाम्भीर्यमें, आकाशके माधुर्यमें, एक शब्दमें सब विभूतिमत पदार्थोंमें, भगवानको आस्वाद करनेकी चेष्टा करनी होगी। इसके बाद देखना होगा कि वे मनुष्योंके भीतर कितने रूपोंमें हमारे निकट उपस्थित हैं। ऋषिगण उनके सब रूपों तथा भावोंको पाँच भागोंमें विभक्त कर गये हैं। वे हमारे ग्रहणयोग्य होनेके लिए शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावों द्वारा हमारे सामने उपस्थित हैं। जो हमारे विशेष परिचित नहीं हैं अर्थात् जिनके साथ हमारा विशेष सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ है वे शान्त भावमें उपस्थित हैं। उन सबके भीतर भगवानके शान्त भावका कार्यकलाप चिन्तन करना होगा; उनके साथ सकल भावमें भगवानके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदर्श मनुष्यरूपमें व्यवहार करना होगा जिससे वे हमको शान्त, शुद्ध, संयत, सर्वभूतहितरत आदर्श मनुष्यरूपमें उपलब्ध कर सकें और उनके सम्बन्धमें हमारा कार्यकलाप भगवानका उद्देश्य साधितकर भगवत्पूजामें पर्यवसित हो सके। इसके बाद जो हमारे सम्मुख मालिक अथवा नौकरके रूपमें उपस्थित हैं उनके निकट हम आदर्श नौकर अथवा आदर्श मालिकके रूपमें उपस्थित होकर, यह विचार-कर कि भगवान इस रूपमें वेष धारण करके आये हैं हम भगवद्बुद्धिसे उनकी सेवा करेंगे जिससे उनकी सेवा हमारी पूजामें परिणत हो जाय। बन्धुओंसे व्यव-हार करते समय विचारेंगे कि हमारे भगवान मानो हमको आदर्श बन्धुरूपमें परिणत करनेके लिए बन्धुरूपमें उपस्थित हुए हैं; बन्धुओंके भीतर भगवानका अस्तित्व उपलब्ध करनेका प्रयत्न करेंगे; समझनेकी चेष्टा करेंगे कि भगवान ही यह वेष धारण करके आये हैं और हम बन्धुओंकी सेवाके भीतर आगत श्रीभग-वानकी सेवा कर रहे हैं। ऐसा करनेसे बन्धुसेवा पूजामें पर्यवसित हो जायगी। इसके बाद अपनी सन्तानके सम्बन्धमें विचारना होगा कि भगवान ही मानो हमारा वात्सल्य भाव बढ़ानेके लिए बालगोपाल एवं कुमारी भगवतीरूपमें आये हैं। इनके भीतर बालगोपाल एवं कुमारी भगवतीका आवाहनकर, जागरितकर, इनकी सेवाको आदर्श बालगोपाल एवं कुमारी भगवतीकी पूजामें परिणत करना होगा। मन ही मन कहना होगा 'हे गोपाल, हे कुमारी भगवती, तुम प्रकट होकर मुझे दर्शन दो, मेरी सेवा ग्रहणकर मेरा जीवन सार्थक करो।' इसी प्रकार माँ-बापको अन्नपूर्णा-विश्वनाथका जीवन्त विग्रह मानकर प्राणप्रतिष्ठा और बोधनकी सहायतासे उनके भीतर अन्नपूर्णा-विश्वनाथको प्रस्फुटित करना होगा। उनकी सेवा जिससे प्रकृत अन्नपूर्णा-विश्वनाथकी सेवामें पर्यवसित हो जाय इसकी चेष्टा करनी होगी। पति-पत्नीके भीतर हम आदर्श दम्पतिका, भगवानके अर्द्ध-नारीश्वर रूपका चिन्तन करेंगे। ये सामने खड़े हों तो इनके भीतर उसी आदर्श-युगलका ध्यान करेंगे, आदर्शयुगलका आवाहन करेंगे। इनके वचन अथवा शरीर-स्पर्शसे भगवानका शब्द या स्पर्श अनुभव करनेकी चेष्टा करेंगे जिससे इनकी सेवा भगवत् सेवामें पर्यवसित हो जाय। सर्वत्र विचारना होगा—'हे भगवान, मैं तो तुम्हारे प्रकृत स्वरूपकी धारणा नहीं कर सकता, इसीसे तो तुम

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरे ग्रहणयोग्य माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नीके रूपमें मेरे निकट समागत हो। तुम मेरी आँखें खोल दो जिससे मैं इनके कार्यकलापके भीतर तुम्हारा दर्शन करनेमें, तुमको उपलब्ध करनेमें, समर्थ होऊँ और इनकी सेवाको तुम्हारी सेवामें पर्यवसित कर सकूँ। तुम मेरी दृष्टिशक्तिको, अनुभवशक्तिको, शुद्ध और वर्धित-कर इनके भीतर अपनेको उपलब्ध करनेका सामर्थ्य दो।'

पूजामें समय-विभाग— पूजाके विषयमें समय-विभाग अनेकांश प्रकृतिगत है। दिन कार्यका, ज्ञान-चर्चाका समय है; रात्रि विश्रामका, आनन्दास्वादनका समय है। प्रभात और सन्ध्याको सन्धिकाल कहते हैं। प्रभातकी गति अकार्यसे कार्यकी तरफ और सन्ध्याकी गति कार्यसे अकार्यकी तरफ होती है। प्रातः जब हम सोकर उठते हैं तब हमारी प्रकृति महामाया मानो हमारी देह और मनकी सब क्षति पूरणकर, हमारी देहमें शक्ति संचारकर, भगवानके प्रियकार्य साधनके लिए हमको संसारके कार्यक्षेत्रमें भेज देती हैं। सन्ध्या समय हम कार्य-क्षेत्रसे श्रान्त देह व क्लान्त मन होकर विश्रामके लिए फिर माँके पास चले आते हैं। यह तत्व विचार करके हमारी प्रातः एवं सायंकालकी संध्यापूजादिमें ऋषियोंने एक सुन्दर भेदभावकी व्यवस्था की है। दिनमें दोपहरका समय हमारे कार्यकी पूर्ण परिणति एवं अर्धरात्रिका समय हमारे विश्रामकी पूर्ण परिणति सूचित करता है। इसके अनुसार भी हमारे कार्य और साधनामें भिन्नता लक्षित होती है। कार्यक्षेत्रमें जानेके लिए हमारे करणीय कार्यका स्वरूप, उसके लिए आवश्यक विषय और भावका चिन्तन और जिससे कर्मफल भगवानको समर्पित हो जाय इसकी एक सुन्दर व्यवस्था देखी जाती है। विश्रामके समय हम मानो माँकी गोदमें प्रत्यागत होकर, माँके ऊपर सम्पूर्ण भार छोड़कर, माँसे मिल जानेका सुयोग पाते हैं।

अष्टकालीय लीलाके आस्वादन द्वारा वैष्णव साधक भगवानके कार्यकलाप-को आठ भागोंमें विभक्तकर, वे कब क्या करते हैं यह तत्त्व आस्वाद करनेकी चेष्टा करते हैं। श्रीकृष्ण जब अवतीर्ण हुए थे तब हमारे समाज और देशकी कार्य प्रणाली जिस प्रकार अनुष्ठित होती थी, जीवकी शिक्षाके लिए भगवान श्रीभग-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वानने उसका स्वयं आचरणकर, जीवको शिक्षा देनेकी चेष्टा की। साधक अपने कार्यको भगवानके कार्यके अनुकूलकर अपने कार्यको भगवानके कार्यमें पर्यवसित करनेका सुयोग लाभ करता है। अपने कार्यको भगवानके कार्यमें पर्यवसित करनेकी चेष्टा ही समस्त साधन-भजनका लक्ष्य है। इस समय हमारी कार्य-प्रणालीमें, विशेषतः पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षाके प्रभावसे, एक घोर परिवर्तन आ गया है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण जिस समय जो कार्य करते थे उसकी संगति-में अपने कार्यको अनुप्राणित करना अब प्रायः असम्भव हो गया है। तब भी हमने यथासम्भव एक सामंजस्य स्थापित करनेकी चेष्टा की है अर्थात् अपने कार्य-कलापको भगवानके कार्यकलापके सहित मिलाकर, अपने कार्यमें उनका कार्य-तत्व उपलब्ध करनेकी, अपने कार्यको उनके कार्यमें परिणत करनेकी चेष्टा की है। उदाहरणार्थ, भगवानकी पूर्वगोष्ठलीला हमने भ्रमणके समय आस्वाद करने-की व्यवस्था की है। आहारके समयकी पूजाके भीतर जिससे हमारा आहार उनके आहारमें पर्यवसित हो सके इस ओर दृष्टि रखी है। और हमारी निद्रा जिससे समाधिमें परिणत होकर निकुञ्जलीला आस्वादनमें सहायक हो सके इस ओर भी दृष्टि रखी गयी है।

समवेत पूजाके अंगोंको किसी विशेष सम्प्रदायमें सीमाबद्ध नहीं किया गया है। हमारे व्यवहृत कृष्णादि शब्द बस धर्मोंके पुरुषोत्तमभाव-के द्योतक हैं। जिससे बन्धु-बान्धवोंको, यहाँ तक कि जीवमात्रको भगवद्-विग्रहमें परिणत किया जा सके, हमारे सब कार्य पूजामें परिणत हो सकें, चिन्तन ध्यानमें तथा निद्रा समाधिमें, पर्यवसित हो सके, इस ओर दृष्टि रखी है। कहना अना-वश्यक होगा कि यही आर्य-सभ्यताका प्रधान कथन है।

प्राचीन कालके ऋषि-मुनिगण, विशेषतः ऋषि-पत्नियाँ, प्रातः उठकर सर्वप्रथम भगवानसे प्रार्थना करते थे—'हे भगवान, रातको जब देह क्लान्त और मन अवसन्न हो गया था तो हम तुम्हारी क्रोड़में जाकर सो गये थे। तुम्हारी कृपा और स्नेहसे हमारी देहकी क्लान्ति और मनका अवसाद दूर हो गया है। अब हम तुम्हारे संसारमें तुम्हारे आदेशानुसार तुम्हारे प्रियतम जीवोंकी सेवामें जाते हैं। तुम हमें देखते रहना, चलाना, विपरीत कार्यसे रक्षा करना, हमारे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवनमें तुम्हारी इच्छा पूर्ण सफलता लाभ करे'। स्नानके समय मनमें कहते थे—'हे भगवान, जलसे हमने स्थूल देह तो शुद्ध कर ली किन्तु यह जल हमारे मनके निकट तो नहीं पहुँच सकता, तुम अपने कृपा-वारिवर्षण द्वारा हमारे भीतरके सब तत्व पवित्रकर अपनी इच्छा-पूर्तिके, अपने जीवोंकी सेवाके, उपयुक्त कर दो'। भोजन पकाते समय ऋषिपत्नियाँ प्रार्थना करती थीं—'हे भगवान, तुम्हीं तो हमारे तृप्तिविधानके लिए हमारे बन्धु-बांधवोंके रूपमें समागत हो। तुम जब तक इनके भीतर आत्मप्रकाश करते हो तभी तक ये हमारे प्रिय उपास्य हैं। तुम्हारे अप्रकाशसे हम इनको श्मशानकी भस्ममें परिणत करनेको बाध्य होती हैं। तुम्हीं हमारे प्रकृत आत्मीय, प्रकृत प्रिय हो—यह तत्व उपलब्ध करनेका सुयोग दो। हम तुम्हारे लिए ही भोजन पका रही हैं, हमारे यह अन्नादि तुम्हारे ग्रहणयोग्य हों एवं इनके भीतर तुम्हीं यह अन्नादि ग्रहणकर हमारे कार्यको सार्थक कर रहे हो—यह तत्व हम अन्तरमें उपलब्ध कर सकें'। ऋषिगण किसीको उपदेश करते समय प्रार्थना करते थे—'हे भगवान, तुम हमारे मन और वाक्य द्वारा प्रकाशित होकर हमारे मुखसे उपदेश प्रदान करो। हमारे मुखसे वचन इस प्रकार उच्चारित हों जैसे तुम ही हमारे भीतरसे बोल रहे हो।' सब कामोंमें यह उपलब्ध करनेकी चेष्टा होती थी कि भगवान ही हमारे भीतर बैठे कार्य कर रहे हैं, वे ही प्रकृत कर्त्ता हैं, हम निमित्तमात्र हैं। संध्याके पूर्व वे उपलब्ध करनेकी चेष्टा करते थे कि भगवान जैसे व्याकुल हुए उनको संसारके कर्मक्षेत्रसे अपनी गोदमें आकर विश्राम करनेके लिए बुला रहे हैं। सारी रात भगवानका सान्निध्य उपलब्ध करनेकी चेष्टा करते थे।

प्रातः बिछौनेसे उठनेके पूर्व पूजा—भगवान किस प्रकार मातृरूप धारण कर, हमारी सब ग्लानि दूरकर, हमारे भीतर शक्ति संचारकर देते हैं पहले यह तत्व उपलब्ध करना चाहिए। फिर 'ॐ तत्सत्' मंत्र उच्चारण करके भगवान ही जीव-जगद्रूपमें परिणत अथवा विवर्तित हैं यह तत्व उपलब्धकर सबके भीतर भगवानका अस्तित्व उपलब्ध करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। इसके बाद 'ॐ तद् विष्णोः..........' इत्यादि मंत्र उच्चारणकर ऋषिगण भगवानका परम पद उपलब्ध करनेकी चेष्टा करते थे। तत्पश्चात् 'ॐ वाङ्मे मनसि'......'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्यादि मंत्र उच्चारणकर भगवान ही मुख्य कर्त्ता हैं, जीव केवल निमित्तमात्र है--उन यंत्रीके हाथमें एक यंत्रमात्र है--यह तत्व उपलब्धकर कई एक बार गायत्रीमन्त्र जपकी सहायतासे अपने सब तत्त्वोंको भगवत्-ज्योतिसे ज्योतिष्मान, भगवद्भावसे परिभावित, करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। फिर 'हे विश्वनाथ.....' इत्यादि श्लोक पाठकर कहना चाहिए--'हे भगवान, रातमें तुम्हारी कृपा व तुम्हारे स्नेहस्पर्शसे मेरी सब क्लान्ति और अवसाद दूर हो गये हैं। अब मैं तुम्हारे आदेशानुसार तुम्हारे प्रियतम जीवोंकी सेवामें संसारमें जाता हूँ, कृपा करके मुझे देखते रहना, मुझे चलाना, मेरी रक्षा करना, मेरे जीवनमें तुम्हारी इच्छा पूर्ण सफलता लाभ करे'। 'लोकेश चैतन्यमयाधिदेव' एवं 'जानामि धर्मं न च मे' इत्यादि मंत्र उच्चारणकर भगवानको इस देहका अन्तर्यामी चालक और स्वामी समझकर उनका मुख्य कर्त्तृत्व उपलब्ध करना चाहिए।

'ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ बान्धवेभ्यो नमः' इत्यादि मंत्रके भीतर सृष्टिके आदि कालसे जितने ज्ञानदाता हुए हैं उन सबको एवं माता-पिता, बन्धु-बान्धव तथा समस्त जीव और देवताओंको--अर्थात् जिनके हम सम्पूर्णतः ऋणी हैं उनको--कृतज्ञता-प्रकाशपूर्वक प्रणामके द्वारा उन सबके मूलाधार श्रीभगवानको प्रणाम करनेके लिए उपदिष्ट हैं। इसके बाद 'मन्नाथः श्रीजगन्नाथः' एवं 'कृष्णं स्मरामि ममैकवल्लभं' इत्यादि मंत्र पाठकर श्रीभगवानको प्रणाम करना चाहिए।

भ्रमणके समय पूजा—हमारा भ्रमण जिससे भगवत् परिक्रमामें पर्यवसित हो इसकी चेष्टा करनी होगी। प्रातः भ्रमणके समय भगवानकी पूर्वगोष्ठलीला और सायंकाल उत्तरगोष्ठलीलाका चिन्तनकर चारों ओरके सब दृश्य पदार्थोंमें श्रीभगवान्का अस्तित्व और लीलातत्व आस्वाद करना होगा। सुविधा हो तो 'श्रीमूर्तिदर्शन' के स्तव पाठ कर लिये जायँ। साधकोंने भ्रमणके समय, मेरुदंडके भीतर चढ़ने-उतरनेके साथ-साथ, नाम जपका भी विधान किया है। कोई-कोई महात्मा यहाँ 'यो मां पश्यति सर्वत्र.....' इत्यादि श्लोकका तत्व आस्वाद करनेकी चेष्टा करते हैं।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्नानके समय पूजा—देह और चित्त शुद्ध हुए बिना भगवदुपलब्धि संभव नहीं, इसलिए हम अपने देह, चित्त तथा सब तत्वोंको शुद्ध करनेके लिए, अपनेको भगवत्-प्राप्तिके योग्य बनानेके लिए, स्नान करने जा रहे हैं—यह तत्व मनमें अनुभव करना होगा। तेल मलनेके समय अनुभव करनेकी चेष्टा करनी होगी कि मेरे भीतर भगवान हैं, मैं उनके अंगमें तेल मल रहा हूँ। स्नान करने जाते समय शुद्धितत्वके निर्दिष्ट कुछ श्लोकोंको पाठ करना चाहिए। जलके निकट जाकर विष्णुस्मरणका मंत्र पढ़ना चाहिए। इस विषयमें जलका तत्व चिन्तनीय है। जलके भीतर कौन हैं अर्थात् जलरूपमें कौन आगत हैं? (रसोऽहमप्सु'—गीता ७।८ श्लोक द्रष्टव्य है) जल क्यों हमारी शुद्धिमें सहायक होता है? देहको भगवानका मन्दिर समझकर स्नानके समय भगवत्-मन्दिर-मार्जनका रहस्य चिन्तन करना चाहिए।

आत्मेन्द्रियसमायुक्तं देहं श्रीहरिमन्दिरम्।
स्नानेन शोधनं तस्य विधेहि कृपया तव॥

'हे भगवान; जलकी सहायतासे मुझे अपनी स्थूल देहको शुद्ध करनेका सुयोग मिला। जिससे जलमें निहित सूक्ष्म तत्व मेरे देहस्थ सब तत्वोंमें प्रवेशकर उनको शुद्ध करनेमें समर्थ हों, इसकी दया करके तुम व्यवस्था करो। तुम मेरे भीतर स्थित हुए अपने सृष्ट किये हुए यंत्रका आगन्तुक मल दूरकर इसको अपनी उपलब्धिके योग्य एवं अपने प्रिय कार्य-साधनमें समर्थ करो।'

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

इस श्लोकका मर्म हृदयंगम करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। स्नानके पश्चात् आब्रह्म-स्तम्ब पर्यन्त त्रिभुवनके समस्त जीवोंकी तृप्तिके लिए तर्पण करनेका विधान है। इसके बाद 'असतो मा सद्गमय' एवं 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम' इन दो श्रुतियोंका पाठ करना चाहिए और अन्तमें 'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु' आदि प्रार्थना मंत्र पाठकर, सब जीवोंके कल्याणकी प्रार्थनाकर और अपनेको शुद्ध और ज्योतिर्मय चिन्तनकर सर्वत्र ब्रह्मदर्शनकी चेष्टा करनी चाहिए।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आहारके समय पूजा—श्रीभगवान ही अन्नरूपमें समागत हैं। फिर वे ही हमारी इन्द्रियादि द्वारा अन्न ग्रहणकर तत्प्रदत्त देहकी पुष्टि साधन करते हैं और इस देहको अपने प्रिय कार्य साधनके उपयुक्तकर अपनी इच्छापूर्तिमें नियुक्त रखनेकी चेष्टा करते हैं, सर्वप्रथम यह तत्व चिन्तनीय है।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म सामधिना॥

तत्पश्चात् इस अन्नको उनके ग्रहणयोग्य पवित्र कर लेना होगा। इसके बाद वे ही हमारे भीतर बैठे अन्न ग्रहण कर रहे हैं; यह तत्व चिन्तनकर और खाद्य पदार्थ भगवानको निवेदनकर सबको यह निवेदित प्रसाद वितरण करनेकी व्यवस्था है। सबको वितरण करनेके बाद जो बचे उसे भोक्ताको स्वयं ग्रहणकर तृप्ति बोध करनी होगी। अन्नको ब्रह्मभावसे परिभावितकर भगवानको निवेदन करनेका विधान है। अन्ननिवेदनके भीतर निम्नलिखित तत्व चिन्तनीय हैं:—

(१) ॐ तत् सत्। ॐ उच्चारण करके चित्तको भगवत्समीप ले जाना चाहिए। फिर यह तत्व अनुधावन करना चाहिए कि वे ही जीवजगद्रूपमें परिणत अथवा विवर्तित हैं।

(२) एतदन्नादिकं सर्वं ॐ अच्छिद्रमस्तु स्वाहा। अन्न पवित्र भावसे तैयार किया गया है और उसमें कोई अपवित्र पदार्थ तो नहीं है, इसकी परीक्षा करके और भगवानका नाम स्मरण करके अन्नको अमृतमें परिणत करना चाहिए।

(३) ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। ॐ अमृतपिधानमसि स्वाहा। यह अन्नादि ऊपर और नीचे (सब तरफ) अमृतसे परिभावित हो जाये और इसके फलस्वरूप यह शुद्ध अन्न हमारी भगवत्-प्राप्तिमें सहायक हो।

(४) ॐ आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः। आहारके द्रव्य केवल स्थूल अन्नमें सीमाबद्ध नहीं हैं। शब्द स्पर्शादि जो कुछ मनोबुद्धि प्रभृति द्वारा ग्रहण किया जाता है वे सभी आहार्य हैं। 'आहृयते मनसा बुद्धया इन्द्रियैर्यः स आहारः'—अर्थात् मन, बुद्धि, इन्द्रियादि द्वारा जो कुछ ग्रहण किया जाता है वह सभी आहार है, यह व्याख्या समझकर अपने सब तत्वोंको शुद्धकर

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सकनेसे हमारी आत्माके सम्बन्धमें—भगवानके सम्बन्धमें—स्मृति जाग उठेगी। इसके बाद निम्नलिखित प्रणाली द्वारा मंत्रपाठ और भावना करनी चाहिए।

(क) मूलाधारमें मन स्थिर करके—ॐ अन्नमयाय स्वाहा इदमन्नम्। हे भगवान, तुम इस देहकी पुष्टिके लिए अन्नरूपमें समागत हो, तुमको नमस्कार।

(ख) मणिपुरमें चित्त स्थिर करके—ॐ प्राणमयाय स्वाहा एष प्राणः। यह अन्न रुधिरमें परिणत होकर प्राणकी पुष्टि साधन करे।

(ग) अनाहतमें चित्त स्थिर करके—ॐ मनोमयाय स्वाहा एतन्मनः। यह रुधिर वीर्यमें परिणत होकर मनके देवताकी पुष्टि विधान करे।

(घ) विशुद्धाख्यमें मन स्थिर करके—ॐ विज्ञानमयाय स्वाहा एतद् विज्ञानम्। यह वीर्य ओजस्में परिणत होकर विज्ञानमय कोशकी तृप्ति विधान करे।

(ङ) आज्ञाचक्रमें मन स्थिर करके—ॐ आनन्दमयाय स्वाहा एष आनन्दः। यह ओजस् सुधामें परिणत होकर आत्मा और परमात्माकी तृप्ति विधान करे।

यहाँ देहस्थ पंचकुण्डमें आहुति प्रदानकर, प्रकृत पंच महायज्ञका ध्यान करना विधेय है। देहमें किस प्रकार एक परिणति साधित हो रही है (Process of Rectification) यह तत्व आस्वादनीय है।

(क) एतदन्नादिकं सर्वं ॐ परब्रह्मणे स्वाहा। यह अन्न हमारे देहकी पुष्टि बिधान करे।

(ख) एतदन्नादिकं सर्वं परमात्मने स्वाहा। इस अन्नका सारांश हमारी बुद्ध्यादिकी पुष्टि विधान करे, देहयंत्रको भगवत्-कार्य साधनकी योग्यता दान करे।

(ग) एतदन्नादिकं सर्वं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा। इस अन्नका सारांश अमृतमें परिणत होकर हमको भगवल्लीला आस्वादनकी योग्यता प्रदान करे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोई-कोई यह तीन मंत्र पृथक्-पृथक् उच्चारण न करके केवल 'एतदन्नादिकं सर्वं ॐ ब्रह्मार्पणमस्तु' यह मंत्र उच्चारण करते हैं। 'हे भगवान, तुम्हीं अन्नादि रूपमें हमारी देह रक्षाके लिए, हमारे शान्ति-विधानके लिए, हमारे परम कल्याणके लिए उपस्थित होकर पुनः इन अन्नादिको हमारी इन्द्रियोंके द्वारा अपने निकट ले जाकर हमारी अन्नादि-ग्रहण क्रियाको यज्ञमें परिणत करते हो। वस्तुतः तुम्हारा ही प्रदत्त अन्न तुम्हींको प्रदान करनेसे अमृतमें परिणत हो जाता है, मुझे यह तत्व समझनेकी बुद्धि दो'।

'सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा' (गीता ३ अ०/१० श्लोक) इत्यादि मंत्रोंका सूक्ष्म भावसे विचार करनेपर हम भगवानके सृष्टि रहस्य और जीवजगत्के परिपालन-रहस्यको एवं वे किस प्रकार सबकी पूर्णता-प्राप्ति, भगवत्-प्राप्तिमें, सहायकः हैं इसको उपलब्ध करनेका सुयोग पाते हैं। हम उनकी इस शुभेच्छा व शुभकार्यमें बाधा देकर नाना प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न करते हैं। हम अपने सभी कार्यों द्वारा भगवदोक्षामें बाधानदेकर उनकी इच्छा पूर्ण सफल करनेमें सचेष्ट हों, यही जीवयज्ञ अर्थात् नरमेधयज्ञका प्रधान उद्देश्य है।

भगवानको निवेदन करनेके बाद सब जीवोंके लिए प्रसादरूपमें कुछ अन्न रखकर अवशिष्ट अन्न स्वयं भोजन करनेकी व्यवस्था देखी जाती है।

ॐ आब्रह्मभुवनाल्लोका देवर्षिपितृमानवाः।
मया दत्तेन अन्नेन तृप्यन्तु भुवनत्रयम् ॥

अर्थात् मेरा प्रदत्त अन्न समस्त देवताओं और समस्त जीवोंका तृप्ति-विधान करे। यहाँ बलि-रक्षण-तत्व चिन्तनीय है।

स्वयं प्रसाद पानेके समय प्रथम पाँच ग्रास पंच प्राणमें आहुति प्रदान करनेके पाँच मंत्रोंका पाठ करना विधेय है।

[क] ॐ प्राणाय स्वाहा। हे प्राण ! इस अन्नको रक्तमें परिणत करो।

[ख] ॐ अपानाय स्वाहा। हे अपान ! तुम अपक्व अन्नकी मलरूपमें बाहर निकाल दो।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

[ग] ॐ व्यानाय स्वाहा। हे व्यान ! तुम रक्तको सब शरीरमें चालित करो।

[घ] ॐ समानाय स्वाहा। हे समान ! तुम जहाँ जितने रक्तादिकी आवश्यकता है वहाँ उतना रक्तादि दान करो।

[ङ] ॐ उदानाय स्वाहा। हे उदान ! तुम मेरे देहादिकी परिणति व ऊर्ध्वगतिमें सहाय हो।

इसके बाद नमस्कार—

योऽयं देवोऽन्तरे तिष्ठन् पचत्यन्नं चतुर्विधम्।
येन दत्तमिदं सर्वं तस्मै परमात्मने नमः॥
ॐ आविरावीर्म्म एधि॥

हे ब्रह्मज्योति, तुम मेरे सब तत्वोंको अपनी शक्तिसे शक्तिमानकर, अपने भावसे परिभावितकर, अपने प्रिय कार्यके अनुष्ठानमें नियुक्त करो।

कार्यक्षेत्रमें पूजा—हमारी देहके सब यंत्र भगवानने बनाये हैं, सब यंत्रोंमें भगवत्-प्राप्तिके अनुकूल शक्ति निहित है। वे ही यंत्रीरूपमें इन यंत्रोंको चला रहे हैं। मैं निमित्तमात्र हूँ। हमें उचित है कि हम उदासीन भावसे स्वरूपमें अवस्थित रहकर भगवल्लीला दर्शन करें। किन्तु अहंकार हमारे और भगवानके बीचमें आकर हमें भगवानको देखने नहीं देता, भगवानकी लीलोपलब्धि करने नहीं देता। इसलिए कोई भी काम करनेसे पहले मन ही मन यह प्रार्थना करनी चाहिए—

यद् यत् कृतं हृषीकेश तत् सर्वंच त्वया कृतम्।
निमित्तमात्रं लोकोऽयम् इति मे निश्चला मतिः॥

जिस प्रकार अपने भीतर भगवत्-कर्तृत्वकी उपलब्धि करनी होगी उसी प्रकार सबके द्वारा जो भगवान मेरे कल्याणके लिए मुझको सहायता करनेमें तत्पर हैं यह तत्व भी उपलब्ध करना होगा।

रात्रिकी पूजा—प्राकृतिक नियमानुसार दिन कार्यका व ज्ञानचर्चाका समय है और रात्रि विश्रामका, मिलनका, प्रेमास्वादनका समय है। जब हम संसारके

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कामसे क्लान्त व अवसन्न हो जाते हैं तब प्रकृति देवी हमको विश्रामकी ओर ले जानेके लिए व्यस्त होती हैं। उनके आवाहनसे जीवजगत्के सभी प्राणी मानो माँके निकट लौटनेके लिए व्यस्त हो जाते हैं। वैष्णगण उत्तरगोष्ठलीला द्वारा यह तत्व आस्वाद करते हैं।

साधकमात्रको सायंकाल होते ही भगवानका आवाहन (माँकी पुकार, कृष्णकी वंशीध्वनी) श्रवण करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। भक्त (जीव) भगवानका कितना अपना है, जीवके लिए वे कितने व्याकुल हैं, भक्तके बिना जैसे भगवान रह ही नहीं सकते। साधकगण संसारका काम शेषकर भगवानके निकट भगवद्धाम लौट जानेके लिए व्याकुल हो जाते हैं—उन्मादिनी राधाका भाव, गौरांगदेवकी सायंकालकी व्याकुलता, आस्वाद करनेकी चेष्टा करते हैं। शाक्तगण शिशु-सन्तानके लिए माँकी व्याकुलताका तत्व चिन्तन करते हैं। इसके बाद शुद्धितत्व चिन्तनीय है। माँ मानो लड़केको स्नान कराके, शुद्ध करके, लड़केका अवसाद व ग्लानि दूर करके तथा अपने भावसे परिभावित करके उसको अपनी गोदमें बुला लेनेके लिए व्यस्त हैं।

भगवानके निकट जानेके लिए सुमार्जित होना पड़ेगा। स्नानके द्वारा सब मलीनता, वासना-कामना, निजसुखस्पृहा, प्रतिष्ठामोहको त्यागकर चित्तको कृष्ण-सुखैक-तत्पर करना पड़ेगा। अपने चित्तको भगवानका आवाहन करनेके, भगवानको आनन्द देनेके, उपयुक्त करना पड़ेगा। चित्तसे सब कामना और संस्कार दूरकर, चित्तको भगवद्-भावसे परिभावित करनेकी चेष्टाकर, अन्याभिलाषिताशून्य करना पड़ेगा। भगवान हमारे हृदयमें आविर्भूत होनेके लिए एवं अवस्थान करनेके लिए लुब्ध हों इस तरफ दृष्टि रखनी होगी। गायत्री जप अथवा षट्चक्रभेद इत्यादिकी सहायतासे चित्तको सहस्रारके तरफ, भगवद्धामके तरफ, ले जाना होगा। सखियोंके संग श्रीराधाका अभिसार एवं संकेत स्थानमें जानेका तत्त्व यहाँ आस्वादनीय है। अपने स्वरूपतत्व ('अहं देवो न चान्योस्मि' एवं सत्यपि भेदापगमे नाथ' इत्यादि श्लोक) की सहायतासे भगवत्-स्वरूपतत्व (सखीतत्व, राधातत्त्व, कृष्णतत्त्व) एवं कुंजलीलारहस्य अथवा शाक्तोंके लिए

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

माँकी करुणावनत दृष्टि एवं सन्तानके लिए माँकी व्याकुलताका भाव हृदयंगम करनेकी चेष्टा करनी होगी।

इसके बाद वैष्णव साधकगण भगवानके रूप व गुणसे मुग्ध होकर श्रीभगवानके वरणीय व लोभनीय स्वरूपकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा करते हैं। शाक्त साधकगण माँके ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्यका रहस्य चिन्तनकर आनन्दमें विभोर हो जाते हैं। भगवानका रूप 'इतर-राग-विस्मरणम्' है; लोभ ही भगवत्-प्राप्तिमें प्रधानतः सहायक है। स्वार्थ और सुखस्पृहा भगवत्प्राप्तिमें कितनी बाधा डालते हैं एवं भगवानके बिना किसी तरहसे काम चल ही नहीं सकता—यह तत्व आस्वाद करनेकी चेष्टा करनी होगी। यहाँ भगवत्-स्वरूप चिन्तन, भगवानका ध्यान, इत्यादि तत्त्व चिन्तनीय हैं।

तत्पश्चात् साधक न्यासतत्वकी सहायतासे यह तत्व आस्वाद करनेकी चेष्टा करता है कि भगवान ही सब कुछ हैं. वे ही सब कर रहे हैं, वे ही सब रूपोंमें और सब तत्वोंमें विराजमान हैं, उनको छोड़कर और कुछ भी नहीं है।

इसके बाद उपचारसमर्पण करते समय साधक देखता है कि भगवान ही तो वास्तवमें मेरी सेवा कर रहे हैं, वे ही मुझको सब कुछ दे रहे हैं। उनको अर्पण करनेके उपयुक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है; यहाँ तक कि मेरी आत्मा भी उन्हींका दान है। अपनी आत्माको उनसे पृथक् समझनेके कारण ही तो मेरा सब दुःखकष्ट है। तब साधक अपने व्यष्टि तत्वोंकी भगवानके समष्टि तत्वोंमें आहुति देकर, समष्टिभावापन्न होकर, राधातत्व आस्वाद करनेकी चेष्टा करता है। साधकके निकट 'पर' कहकर कुछ नहीं रह जाता। सबके सुखमें सुखी होनेकी चेष्टाके फलस्वरूप साधक भगवत्-भावसे परिभावित होने लगता है। अब साधक गुरु-निर्दिष्ट विशिष्ट भाव (दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर) का चिन्तन करते-करते, अपने इष्ट भावसे परिभावित होकर, उनमें तन्मयता लाभ करनेकी चेष्टा करता है। इष्टके अतिरिक्त अन्य कोई भावना फिर उसके मनमें नहीं आती। इष्टकी सेवा व तृप्ति-विधानके अतिरिक्त और कोई प्रार्थना उसके मनमें नहीं उठती। तभी साधकके चित्तमें अन्याभिलाषिताशून्य कृष्ण-सुखैकतात्पर्या भक्तिका स्फुरण आरम्भ होता है। याद रखना होगा कि साधना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वैत भावसे आरम्भ होती है। साधक अनुभव करता है कि उसके और भगवत-तत्वके अतिरिक्त और सब तत्व लुप्त हो गये, केवल ध्याता और ध्येय रह गये और ध्यान अबाधितरूपमें हो रहा है।

इसके फलस्वरूप विशिष्टाद्वैत भावकी उपलब्धि होती है—मैं देह हूँ वे आत्मा हैं, मैं यंत्र हूँ वे यंत्री हैं। क्रमशः अनुभवमें आता है कि वे ही मेरे सब कुछ हैं, मेरे अन्तर्यामी चालक हैं। वे जिस ताल और जिस सुरमें इस देह यंत्रको चलाना चाहते हैं उसी ताल और उसी सुरमें चलना इसकी चरम सार्थकता है। पहले बताया गया है कि रात्रि लयलोग एवं दिन राजयोग आस्वाद करनेका समय है। शाक्त साधकगण इस स्थानमें समस्त कल्पित भेदभाव दूरकर, माँको पूर्णतः आत्मनिवेदनकर, माँकी अभय गोदमें पूर्णरूपसे विश्राम लाभ करनेकी चेष्टा करते हैं। अष्टकालीय लीलाकी सहायतासे, राधाकृष्णकी निकुंजलीला तत्व द्वारा, यह लययोग पूर्ण परिणति लाभ करता है। यह तत्व केवल उन्नत साधकगण महानिशाकी साधना द्वारा आस्वाद कर सकते हैं। राधाकृष्णकी लीलाका तत्व आस्वाद करना ही साधकके ध्यानका विषय है। राधातत्व समष्टिभावापन्न है—सखियाँ उसकी काव्यव्यूहमात्र हैं। निकुञ्ज लीलामें प्रवेश करनेके समय राधारानी अपने समस्त कायव्यूहको अपने भीतर संहृतकर ह्लादिनी शक्तिके पूर्ण विकासरूपमें आत्मप्रकाश करती हैं। तब अवशिष्ट रह जाता है कृष्णतत्व और उनका स्फुरणमात्र राधातत्व। राधा एक बार कृष्णमें लीन हो जाती हैं और फिर कृष्णसे अलग हो जाती हैं। इस लीलाके परिणाम-स्वरूप राधा सम्पूर्णतः कृष्णमय होकर कृष्णमें लीन हो जाती हैं। यह तत्व आस्वाद करनेके लिए साधकको पहले सखीभावसे परिभावित होकर, अपने सब तत्वोंको प्रथमतः सखीतत्वमें, तत्पश्चात् राधातत्वमें आहुति देकर, फिर समष्टि भाव (राधाभाव) में स्थिर होकर, राधातत्वका ध्यानकर, उसमें तन्मयता लाभ करनी होगी। राधाभावमें तन्मयता लाभ किये बिना रात्रिकी पूजा (निकुंजलीलाका रहस्य) आस्वाद करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं हो सकती। कोई-कोई साधक हवन तत्वकी सहायतासे समष्टिभावापन्न होकर अर्थात् अपने व्यष्टि अन्नमयादि पंचकोशको समष्टिगत अन्नमयादि पंचकोशमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

आहुति देकर, विशिष्टाद्वैत तत्व आस्वाद करनेकी चेष्टा करते हैं। इसके बाद नीचेके तत्त्वोंको एक-एक करके ऊपरके तत्त्वोंमें आहुति देकर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' तत्व उपलब्धकर पूर्ण अखंड अद्वय तत्वमें प्रतिष्ठा लाभ करते हैं। अर्थात् अपने समष्टिगत अन्नामयादि कोशको क्रमानुकूल ऊपरके समष्टिगत तत्वोंमें आहुति देकर, सर्वव्यापी आत्ममय होकर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' तत्व आस्वाद करनेकी योग्यता लाभ करते हैं। इसके फलस्वरूप राधारानी किस प्रकार अपनेको सम्पूर्णतः कृष्णमें आहुति देकर कृष्णमय हो जाती हैं, यह तत्व 'विश्वं जुहोमि वसुधादि-शिवावसानम्' द्वारा आस्वाद करनेकी चेष्टा करते हैं। रात्रिकी पूजा (महानिशाकी पूजा) निकुंजलीलास्वादनका नामान्तरमात्र है। याद रखना होगा कि स्वयं राधाभावसे परिभावित हुए बिना साधकके लिए निकुंजलीला आस्वाद करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है।

पहले ही बता दिया गया है कि हमारी यह पूजा किसी सम्प्रदायमें सीमाबद्ध नहीं है। राधाकृष्णतत्व सर्वत्र सब सम्प्रदायोंके इष्ट तत्वोंके प्रतिनिधि हैं।

●

ज्ञान-कर्म-भक्तिका समन्वय

[यह लेख स्वामीजीने एक भक्तकी नोटबुकमें लिख दिया था। ज्ञान-कर्म-भक्तिका समन्वय स्वामीजीकी अनुपम उपलब्धि थी। वे कहते थे, "मैं ज्ञान, कर्म और भक्तिमें किसीको छोटा नहीं मानता। ज्ञान द्वारा उनको जानना होगा, कर्म द्वारा उनकी सेवा करनी होगी और भक्ति द्वारा उनसे तन्मय हो जाना होगा।" कितनी दीर्घ साधनाके बाद इस प्रकारकी अनुभूति लाभ की जा सकती है, अनुभवी साधक ही इसका अनुमान कर सकेंगे।]

योग-त्रयी—कोई काम करना पसन्द करते हैं, कोई चिन्तनमें मग्न रहते हैं और कोई अनुभव करना चाहते हैं। और ऐसे भी साधक हैं जो जाग्रत् अवस्थामें काम करते हैं, ध्यानवस्थामें चिन्तन करते हैं और समाधि अवस्थामें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवत्-आस्वादन कर आनन्दमें विभोर हो जाते हैं। इस अन्तिम श्रेणीके लोगोंके प्रति मेरा एक आन्तरिक आकर्षण है। इसके उपरान्त जिनके सुखके लिए काम करता हूँ यदि करते समय उनका चिन्तन बना रहे, उनके आनन्द-रसका आस्वादन होता रहे तब तो कुछ कहना ही नहीं।

कर्मयोग—जो काम करना पसन्द करते हैं, वे यदि ठीक भावसे करनेकी चेष्टा करें, अर्थात् अपने स्वार्थ-संस्कारको भूलकर, फलकी ओर अधिक दृष्टि न रख, एकान्त मनसे करते रहें तो उनका काम ही उनकी परमानन्द-प्राप्तिमें पूर्णता-लाभमें सहायक होगा।

ज्ञानयोग—जो चिन्तनमें मग्न रहते हैं वे यदि अपना चिन्तन ठीक प्रणालीसे चलाते रहें तो उनका चिन्तन उन्हें पूर्ण तृप्ति दान करनेमें समर्थ होगा।

भक्तियोग—और जो अनुभव करना चाहते हैं, आनन्द करना चाहते हैं, अनुभवकी उत्कर्षताकी प्राप्तिके लिए अन्य कामना-वासनाएं अपने आप उनके चित्तसे निकल जायँगी। उनकी अनुभव करनेकी प्रवृत्ति अगर तीव्र होगी तो वे इस कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा सहन नहीं करेंगे। इस प्रकार धीरे-धीरे प्रेमके उत्कर्ष-साधनके विघ्न, चित्तकी मलिनता, विजातीय संस्कार, आदि स्वतः दूर होने लगेंगे।

इस प्रकार चित्त जितना शुद्ध और शान्त होता जायगा उनका प्रेम भी क्रमशः उन्नततर अवस्था लाभ करेगा। अन्तमें ऐसी अवस्था आ जाती है कि वे (भक्तियोगके साधक) अपने प्रेमका प्रतिदान नहीं चाहते; केवल प्रेम करनेमें ही उन्हें सुखका अनुभव होता है। तब प्रेम करनेमें उन्हें इतना आनन्द होता है कि अपनी प्रिय वस्तुके दोष और अत्याचार भी उनकी नजरमें नहीं आते ; सद्गुण और देवभाव, magnfied होकर, उत्कर्षता लाभकर, उनके सामने उपस्थित रहते हैं। इसके साथ-साथ सु-भाव, भगवत् भाव, देखने-जाननेकी शक्तियाँ क्रमशः वर्धित होती जाती हैं।

इस प्रकार साधन चलता रहे तो धीरे-धीरे ऐसी अवस्था आ जाती है कि जगत्का असुर भाव साधककी नजरमें नहीं आता। सब भावों और कार्योंमें एक मंगलमय उद्देश्य, आनन्द दान करनेकी तीव्र इच्छा, हृदयंगम होती है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तब सब वस्तुओं और मनुष्योंमेंसे एक स्वर्गीय भाव, देवभाव, उसके सम्मुख प्रस्फुटित होने लगता है। समस्त जगत् उसको 'शान्तं शिवं सुन्दरम्'की विभूति-रूपमें प्रतीत होता है। इस अवस्थामें उसके भाव, वचन और कर्ममेंसे 'आनन्द-रूपममृतम्' की प्रेमलहरी क्षरित होने लगती है। तब साधक जगत्का सौन्दर्य, माधुर्य एवं आनन्दका आस्वादन करते-करते सम्पूर्णतः तन्मय हो जाता है।

मधुमय—इस अवस्थामें सब चीजें मधु मालूम होती हैं। पेड़ मधु, आकाश मधु, समुद्र मधु, हवा मधु, भाव मधु, चिन्ता मधु, कार्य मधु। तब साधकके निकट 'मधुवाता ऋतायते' मंत्र मूर्तिमान हो जाता है। हम जगत्को जिस प्रकार स्वार्थ-संस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं और विकृत रूपमें प्रचार करते हैं, साधक ऐसा नहीं करता। उसकी दिव्य दृष्टि खुल जाती है। तब जगत् जिनकी विभूति है, जगत्के भीतर जो वर्तमान हैं, वे उसकी पकड़में आ जाते हैं। तब 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' श्रुतिको वह अक्षराक्षर प्रत्यक्ष कर लेता है। अब जगत्के सृष्टा-पाता-नियन्ता उसके लिए 'अवाङ्मनसोगोचरम्' नहीं रहे; 'हृदा मनीषा मनसा अभिक्लिप्ता' होकर उसकी दिव्य दृष्टिके सम्मुख प्रत्यक्षीभूत हो जाते हैं।

प्रेमकी पूजा—इस अवस्थामें यदि पति पास आये तो आराधिका उस पतिके भीतरसे अपने परम पति, आनन्द सौन्दर्य-माधुर्यके आधार साक्षात् मन्मथ-मन्मथ, जगन्मोहनहारी, इतर-राग-विस्मारक, मदनमोहनका दर्शनकर आनन्दमें विभोर हो जाती है। तब पतिके शब्दमें जगत्-पतिकी शब्दब्रह्ममय-वेणुका और पतिके स्पर्शमें अपने शरीर-मनकी स्मृति दूरकारी अनुपम स्पर्श-सुखका अनुभवकर जीवन सार्थक हो जाता है। तब पतिको जगतपतिके अति-रिक्त अन्य किसी रूपमें देखने-सोचनेका सामर्थ्य नहीं रहता।

इसी प्रकार साधक पति भी अपनी पत्नीमें उस परम प्रेमास्पदको, साक्षात् भगवती, राधा या सीता रूपमें अनुभवकर, प्रत्यक्षीभूतकर, जीवन सार्थक करता है। पुत्र-पुत्री अदि पास आयें तो वह उनके स्वरमें बाल गोपाल अथवा कुमारी भगवतीका रूप देखकर एवं वाणी सुनकर विभोर हो जाता है। सन्तानके लिये वह जो कुछ करता है वह स्वतः भगवानकी पूजामें परिणत हो जाता है। भक्तवत्सल भगवान भी तब स्वयं भक्तके वांछित रूपमें प्रकट होकर परम तृप्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

लाभ करते हैं। इस अवस्थामें बापके भीतरसे जगत्-पिता विश्वनाथ, मांके भीतरसे जगन्माता अन्नपूर्णा देवी, बन्धुके भीतरसे जगद्बन्धु, सर्वभूतके भीतरसे भूतनाथका दर्शन, अनुभूति और सेवा सहज, सुन्दर और स्वाभाविक रूपसे अनुष्ठित होने लगते हैं।

सर्वात्मक प्रेम—तब साधक भगवानको केवल माता, पिता, पति, पत्नी आदि कहकर तृप्त नहीं होता। तब भगवान "प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेय अन्यस्मात् सर्वस्मात्" अन्तरतम आत्मारूपमें उसकी धारणामें आ जाते हैं। तभी कहा जा सकता है 'God is Love' (भगवान प्रेमस्वरूप हैं)। तब वह कहीं किसी भी पति-पत्नीका आलिंगन, माँ-बापका प्यार, मित्रकी प्रीति, भक्तका कीर्तन, ज्ञानीका ज्ञान, कर्मीका कर्म देखकर, उसमें भगवल्लीलाका आस्वादनकर, आनन्दमें विभोर हो जाता है। जिसे भी देखकर चित्त भक्तिरससे द्रवीभूत हो जाय उसीके भीतरसे प्रियतमकी प्रेममय मूर्ति प्रस्फुटित हो जाती है। सर्वत्र केवल भगवद्दर्शन भगवदनुभूति होती है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। तब सर्वरूप सर्वव्यापी भगवान भी माँ-बापके माध्यमसे आकर लाड़-प्यारसे, पति-पत्नीके माध्यमसे आकर प्रेम-अनुरागसे, पुत्र-पुत्रीके माध्यमसे आकर कारुण्य और वात्सल्यसे, बन्धुके माध्यमसे आकार प्रीति और मित्रतासे, भक्तको सम्पूर्णतः तन्मय कर देते हैं। तब विचित्र तारा-खचित नभोमण्डल, श्यामल वनस्पति, सुगन्ध कुसुमोंका सौन्दर्य, पक्षियोंका सुमधुर संगीत—इन सबके माध्यमसे आकर वे अपने प्रियतम भक्तको अपने प्रेमसे मतवाला बना देते हैं। भक्त तब अपने हृदयके अनन्तदेवका अनन्त भावों और अनन्तरूपोंमें आस्वादन करते-करते सृष्टिके परे अप्राकृत ब्रह्मधाममें पहुँच जाता है।

ब्रह्म-प्रेम—भगवान् अगर एक होकर भी बहु हो सकते हैं—'एकोऽहं बहु स्याम् प्रजायेयम्'—तब भक्त सृष्टिकी अवस्थामें अपने एकमात्र भगवानका अनन्त रूपोंमें आस्वादन क्यों नहीं करेगा। जो सृष्टिके अतीत देशमें 'एक' हैं, वे ही सृष्टिमें अनन्त रूपों और अनन्त वेशोंमें लीलातत्पर हैं। इसलिये भक्त सृष्टिकी अवस्थामें उनका "विश्वरूप विश्वनाथ विश्वजीव विग्रहम्" रूपमें स्तवन किये विना नहीं रह सकता। "नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वमूर्ते" कहनेसे मस्तक अपने आप उनके चरणोंमें लोट जाता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

जैसे एक ही मनुष्य पति-पत्नीके निकट पत्नी या पति रूपमें, माँ-बापके निकट पुत्र-पुत्री रूपमें, पुत्र-पुत्रीके निकट माँ-बाप रूपमें, भृत्यके निकट मालिक रूपमें, मालिकके निकट भृत्य रूपमें प्रतीयमान होता है और विभिन्न भावों एवं रूपोंमें व्यवहार करता है, किन्तु स्वरूपतः वह एक ही है, उसी प्रकार हमारे अनन्त योगेश्वर्य-सम्पन्न, परम मायावी, सर्वदा सुहृद, सर्वव्यापी, सर्वचित्ताकर्षक, परम रसिकशेखर, लीलामय श्री भगवान भी स्वरूपतः एक होते हुए अनन्त जीवोंके निकट अनन्त भावोंमें प्रतीयमान और बहुरूपों उपासित होते हैं। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"—जो जिस रूप या भावमें उन्हें चाहेगा वह उसी रूप या भावमें उन्हें पायेगा, जिनकी यह प्रतिज्ञा है वे 'एक' होकर भी क्या बहु हुए बिना रह सकते हैं। जो जिस रूपमें उन्हें बुलायगा, अरूपी उसी रूपके माध्यमसे उसकी वासना पूर्ण करनेको बाध्य है। स्वरूपतः अपाणिपाद होते हुए भी अपने प्रकाशसे, आकार भेदसे, वे अनन्तपाद होकर विचरण करते हैं। निराकार वस्तु अनन्त आकारों और रूपोंमें प्रतीयमान हो सकती है। ज्योतिको जिस रंगके शीशेमेंसे देखा जाय वह उसी रंगकी दिखाई देती है। सृष्टिके बाहरकी अवस्थामें जो एक और अरूप हैं, सृष्टिमें वे ही समस्त सौन्दर्योंके आकर, बहु एवं अनन्त हैं।

'एको अहं बहुधा भवामि'—यह उनकी जगत्-रचनाका मूलमंत्र है। अपनी महिमामें वे एक हैं और प्रकाशके तारतम्यानुसार वे ही अनन्त हैं। 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'—जगत्की सृष्टि करके वे उसमें प्रवेश कर गये। सृष्ट पदार्थोंकी विचित्रताके कारण, प्रकृतिके गुणोंके तारतम्यानुसार, उनके प्रकाशमें भेद है। सुतरां भक्तोंकी अनुभूतियोंमें भी भेद होना स्वाभाविक है।

देवपूजा—हिन्दुओंमें ईश्वर एक है किन्तु देवता, भगवत्-विकास, जगत्-चित्रमें भगवत्-प्रतिबिम्ब (Reflections), तैंतीस कोटि अर्थात् अनन्त हैं। विचित्र जगत्में प्रकाशके तारतम्यानुसार विचित्र भावापन्न पात्रकोंके विचित्र भावोंकी अनुभूतियोंमें, वे ही एक अद्वैत भगवान विचित्र रूपों एवं भावोंमें अनुभूत सुतरां वर्णित होनेको बाध्य हैं। ध्यान रखना चाहिए कि देवगण

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवत्-विकास होते हुए भी स्वरूपत: भगवान नहीं हैं—भगवानके विकास अथवा प्रतिबिम्ब मात्र हैं। हिन्दूगण चिरकालसे एक ईश्वरवादी हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, सद्‌गुरु आदिके माध्यमसे उसी एक ईश्वरकी उपासना करते आये हैं। जो देवता अग्नि, जल, औषधि, वनस्पति एवं जगत्‌के सब पदार्थोंमें हैं, उसी एक देवताको नमस्कार किया गया है।

यथार्थ भक्ति—गोस्वामीगण कह गये हैं—'ज्ञानकर्माद्यनावृतम्'—अर्थात् ज्ञान और कर्म भगवानको आच्छादन न कर दे अर्थात् भुला न दे। इसके माने यह नहीं है कि ज्ञान और कर्मका वर्जन करना होगा। ज्ञान द्वारा उनको जानना होगा और कर्म द्वारा उनकी सेवा करनी होगी—सेवा केवल मन्दिर विशेष या मूर्ति विशेषकी नहीं बल्कि विश्वमन्दिरके अनन्त जीव-विग्रहोंकी, जीव-रूपी शिवकी करनी होगी। किसीको बाद नहीं किया जा सकता।

यज्ञतत्व

(हवन विधि सहित)

प्राचीन आर्य हिन्दू यज्ञको सब प्रकारके शुभ फल प्राप्त करनेका श्रेष्ठ उपाय मानते थे। जब कभी देशमें अतिवृष्टि, महामारी अथवा और किसी प्रकारके अशुभ-अशान्तिका प्रादुर्भाव होता तो सब मिलकर प्रार्थना एवं यज्ञ द्वारा उसके निवारण करनेकी चेष्टा करते थे। आज भी यज्ञ सर्वसाधारणके लिए फलप्रद हो सकता है, यह तत्त्व इस पुस्तकमें समझानेकी चेष्टा की गयी है।

इस सम्बन्धमें पूज्यपाद डा० गोपीनाथ कविराज लिखते हैं—"स्वामीजीने अपनी आन्तरिक अनुभूतियोंको सरल भाषामें प्रकाशित किया है। उन्होंने जिस दृष्टिसे यज्ञको देखा वह मूलतः ऋषि दृष्टि है। यह दृष्टि महत फलदायक है। इससे व्यक्ति और समाजके सब विरोधोंका समन्वय हो जाता है तथा परिवार एवं जगतकी सब समस्यायें सुन्दर रूपसे मीमांसित हो सकती हैं।"

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

यज्ञतत्त्व

हवन विधि सहित

'पूजातत्त्व' के लेखककी

एक और कृति

प्राचीन आर्य हिन्दू यज्ञको सब प्रकारके शुभ फल प्राप्त करनेका श्रेष्ठ उपाय मानते थे। इस संबन्धमें पूज्यपाद पण्डित प्रवर गोपीनाथ कविराज लिखते हैं—"स्वामीजीने जिस दृष्टिसे यज्ञको देखा वह मूलतः ऋषि-दृष्टि है। यह दृष्टि महत फलदायक है। स्वामोजीने अपनी अनुभूतियोंको सरल भाषामें प्रकाशित किया है।" आज भी यज्ञ सर्वसाधारणके लिए फलप्रद हो सकता है, यह तत्त्व इस पुस्तकमें समझानेकी चेष्टा की गई है।

['पूजातत्त्व' और यज्ञतत्त्व' के लेखक]

श्रीमत् स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ

की

जीवनी एवं पत्रावली

भक्तोंके विशेष अनुरोधपर इस पुस्तकका संकलन किया गया है। स्वामीजीकी साधनोपलब्ध अनुभूतियोंका सार उनके पत्रोंमें है जो वे ६० वर्ष तक अपने भक्त-मित्रोंको लिखते रहे। जो उत्थानके इच्छुक हैं वे इसमें अपने पथका संधान पायेंगे।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal